राजस्थान
में
किसान एवं आदिवासी आन्दोलन

डॉ० वृज किशोर शर्मा
सह–आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
इतिहास विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज०)



राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ-निर्माण योजना के अन्तर्गत, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर द्वारा प्रकाशित।

प्रथम संस्करण : 2001
राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन
ISBN 81-7137-362-3

मूल्य : 75.00 रुपये मात्र

प्रकाशक :
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
प्लाट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र,
जयपुर-302 004

लेजर कम्पोजिंग :
नीलकमल कॉमर्शियल इन्स्टीट्यूट
जयपुर

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड,
जयपुर

प्रकाशकीय भूमिका

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी अपनी स्थापना के 31 वर्ष पूरे करके 15 जुलाई, 2000 को 32वें प्रवेश कर चुकी है। इस अवधि में विभिन्न विषयों में उपलब्ध उत्कृष्ट ग्रन्थो के हिन्दी अनुवाद तथा विश्वविद्यालय स्तर के मौलिक ग्रन्थों को हिन्दी में प्रकाशित कर अकादमी ने पाठकों की सेवा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और इस प्रकार विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी में शिक्षण के मार्ग को सुगम बनाया है।

अकादमी की नीति हिन्दी में ऐसे ग्रन्थों का प्रकाशन करने की रही है जो विश्वविद्यालय के स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों के अनुकूल हों। विश्वविद्यालय स्तर के ऐसे उत्कृष्ट मानक ग्रन्थ, जो उपयोगी होते हुए भी पुस्तक प्रकाशन की व्यावसायिकता की दौड में अपना समुचित स्थान नहीं पा सकते हों, और ऐसे ग्रन्थ भी, जो अंग्रेजी की प्रतियोगिता के सामने टिक नहीं पाते हों, अकादमी प्रकाशित करती है। इस प्रकार अकादमी ज्ञान-विज्ञान के हर विषय में उन दुर्लभ मानक ग्रन्थों को प्रकाशित करती है जिनका अध्ययन कर हिन्दी के पाठक लाभान्वित ही नही गौरवान्वित भी हो सकें। हमें यह कहते हुए हर्ष होता है कि अकादमी ने 500 से भी अधिक ऐसे दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को प्रकाशित किया है जिनमें से एकाधिक केन्द्र, राज्यों के बोर्डों एव अन्य सस्थाओं द्वारा पुरस्कृत किये गये हैं साथ ही अनेक ग्रन्थ विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा अनुशसित भी किये गये हैं।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी को अपने स्थापना काल से ही भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय से प्रेरणा और सहयोग प्राप्त होता रहा है तथा राजस्थान सरकार ने इसके पल्लवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, अतः अकादमी अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में उक्त सरकारों की भूमिका के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है।

राजस्थान में अंग्रेजी सर्वोच्चता की स्थापना के अन्तर्गत सामन्तवाद एव उपनिवेशवाद के मध्य जो अपवित्र गठबन्धन हुआ वह किसान एव आदिवासी समुदायों के लिए कष्टदायक बना। यहा के शासक व जागीरदारों का ध्येय अंग्रेज स्वामियों की *खुशामद करना मात्र रह गया था। इसीलिए कृषक एवं आदिवासी भयभीत एवं लूट के* शिकार थे। अतः 1818 में ब्रिटिश सर्वोच्चता की स्थापना के साथ ही आदिवासियों एव किसानों का प्रतिरोध प्रारम्भ हो गया था।

प्रस्तुत पुस्तक में 1818 से 1950 के मध्य राजस्थान में किसान एव आदिवासी आन्दोलनों के विभिन्न पक्षों को उजागर करते हुए ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सारगर्भित विवरण प्रस्तुत किया गया है।

हम पुस्तक के लेखक डॉ. बृज किशोर शर्मा समीक्षक प्रो.वी के वशिष्ठ, अजमेर एव *भाषा सम्पादक डॉ. सुषमा शर्मा, जयपुर के प्रति प्रदत्त सहयोग हेतु आभारी हैं।*

डॉ सी.पी जोशी	*डॉ आर.डी सैनी*
उच्च शिक्षा मत्री, राजस्थान सरकार एव	निदेशक,
अध्यक्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,	राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ, अकादमी,
जयपुर	जयपुर

आमुख

सामान्यजन व दलित वर्ग के इतिहास लेखन के क्षेत्र मे कृषक व आदिवासी आन्दोलन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण विषय बन गए हैं। आन्दोलन को गतिशीलता और परिवर्तन के पर्याय के रूप मे परिभाषित किया जाता है। राजस्थान में किसान एव आदिवासी आन्दोलन सामाजिक गतिशीलता व परिवर्तन के वाहक रहे हैं। अत इनके अध्ययन का महत्त्व स्वयसिद्ध है। इतिहास की अधुनातन प्रवृत्तियों में इनके लेखन पर विशेष बल दिया जा रहा है। पिछले दो दशकों में राजस्थान के किसान एव आदिवासी आन्दोलनो पर पर्याप्त लेखन हुआ है। इतिहासकारों के अतिरिक्त समाज-*शास्त्रियो तथा राजनीतिशास्त्रियों ने भी इस दिशा में कुछ सार्थक प्रयास किए हैं,* किन्तु अभी तक राजस्थान के किसान एव आदिवासी आन्दोलनों की एक स्थान पर समन्वित प्रस्तुति नहीं हो सकी है। वर्तमान पुस्तक इसी दिशा में एक प्रयास है।

बिना किसी अतिशयोक्ति के सुरक्षित रूप से यह कहा जा सकता है कि राजस्थान के किसान एव आदिवासी आन्दोलन ब्रिटिश भारत के जन आन्दोलनो की तुलना में किसी भी तरह कमजोर नहीं थे। इसके उपरान्त भी अधिकाश इतिहासकारो ने इन पर ध्यान ही नहीं दिया। इसका मुख्य कारण आधुनिक भारत के इतिहास के नाम पर मुख्य रूप से ब्रिटिश भारत के भू-भागो का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। *इसे हम आधुनिक भारत के इतिहास लेखन की विसगति ही कहेगे। अब देशी* रियासतो के इतिहास पर कुछ ध्यान दिया जाने लगा है। देशी रियासतों पर आधारित किसान व आदिवासी विषयक क्षेत्रीय अध्ययनों को समन्वित कर एक सम्पूर्ण इतिहास प्रस्तुत करना अभी भी अपेक्षित है। आधुनिक काल मे राजस्थान का अधिकाश भाग देशी रियासतों के नियत्रण में था केवल अजमेर-मेरवाडा का क्षेत्र सीधे ब्रिटिश भारत का अग था। अत राजस्थान के जन आन्दोलनों *का अध्ययन स्वय मे एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। "राजस्थान मे किसान एव आदिवासी आन्दोलन"* शीर्षक से प्रस्तुत वर्तमान पुस्तक इस दिशा में एक पहल सिद्ध होगी।

राजस्थान मे अग्रेजी सर्वोच्चता की स्थापना का स्वरूप अपने आपमे भिन्नता लिए हुए था। इसके अन्तर्गत परम्परागत राजनीतिक व्यवस्था व प्रशासनिक सस्थाए कमजोर पड गई थी अथवा समाप्त हो गई थी। भारत में अग्रेजी उपनिवेशवाद सामन्तवाद के ऊपर फल-फूल रहा था। भारत के अधिकाश भू-भागो में परम्परागत सामन्ती ढाचे को तोडकर नव सामन्तो को जन्म देकर उपनिवेशवाद के हित साधक सामन्तवाद को सुरक्षित रखा गया। *जबकि राजस्थान में मध्यकालीन सामन्ती व्यवस्था* को विकृत और भौंडे रूप में बनाए रखा। राजस्थान में सामन्तवाद एव उपनिवेशवाद

के मध्य जो अपवित्र गठबन्धन हुआ उसे हम अर्द्ध–सामन्ती व अर्द्ध–औपनिवेशिक व्यवस्था के नाम से परिभाषित करते हैं। इस अप्राकृतिक और कृत्रिम व्यवस्था के नियन्त्रण में किसान एव आदिवासी सबसे अधिक पीड़ित थे। बदले हुए राजनीतिक परिवेश में राजस्थान के राजा व सामन्त प्रजा के प्रति राजा के कर्त्तव्य को भूल गए थे। यहाँ के शासक व जागीरदारों का ध्येय अग्रेज स्वामियो की खुशामद करना मात्र रह गया था क्योंकि उनको यह अहसास करा दिया गया था कि उनका अस्तित्व उनके स्वय के भुजबल से न होकर अग्रेजों की कृपा से कायम है। नई राजनीतिक स्थिति में राजस्थान के शासक व जागीरदार औपनिवेशिक स्वामियों के प्रति अपने दायित्व निर्वहन एव अपनी अय्याशी के लिए अपनी प्रजा को लूटने लगे थे। कृषक व आदिवासी इनकी लूट का प्राथमिक शिकार थे। अत 1818 में ब्रिटिश सर्वोच्चता की स्थापना के साथ ही आदिवासी एव किसान प्रतिरोध आरम्भ हो गया था।

यहा यह जानना रोचक है कि अपने प्रारम्भिक चरण में अधिकाश किसान एव आदिवासी आन्दोलन स्वस्फूर्त थे, जिन्होंने कालान्तर में एक सुसगठित स्वरूप प्राप्त कर लिया था। 19वीं सदी में आदिवासी प्रतिरोध का स्वरूप विद्रोहात्मक था, जबकि 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध के आदिवासी आन्दोलन सगठित स्वरूप लिए हुए थे। 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध मे अधिकाश किसान एव आदिवासी आन्दोलन समाज सुधार के प्रयासों की परिणिति थे। वास्तव में समाज सुधार के रूप में उत्पन्न ये आन्दोलन आर्थिक व राजनीतिक सघर्ष में परिणित हो गए थे। इन आन्दोलनों में जातीय पचायतों व सभाओं इत्यादि की महत्त्वपूर्ण भूमिका दृष्टिगोचर होती है, जिसका इस पुस्तक में यथास्थान विश्लेषण किया गया है। विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय घटनाक्रमों ने इन आन्दोलनों को कैसे और कहा तक प्रभावित किया इसकी जाच पड़ताल भी इस पुस्तक में की गई है। पाठक को प्रस्तुत पुस्तक में अन्दर प्रवेश करने के पूर्व यह बता देना भी प्रासगिक है कि इन आन्दोलनों को स्वतन्त्रता आन्दोलन के अग के रूप में देखना उचित होगा।

अनेक राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के प्रभाव में राजस्थान के किसान आन्दोलन 1920 के पश्चात् प्रभावी रूप से आरम्भ हुए। 1920 से 1942 की अवधि में राजस्थान सामन्त व उपनिवेशवाद विरोधी आन्दोलन का केन्द्र रहा। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि जब 1922–30 तथा 1931–42 के मध्य ब्रिटिश भारत में कोई आन्दोलन नहीं चल रहा था तब राजस्थान में किसान व आदिवासी आन्दोलन अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर थे तथा साम्राज्यवादी शक्ति के लिये चुनौती बने हुए थे। 1938 तक अनेक प्रयासो के उपरान्त भी राष्ट्रीय नेतृत्व ने राजस्थान के किसान व आदिवासी तथा अन्य जन आन्दोलनों को समर्थन प्रदान नहीं किया। 1938 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीति में परिवर्तन आया। इसके अनुसार कांग्रेस ने रियासतों के राजनीतिक कार्यकर्ताओं को अपने राज्य में प्रजा मण्डल सगठन बनाकर उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु सघर्ष की सलाह दी थी। 1938 के पूर्व के परिपेक्ष्य किसान

एव आदिवासी आन्दोलनों ने प्रजामण्डल आन्दोलन को राजनीतिक आधार प्रदान किया। 1938 से 1949 के दौरान किसान–आदिवासी एव प्रजामण्डल के मध्य अतरग सम्बन्ध स्थापित हो गया था। किसान व आदिवासी जो लम्बे समय से सघर्षरत थे यह भली–भाति अनुभव कर चुके थे कि उत्तरदाई शासन की स्थापना ही उनकी समस्याओ के समाधान का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। इन विश्लेषणात्मक व आलोचनात्मक परिपेक्ष्य में इन आन्दोलनो को देखने का प्रयास किया गया है।

यह पुस्तक मुख्यत पुरालेखीय सामग्री पर आधारित है जो भारत के राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली तथा राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर एव इसकी शाखाओं से एकत्रित की गई है। तत्कालीन समाचार पत्र एव पत्रिकाओ में प्राप्त सूचनाओ का उपयोग भी इस पुस्तक लेखन में किया गया है। इनके अतिरिक्त प्रकाशित सामग्री जैसे गजेटिअर्स सैटिलमेन्ट रिपोर्ट फेमिन रिपोर्ट जागीरदारी इन्क्वाइरी रिपोर्ट विभिन्न राज्यों के गजट, किसान सगठनो द्वारा प्रकाशित पत्रिकाएँ व बुलेटिन इत्यादि का उपयोग इस पुस्तक में पर्याप्त रूप में किया गया है। विषय पर उपलब्ध विभिन्न विद्वानों की कृतियों का भी समुचित उपयोग किया गया है।

डॉ० बृज किशोर शर्मा

सह–आचार्य एव विभागाध्यक्ष
इतिहास विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय
कोटा (राज०) – 324 010

विषय-सूची

अध्याय–1

उन्नीसवीं सदी के आदिवासी प्रतिरोध

राजस्थान में स्थानीय सामन्तवाद व ब्रिटिश साम्राज्यवाद के मध्य अपवित्र गठबन्धन का प्रतिरोध सर्वप्रथम मेर एव भील आदिवासियों ने किया। यह एक सयोग ही था कि जनवरी, 1818 में मेवाड राज्य ने अग्रेजों के साथ सन्धि की तथा इसी समय मराठों ने अजमेर प्रान्त अग्रेजों को सौंपा। मराठों ने राजस्थान के सभी राज्यों के ऊपर अपने अधिकारों की समाप्ति को भी स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार जनवरी 1818 के पश्चात् अग्रेजों को राजस्थान में अपने साम्राज्य विस्तार का भरपूर अवसर प्राप्त हुआ। वर्ष 1818 के अन्त तक सिरोही को छोडकर राजस्थान के सभी राज्यों पर सन्धियों के माध्यम से अग्रेजी सर्वोच्चता स्थापित हो चुकी थी। सिरोही राज्य के साथ अग्रेजों की सन्धि 1823 में हुई। अजमेर व मेवाड में अग्रेजों की प्रारम्भिक नीतियों ने आदिवासियों को नई व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह हेतु मजबूर किया। सन 1818 से आरम्भ होकर आदिवासियों के विद्रोह उन्नीसवीं सदी के अन्त तक जारी रहे। इनमें मुख्य रूप से मेर मीणा एव भील आदिवासी समुदायों ने भाग लिया था।

मेर विद्रोह (1818–1821)'

यह सयोग ही था कि भील एव मेर (रावत) विद्रोह वर्ष 1818 में आरम्भ हुए थे। मेर विद्रोह अल्पकालिक था जबकि भील विद्रोह लम्बे समय तक जारी रहे। अत यहाँ भील विद्रोह के पूर्व काल क्रमानुसार मेर विद्रोह का उल्लेख उपयुक्त रहेगा। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि मेरों ने अग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह क्यों किया? मेरों द्वारा आबाद क्षेत्र अग्रेजों के आगमन के पूर्व सीधे तौर पर किसी राजनीतिक सत्ता के नियत्रण में नहीं था। मेरों द्वारा आबाद क्षेत्रों के भू–भाग मेवाड मारवाड एव अजमेर के अन्तर्गत थे, किन्तु मेरों पर इनका राजनीतिक व प्रशासनिक नियत्रण नहीं था। अत मेर कभी भी राजपूतों मुगलों व मराठों के नियत्रण में नहीं थे। सर्वप्रथम अग्रेजों ने उन्हें अपने पूर्ण नियत्रण में लाने का प्रयास किया था। यही मेरों के विद्रोह का प्रमुख कारण बना। पुन यह प्रश्न विचारणीय है कि अग्रेज मेरों को अपने अधीन क्यों करना चाहते थे? असल में राजस्थान आगमन के पूर्व अग्रेज पूर्वी पश्चिमी एव दक्षिणी भारत में आदिवासियों के साथ कडे मुकाबले का अनुभव कर चुके थे। इसलिए अग्रेजों ने राजस्थान में आदिवासियों के दमन हेतु सर्वप्रथम प्रयास किए जिसे वे अपने साम्राज्य के स्थायित्व हेतु आवश्यक समझते थे। अग्रेजों की स्पष्ट मान्यता थी कि आदिवासियो द्वारा आबादित क्षेत्र विद्रोहियों अथवा विधि–भन्जकों के लिए सुरक्षित शरणगाह होते हैं। अत आदिवासी क्षेत्रों पर पूर्ण नियत्रण स्थापित कर अग्रेज

विद्रोह की सम्भावनाओ को क्षीण कर देना चाहते थे। अग्रेजो का धन लालच भी इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण था। अग्रेज मेरो पर राजस्व थोपना चाहते थे वे जो उनके अग्रेजो के समक्ष आत्म समर्पण के पश्चात् ही सम्भव था।[1]

मेरो को अग्रेजी राजनीतिक सत्ता व नियत्रण मे लाने के प्रयासो के परिणाम स्वरूप मेरो का विद्रोह हुआ। सन् 1818 मे अजमेर के अग्रेज सुपरिन्टेन्डेन्ट एफ विल्डर ने झाक एव अन्य गावो जो मेरवाडा क्षेत्र के केन्द्र बिन्दु माने जाते थे के साथ समझौता किया जिसके अनुसार मेरो ने लूट–पाट न करने की सहमति प्रदान की।[2] यह अग्रेजो के षड्यन्त्र का एक हिस्सा थी क्योकि इस प्रकार के समझौते की कोई आवश्यकता नही थी। वास्तव मे अग्रेज इस प्रकार के समझौते के माध्यम से मेरवाडा क्षेत्र मे घुसने मे सफल रहे तथा मेरों को अपने जाल मे फसा लिया जिससे अग्रेज किसी भी समय एव किसी भी बहाने मेरों पर आक्रमण कर सके। मार्च 1819 मे विल्डर ने किसी साधारण घटना को मेरो द्वारा उपरोक्त समझौते को तोड़ना सिद्ध करते हुए मेरवाडा पर आक्रमण कर दिया। उसने नसीराबाद से सैनिक साथ लेकर मेरो के खिलाफ दण्डात्मक अभियान आरम्भ किया। मेरों को दण्डित किया गया तथा उन पर नियमित निगरानी रखने के लिए मेरवाड़ा क्षेत्र में पुलिस चौकिया स्थापित कीं।[3] इस प्रकार अग्रेजों द्वारा मेरो को घेरने की नीति आरम्भ की गई। इसी प्रकार कर्नल टॉड ने मेवाड़ राज्य की ओर से मेरों के विरुद्ध इसी तरह के उपाय अपनाए। उसने भी मेरवाडा क्षेत्र मे पुलिस थानो की एक श्रृखला स्थापित की। इसके पीछे उसका उद्देश्य मेवाड के भू–भागो की मेरो के निरन्तर आक्रमणो से सुरक्षा थी।[4]

उपरोक्त नीति ने मेरों के मन मे अग्रेजो के विरुद्ध सदेह उत्पन्न किया, जिससे वे अशान्त होने लगे थे। अत प्रतिक्रिया स्वरूप मेरों ने सन् 1820 के आरम्भ से ही जगह–जगह विद्रोह कर दिया तथा अपने क्षेत्रो से पुलिस चौकियों व थानों को हटाने का प्रयास किया। नवम्बर, 1820 मे झाक नामक स्थान पर ब्रिटिश पुलिस के हत्याकाण्ड ने अग्रेजों तथा साथ ही मेवाड़ व मारवाड़ राज्यों को भयभीत कर दिया था।[5] यहा मेर विद्रोह अत्यन्त व्यापक व भयानक था। मेरों ने अनेक स्थानों पर अग्रेजी पुलिस चौकियों को जला दिया था तथा सिपाहियों को मार दिया था। बढ़ते हुए मेर विद्रोह को दबाने के लिए अग्रेजी सेना की तीन बटालियनों, मेवाड़ एव मारवाड़ की सयुक्त सेनाओं ने मेरों पर आक्रमण किया जिसमें भारी जन–धन की हानि हुई। ये सेनाएें जनवरी, 1821 के अन्त तक मेर विद्रोह का दमन करने में सफल रहीं।[6]

मेरों के दमन के पश्चात् अग्रेजों ने मेरवाड़ा के प्रशासन का मेरों से सुरक्षात्मक गठन किया और मेरों का दमन किया। मेरवाडा क्षेत्र क्रमश तीन भागों ब्रिटिश, मेवाड़ एव मारवाड़ में बटा हुआ था। कैप्टन टॉड ने, मेवाड़ महाराणा के नाम पर जहा वह एजेन्ट नियुक्त था मेवाड के हिस्से का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया, तथा एक सूबेदार नियुक्त किया, देसी बन्दूकधारी सैनिकों की एक सेना बनाई तथा राजस्व वसूल करना आरम्भ कर दिया। मारवाड़ का भाग जोधपुर दरबार ने समीपी ठाकुरों के नियत्रण में रख दिया तथा

शेष हिस्से का प्रबन्ध अजमेर स्थित ब्रिटिश सुपरिन्टेन्डेन्ट विल्डर के हाथों में आ गया।[7] कुछ ही समय पश्चात् अंग्रेजो की यह समझ बनी कि उनके द्वारा प्रशासित भाग नियत्रण में है किन्तु अन्य भागों मे अव्यवस्था व्याप्त है। विल्डर तीन पक्षों के मध्य विभाजित अधिकार क्षेत्र को अप्रभावी से भी बदतर मानता था। अत अंग्रेजों के द्वारा सम्पूर्ण क्षेत्र को एक ब्रिटिश अधिकारी के नियत्रण में रखने का निर्णय लिया गया। इस अधिकारी को दीवानी व फौजदारी मामलों में पूर्ण अधिकार प्रदान किए जाने का प्रावधान रखा गया तथा इस अधिकारी के नियत्रण में 70 सैनिक प्रति कम्पनी के हिसाब से 8 कम्पनियों की एक बटालियन मेरों में से ही भरती कर रखे जाने का निर्णय लिया।[8] अत 1822 में मेरों से गठित मेरवाड़ा बटालियन ब्यावर मुख्यालय पर स्थापित की गई। महाराणा मेवाड़ ने मई 1823 एव महाराजा मारवाड ने मार्च 1824 में मेरवाड़ा के अपने हिस्से क्रमश दस व आठ वर्ष के लिए अंग्रेजों को सौंप दिए।[9] दोनों ही शासक मेरवाड़ा बटालियन के खर्चे हेतु 15 000/— रुपये सालाना प्रत्येक द्वारा देने पर सहमत हुए।[10]

लम्बे समय तक सम्पूर्ण मेरवाड़ा क्षेत्र ब्रिटिश नियत्रण में रहा। ब्रिटिश प्रशासन उन्नीसवीं सदी के अन्त तक कठोर दमनात्मक उपायों का सहारा लेकर मेरवाडा में शान्ति स्थापित करने में सफल रहा। बीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षो में अंग्रेज मेरों मे समाज सुधार गतिविधियों का प्रारम्भ कर सके। इस प्रकार अंग्रेज 1947 तक मेर विद्रोहों को नियन्त्रित करने में सफल रहे।

भील विद्रोह (1818–1860)

भील मूलत एक शान्तिप्रिय आदिवासी समुदाय था किन्तु अंग्रेजों द्वारा किए गए परिवर्तनों ने उन्हें स्थानीय सामन्ती व ब्रिटिश साम्राज्यवादी व्यवस्था के विरुद्ध उपद्रवी होने के लिए विवश कर दिया था। अंग्रेजी शासन के पूर्व वे निर्बाध प्राकृतिक अधिकारों का उपयोग कर रहे थे, किन्तु अंग्रेजों की नई व्यवस्था के अन्तर्गत इन पर कई प्रतिबंध थोप दिए गए थे। इतना ही नहीं बल्कि अंग्रेजी शासन के परिणाम स्वरूप आदिवासी क्षेत्रों में बाह्य तत्वों जैसे राजस्व कर्मचारी, सूदखोर ठेकेदार, भूमि हथियाने वाले, व्यापारी, दुकानदार इत्यादि के प्रवेश ने भीलों में अनेक परेशानिया उत्पन्न की। इन नए तत्वों के, प्रवेश ने भील क्षेत्रों में सामाजिक तनाव उत्पन्न कर दिया था। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश विधि के अन्तर्गत पूर्णत निजी सम्पत्ति की अवधारणा ने सयुक्त स्वामित्व की परम्परा के क्षय ने आदिवासी समाज के अन्तर्गत सघर्ष को तीव्र कर दिया था। वे अंग्रेजों के आगमन तक स्वतत्र जीवन व्यतीत कर रहे थे तथा 1818 के पश्चात् उनके ऊपर स्थापित अर्धसामती व अर्ध औपनिवेशिक नियत्रण ने उन्हें विद्रोह के लिए बाध्य किया।

13 जनवरी, 1818 के मेवाड राज्य ने अंग्रेजों के साथ सन्धि की इसके अनुसार राज्य के सभी बाह्य मामले अंग्रेजों के हाथों सौंप दिए गए थे। कुछ मामलों में अंग्रेजों को राज्य के आन्तरिक मामलों में भी हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त था। इसी प्रकार भील व गरासिया बाहुल्य राज्यों डूगरपुर, बासवाडा प्रतापगढ व सिरोही ने अंग्रेजों के साथ

क्रमश 11 दिसम्बर 1818, 25 दिसम्बर 1818 5 अक्टूबर 1818 व 11 सितम्बर 1823 को सन्धिया की।[1] इन सन्धियो ने अग्रेजो को राज्यो के मामले मे हस्तक्षेप करने हेतु अधिकृत कर दिया था एव भील व अन्य आदिवासी समुदाय ब्रिटिश नीतियो के सर्वाधिक शिकार हुए। इन सन्धियो व परवर्ती सशोधनो समझौतो एव कौलनामो मे अनेक प्रावधान भील विरोधी थे। व्यवहारिक तौर पर अग्रेज इन राज्यो के वास्तविक स्वामी बन गए थे क्योकि इन राज्यों द्वारा दिए जाने वाले वार्षिक नजराने की राशि अधिकाश मामलो मे निश्चित नही की गई थी तथा राजस्व का एक भाग अग्रेजो द्वारा लिया जाना तय किया गया था। उदाहरणार्थ उदयपुर राज्य से सन्धि के प्रथम पाच वर्षो की अवधि के लिए इसके कुल राजस्व का 1/4 भाग प्रतिवर्ष की दर से अग्रेजो को दिया जाना था एव तत्पश्चात् यह राशि कुल राजस्व का 3/8 भाग दिया जाना तय किया गया था।[1] इससे स्पष्ट होता है कि राज्य के राजस्व मे वृद्धि स्वाभाविक तौर पर कम्पनी की आय मे भी वृद्धि थी तथा अग्रेजो ने मेवाड राज्य के राजस्व को बढाने मे भरसक प्रयत्न किया। भील या तो कोई राजस्व नहीं देते थे अथवा नाम मात्र का दे रहे थे, जब उन पर नए कर थोप दिए गए थे। इस प्रकार यह 1818 में भील विद्रोह का एक महत्त्वपूर्ण कारण बना, जैसा कि प्रथम भील विद्रोह उदयपुर राज्य मे ही आरम्भ हुआ था। अन्य राज्यों के भीलो ने भी इन्हीं आधारों पर विद्रोह किया। इस सबके अतिरिक्त अग्रेजो की भील व आदिवासी दमन की नीति ने आदिवासी विद्रोहों को जन्म दिया।[1]

1818 में उदयपुर राज्य के भीलो ने अनेक कारणों से विद्रोह किया। एक तो भीलों पर कर थोपने के अग्रेजी प्रयासों ने भीलो में असतोष को जन्म दिया। दूसरा, अग्रेजों की भील दमन नीति ने भीलों के मन मे अग्रेजो के विरुद्ध अनेक मनोवैज्ञानिक सदेह उत्पन्न कर दिए थे। तीसरा, सन्धि के तुरन्त पश्चात् उदयपुर राज्य का आन्तरिक प्रशासन जेम्स टॉड ने अपने हाथ में ले लिया था तथा उसने भीलो पर राज्य का प्रभुत्व स्थापित करने के लिए भीलों को अपने नियत्रण में लाने का प्रयास किया। चौथा 1818 की सन्धि के पश्चात् अधिकाश देशी सेनाओं को भग कर दिया गया था। भील राज्य एव जागीरदारों की सेना में नियमित अथवा अनियमित रूप से नियुक्त रहते थे तथा इन सेनाओं के भग होने से उनमें असतोष उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। पाचवा, भील अपनी पाल के समीप ही गावों से रखवाली (चौकीदारी कर) नामक कर तथा अपने क्षेत्रो से गुजरने वाले माल व यात्रियो से बोलाई (सुरक्षा) नामक कर वसूल करते थे। जेम्स टॉड ने राज्य की आय व राजस्व में वृद्धि के प्रयास के अन्तर्गत तथा भीलों पर कठोर नियत्रण स्थापित करने के ध्येय से भीलों से उनके ये अधिकार छीन लिए थे।[1] यह भील विद्रोह का तात्कालिक कारण बना जैसाकि भीलों ने अपने इन परम्परागत अधिकारों को छोड़ने से इन्कार करते हुए अग्रेजों व उदयपुर राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस प्रकार उदयपुर राज्य में भील विद्रोह की ज्वाला भड़की।

उपरोक्त स्थिति का विवरण एव अग्रेज प्रतिवेदक ने इस प्रकार दिया है भील एव गिरसिया आदिवासियों से आवादित उदयपुर के दक्षिणी व दक्षिण पश्चिमी पहाड़ी जिले

विद्रोहो अशाति व विधिहीनता के अभ्यस्त है। जब अग्रेज पहली बार इस प्रदेश मे आए तो ये मेवाड दरबार के साथ प्रतीकात्मक सम्बन्ध रखते थे तथा अपने मुखियों के मातहत आसपास के गावो तथा अपने क्षेत्र से गुजरने वाले माल व यात्रियों पर कर वसूल करते थे। मेवाड़ दरबार द्वारा इनके इन अधिकारो मे हस्तक्षेप करने के अनेक अविवेकपूर्ण प्रयास किए गए जिनके परिणामस्वरूप विवश होकर इन्हे विद्रोह का मार्ग अपनाना पडा।[15]

1818 के अन्त तक उदयपुर राज्य के भीलों ने यह चेतावनी देते हुए अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी कि यदि सरकार उनके आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप करेगी तो वे विद्रोह के लिए बाध्य होगे। भीलो ने अपने क्षेत्रो की नाकेबन्दी करते हुए राज्य के विरुद्ध बगावत कर दी। लम्बे समय तक राज्य के अधिकारी भील क्षेत्रो में नहीं घुस सके। कर्नल टॉड ने भीलों को शान्तिपूर्ण आत्मसमर्पण हेतु फुसलाने का प्रयास अवश्य किया था किन्तु भीलों ने इस हेतु स्पष्ट असहमति व्यक्त की। 1820 के आरम्भ मे अग्रेजी सेना का एक अभियान दल विद्रोही भीलो के दमन हेतु भेजा गया किन्तु इसे सफलता नही मिली।[16] अग्रेजी सेना की इस असफलता ने भील विद्रोह को और अधिक तीव्र कर दिया था इसलिए जनवरी 1823 में ब्रिटिश व राज्य की सयुक्त सेनाओ ने दिसम्बर 1823 तक भील विद्रोह को दबाने मे सफलता प्राप्त की।[17] मेवाड पहाडी क्षेत्रो में उपद्रवी भीलों पर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से एक अग्रेजी सेना दिसम्बर 1823 मे ही नियुक्त कर दी गई।[18] यद्यपि भील विद्रोह को कुचल दिया गया था किन्तु अग्रेज स्थायी शान्ति प्राप्त नही कर सके। जब कभी सेना को हटा लिया जाता था तो भील पुन अशान्ति उत्पन्न कर देते थे। अत 1823 के सैनिक दमन के उपरान्त भी उदयपुर के भील निरन्तर अशान्ति [illegible] अथवा स्थायी रूप से शान्ति स्थापित नही हो सकी। चूहे–बिल्ली का खेल चलता रहा।

उदयपुर राज्य के भील विद्रोहो से प्रभावित होकर डूगरपुर व बासवाडा राज्यो के भीलो ने भी अल्प अशान्ति उत्पन्न की तथा 1825 मे आदिवासी विद्रोहों की बिखरी हुई घटनाएँ घटी। डूगरपुर राज्य मे स्थिति अधिक गम्भीर थी। इसलिए भीलो के दमन हेतु अग्रेजी सेना भेजी गई, किन्तु वास्तविक सघर्ष आरम्भ होने के पूर्व ही भील मुखियो ने 1825 में समझौता कर लिया।[19] 12 मई 1825 को डूगरपुर राज्य मे [illegible] के भीलो ने अग्रेजो के साथ एक समझौता किया जो वास्तव में अग्रेजो द्वारा भीलो पर थोपा गया था। इस समझौते की शर्ते निम्नानुसार थी[20] –

1 हम धनुष, बाण एव सभी हथियार सौप देगे।
2 पिछले उपद्रव के दौरान हमने जो कुछ लूट हासिल की है हम उसे लौटा देंगे।
3 भविष्य मे हम कभी कस्बों गावो अथवा सार्वजनिक मार्गों पर किसी प्रकार की लूट–मार नही करेगे।
4 हम ब्रिटिश सरकार के किसी शत्रु अथवा चोरो लुटेरो गिरासियो अथवा ठाकुरो को अपनी पालो (गावो) मे शरण नहीं देगे चाहे वे हमारे प्रदेश के हो अथवा दूसरे के।
5 हम कम्पनी के आदेशों की पालना करेगे तथा जब कभी बुलाए जाएंगे तो उपस्थित होंगे।

इस प्रकार अंग्रेजों ने भीलों द्वारा अपने भाइयों को कुचलवाने की योजना तैयार की। इस प्रस्तावित सेना के माध्यम से भील क्षेत्रों में अंग्रेजों की घुसपैठ आसान थी। अंग्रेजों की इस योजना का अन्तिम उद्देश्य भीलों को इस प्रस्तावित सेना में रोजगार देकर उनको सन्तुष्ट करना था। वास्तव में अंग्रेजों ने भीलों की समस्याओं व शिकायतों पर गम्भीरता से प्रयास किए बिना उनको सेना द्वारा कुचलने की योजना बनाई थी।

सेना द्वारा भीलों का दमन करने की दिशा मे पहला कदम 1836 में जोधपुर लीजॅन नामक सेना का गठन था जिसका मुख्यालय अजमेर रखते हुए एक अंग्रेज अधिकारी के कमाण्ड में रखा गया।[14] बाद में इसका मुख्यालय जनवरी, 1837 में सिरोही राज्य के बड़गाव नामक स्थान को रखा गया। इस परिवर्तन का कारण जोधपुर व सिरोही राज्यों की सीमा पर भील व मीणों पर नियत्रण व निगरानी रखना था। 1840 में सिरोही के गावों से भीलों की एक सैनिक कम्पनी की भरती की गई जिसे जोधपुर लीजॅन के साथ जोड दिया गया।[15] मार्च 1842 में जोधपुर लीजॅन का मुख्यालय सिरोही राज्य में ही बड़गाव से एरेनपुरा स्थानान्तरित कर दिया गया था।

इस दिशा में मुख्य प्रयास 1841 में मेवाड भील कॉर्पस की स्थापना था। भारत में भीलों की प्रथम सेना बम्बई प्रान्त मे स्थापित हुई जिसे खानदेश भील कॉर्पस के नाम से जाना जाता था। यह अपनी स्थापना के आरम्भ 1825 से बम्बई प्रान्त में भीलों को नियन्त्रण में रखने में सफल रही थी। खानदेश के अनुभव को अंग्रेजो ने राजस्थान व मध्य भारत में भी लागू किया।

अंग्रेजों की यह स्पष्ट धारणा थी कि भील बहुल क्षेत्रों में अंग्रेज अधिकारियों की निरन्तर निगरानी के बिना स्थाई शान्ति स्थापित नही की जा सकती। तदनुसार 1838 में यह प्रस्ताव रखा गया कि इन जिलों में भील सेना बनाई जाए। महाराणा मेवाड ने इस हेतु अपनी स्वीकृति देते हुए प्रस्तावित सेना का खर्च वहन करने की सहमति प्रदान की। इस सैन्य दल का लाभ डूगरपुर, बासवाडा व प्रतापगढ राज्यों तक भी पहुँचाना था। अत ये तीनों राज्य भी मेवाड भील कॉर्पस के व्यय हेतु कुछ राशि देने के लिए सहमत हो गए थे। इस सेना का वार्षिक खर्च का अनुमान 1 20 000 रुपये था जिसमें से 50 000 रुपये उदयपुर राज्य द्वारा तथा शेष 70 000 रुपये तीन राज्यों द्वारा देना निश्चित हुआ।[16]

मार्च, 1841 मे एजेन्ट टू गवर्नर जनरल इन राजपूताना एव मेवाड व माही काठा एजेन्सियों के पॉलिटिकल एजेन्टों का एक सयुक्त प्रतिवेदन गवर्नर जनरल के पास भिजवाया गया। अप्रेल 1841 में गवर्नर जनरल ने अपनी सलाहकार परिषद की सलाह पर मेवाड भील कॉर्पस के गठन को स्वीकृति प्रदान कर दी। मेवाड भील कॉर्पस का मुख्यालय उदयपुर राज्य में खेरवाडा रखा गया। मेवाड के भील क्षेत्रों में खैरवाडा एव कोटडा में दो छावनिया स्थापित की गई।[17] खैरवाडा के भील कॉर्पस के कमान्डेन्ट को खैरवाडा व कोटडा के भील क्षेत्रों के प्रशासन को देखने के लिए असिसटेन्ट पॉलिटिकल एजेन्ट पदनाम दिया गया। इस प्रकार उदयपुर राज्य के भील क्षेत्रों का सामान्य प्रशासन

विद्रोह को कुचल दिया गया था।[28]

1850 से 1855 के मध्य कोई बडे भील विद्रोह की घटना नही घटी किन्तु दिसम्बर 1855 मे उदयपुर राज्य के कालीबास के भील विद्रोही हो गए थे। महाराणा ने मेहता सवाई सिह को एक सेना लेकर 1 नवम्बर 1856 को भीलो के दमन हेतु भेजा। सेनाओं ने गावों में आग लगा दी तथा भारी सख्या मे भीलो को मौत के घाट उतार दिया गया। अनेक भीलों को जीवित गिरफ्तार कर लिया गया तथा अनेकों के सर काट दिए थे।[29] मेवाड भील कॉर्पस छावनी से 25 से 30 मील की परिधि मे भील विद्रोहो को दबाने मे सक्षम थी किन्तु उदयपुर राज्य के सीधे प्रवन्ध के अन्तर्गत दूरदराज के भील क्षेत्रों में शान्ति स्थापित करना एक कठिन कार्य था। अत 1860 तक निरन्तर छुटपुट भील विद्रोह की घटनाएँ घटती रही। 1857 के दौरान भी भील विद्रोहों की सम्भावना थी किन्तु भील इस राष्ट्रीय क्रान्ति से अनभिज्ञ थे तथा भीलों मेरो गिरासियों व मीणों की पलटनें अग्रेजों के प्रति स्वामी भक्त रही।

मीणा विद्रोह (1851–1860)

नई व्यवस्था के प्रति अपना रोष प्रकट करने के लिए 1851 मे उदयपुर राज्य के जहाजपुर परगने के मीणों ने अग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। इस क्षेत्र की मीणा जाति पर्याप्त रूप में किसी भी राजनीतिक सत्ता से मुक्त थी केवल महाराणा मेवाड की प्रतीकात्मक सत्ता स्वीकार करते थे। कर्नल टॉड ने इनका जीवन्त विवरण प्रस्तुत किया है जो उपरोक्त तथ्य को सिद्ध करता है।[30] ये अग्रेज ही थे जो इस क्षेत्र पर उदयपुर राज्य का कठोर नियत्रण स्थापित कर सके। ब्रिटिश शासित अजमेर प्रान्त के समीप स्थित इस मीणा क्षेत्र पर राज्य की सत्ता स्थापित हो सकी थी। वास्तव में अग्रेज आदिवासी समुदायो के प्रति पूर्वाग्रहों से ग्रसित थे। इसलिए अग्रेज इन लोगों के साथ बडी कठोरता का व्यवहार करते थे। 1820–21 मे अग्रेजो द्वारा मेरों के दमन से मीणा समुदाय के लोग भली भाँति परिचित थे। अत जहाजपुर क्षेत्र के मीणा समुदाय तथा अग्रेज अधिकारियों के मध्य विरोध अस्तित्व में आया। मीणा व भीलों के विद्रोह केवल अग्रेजो के विरुद्ध ही नहीं थे वल्कि वे सम्बन्धित राज्यो के विरुद्ध भी थे जिनके माध्यम से अग्रेज अपनी नीतियों को कार्यान्वित करवा रहे थे।

महाराणा मेवाड ने 1851 में जहाजपुर परगने मे नया हाकिम नियुक्त किया।[31] नवनियुक्त हाकिम मेहता रघुनाथ सिह परगने से धन कमाने मे व्यस्त था। उसने अपना ध्यान मुख्य तौर पर परगने की आय में वृद्धि तथा खर्चे मे कमी पर केन्द्रित किया। प्रशासनिक सुधारों के नाम पर जनता से धन वसूली की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप वहुसख्यक मीणा समुदाय ने उपद्रव का रास्ता अपनाया। विद्रोही मीणों ने ना केवल राजस्व अधिकारियों व महाजनो (वनियों) को लूटा बल्कि समीप स्थित अजमेर–मेरवाडा के अग्रेजो के प्रान्त पर भी धावे मारे। अग्रेज अधिकारियो की शिकायतों के आधार पर महाराणा ने हाकिम का स्थानान्तरण कर मेहता अजीत सिह को विद्रोही मीणों के दमन के कठिन कार्य को पूरा करने के उद्देश्य से हाकिम नियुक्त किया। वह उदयपुर से एक सेना

का मीणा विद्रोह अन्तिम रूप से नियंत्रित हो गया था।

भील विद्रोह (1861–1900):

सत्ता पक्ष ने भीलों की समस्याओं का समाधान कर उन्हें सन्तुष्ट करने के स्थान पर शक्ति से कुचलकर शान्त करने का प्रयास किया। अंग्रेजों व स्थानीय राज्यो द्वारा अपनाई गई दमन की नीति ने भीलो को और अशान्त कर दिया था। वर्ष 1861 में उदयपुर के समीप खैरवाड़ा क्षेत्र मे भील उपद्रवों की घटनाऐ सामने आई। 1863 में कोटडा के भील उत्पाती गतिविधियों में सलग्न हो गए, जिसकी जिम्मेदारी मेवाड भील कॉर्पस के कमान्डिग अधिकारी ने उदयपुर राज्य पर सौंपी क्योकि राज्य के प्रशासनिक अधिकारी भीलों के साथ उचित व्यवहार नहीं कर रहे थे। 1864 में करवड़ परसाद, नठारा एव इनके समीप की पालो के भील चोरी व डकैती की कार्यवाहियों में सलग्न हो गए थे। अग्रेज अधिकारियों के अनुसार उदयपुर के पहाडी क्षेत्रों में जिले के हाकिम की उपेक्षा के कारण स्थिति निरन्तर बिगड़ती जा रही थी। 1866 में मेहता रघुनाथ सिह को मगरा जिले का हाकिम नियुक्त किया गया था जो एक भ्रष्ट अधिकारी था, उसे 1851 मे जहाजपुर से इसलिए स्थानान्तरित कर दिया था कि वह वहाँ मीणा विद्रोह के लिए जिम्मेदार था। मेवाड भील कॉर्पस के कमान्डिग अधिकारी ने लिखित शिकायत मे इन आरोपों को दोहराया था। उसने यह भी शिकायत की थी कि नया हाकिम भीलो पर जुर्माना थोप रहा है तथा मनमाने तरीके से शक्ति पूर्वक उत्पीडन करते हुए भीलों से दुगना राजस्व वसूल कर रहा है। इन आधारों पर हाकिम को स्थानान्तरित कर दिया तथा सैनिक कार्यवाही व शान्तिपूर्वक समझाकर भील उत्पात को शान्त कर दिया गया था।[45] तत्पश्चात् 1867 में खैरवाडा व डूगरपुर के मध्य देवलपाल के भीलों ने उत्पात आरम्भ कर दिया जिसे मेवाड भील कॉर्पस ने कुचल दिया था।[46]

1872–75 के दौरान बासवाड़ा में भील विद्रोह की अनेक घटनाएँ घटी।[47] इन विद्रोहों के कारण इस प्रकार थे – प्रथम 1868 में बासवाडा राज्य व अग्रेजो के मध्य एक समझौता हुआ जिसके अनुसार अग्रेजों को भीलो को कुचलने की निरकुश शक्तिया प्राप्त हो गई थी।[48] दूसरा अग्रेजों ने भीलो द्वारा राज्य को सत्ता के प्रतीक के रूप मे दिए जाने वाले बराड़ नामक कर की राशि मे वृद्धि कर दी थी।[49] बराड के अतिरिक्त भीलो पर भू–राजस्व भी थोंप दिया गया था जो भील पूर्व में कभी नहीं देते थे। तीसरा, राज्य ने भीलो के दमन हेतु मकरानी व विलायती नौकरों (अफगानिस्तान के मुस्लिम पठान) को नियुक्त किया था। वे भीलो का निर्दयता पूर्वक दमन व उत्पीड़न करते थे। वे भीलों को भारी ब्याज की दर पर धन उधार देते थे व उनके बच्चों को लिखित मे गिरवी कर लेते थे। ऋण के भुगतान न होने की स्थिति में वे भीलों से उनके बच्चो को छीनकर लौंडी (महिला दास) अथवा गुलाम (पुरुष दास) बना लेते थे।[50] चौथा 1868–75 के दौरान भयानक अकाल ने भीलो को बेचैन कर दिया था।[51] एव पाचवा गुजरात के पडौसी क्षेत्रों के भील व नायक 1868 में उपद्रव कर रहे थे।[52] जिनने बासवाडा के भीलो को विद्रोह हेतु उत्साहित किया।

1872–73 मे सोदलपुर के भील मुखिया दल्ला ने बराड मुद्दे पर बासवाडा के महारावल के विरुद्ध बगावत कर दी थी। महारावल बराड के अन्तर्गत 2000 रुपये वसूल करना चाहता था, जब कि दल्ला 900 रुपये का भुगतान करना चाहता था।[13] जब राज्य ने 2000 रुपये इकट्ठा करने का नोटिस दिया तो दल्ला प्रतापगढ की ओर भाग गया। वहा उसने एक भील सेना सगठित की, जिसमे 8000 भीलो को भर्ती किया गया था। अग्रेज पॉलिटिकल ऑफिसर इस स्थिति से काफी चितित हो गया था तथा उसने महारावल को दल्ला की अपनी शर्तो पर समझौते का सुझाव दिया। इस पर महारावल ने उसके साथ समझौता कर लिया।[14]

बासवाडा राज्य में चिलकारी व शेरगढ गावों के भील छापामार गतिविधियो द्वारा अशान्त रहे।[15] 1873–74 के दौरान इन गावों के भीलों ने खुला विद्रोह कर दिया था। उनकी गतिविधियाँ मध्य भारत के सैलाना व झाबुआ राज्यो तक फैल गई थी। इन स्थितियों में मध्य भारत स्थित भोपावर के अग्रेज पॉलिटिकल एजेन्ट ने भीलो की गतिविधियों पर नियत्रण हेतु मालवा भील कॉर्पस की एक कम्पनी भेजी। उदयपुर राज्य के भील क्षेत्रों में भी इस विद्रोह के फैलने की प्रबल सम्भावना थी। मेवाड़ के पॉलिटिकल एजेन्ट ने बासवाड़ा राज्य को भीलो की गतिविधियो को रोकने के लिए दबाव डाला। जब बासवाड़ा राज्य भीलो का दमन नहीं कर सका तो फरवरी, 1874 में वह स्वय सेना लेकर बासवाडा पहुचा तथा कुछ सीमा तक इस मामले को निपटा दिया।[16] इसके तुरन्त पश्चात् जून, 1875 में भूरीखेडा के भील मुखिया देवा व ओकारया रावत पहाडों से नीचे आये एव उन्होंने विद्रोह कर दिया।[17] दिसम्बर, 1875 में भूरीखेड़ा एव पीपलखूट गावों के भीलों में आपसी झगड़ा उत्पन्न हो गया था, जिससे भील विद्रोह स्वत ही समाप्त हो गया था।[18]

भील 1818 से निरन्तर विद्रोही रहे। किन्तु जब–जब सत्ताधारियों ने उनको शक्ति द्वारा कुचलने का प्रयास किया तो वे और अधिक अशान्त व प्रचण्ड हो गए थे। 1881–1882 में उदयपुर राज्य के भील अग्रेजो व राज्य के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे। यह 19वीं सदी का सबसे भयानक भील विद्रोह सिद्ध हुआ। असल में यह लम्बे समय से एकत्रित भील आक्रोश का विस्फोट था। इस विद्रोह के कारण निम्नानुसार थे –

1 1857 की क्रान्ति के पश्चात् भारत में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया था तथा भारतीय साम्राज्य सीधे ब्रिटिश ताज के अन्तर्गत आ गया था। इसके उपरान्त भारतीय रियासतो मे अनेक प्रशासनिक सुधार किए गए थे। इन सुधारों व परिवर्तनों की ओट में भीलों के अनेक परम्परागत अधिकारो पर रोक लगा दी थी। अब वे बिना कर दिए, कृषि व जगल उत्पादों का लाभ नहीं उठा सकते थे जिनका पूर्व में वे स्वतत्र उपभोग कर रहे थे। 1878 में उदयपुर राज्य के प्रशासन का 11 निजामतों (जिलों) में पुर्नगठन किया गया था।[19] प्रशासनिक सुधारो के नाम पर भीलो पर अनेक कर थोप दिए गए थे। भील क्षेत्रो में सीमा शुल्क चौकियां स्थापित कर दी गई थी जिससे एक ओर उपभोग की वस्तुओं की कीमत में वृद्धि हुई तथा दूसरी ओर भील अपने जगल, कृषि व पशु उत्पादो का उचित मूल्य प्राप्त करने से वचित हो गए थे।[20] तम्बाकू, नमक, अफीम व शराब

पर नए कर लगा दिए गए थे। इसके अतिरिक्त भीलो द्वारा मावडी (स्थानीय शराब) निकालने पर प्रतिबन्ध लगा दिए गए थे।[61]

2 भू राजस्व मे वृद्धि के उद्देश्य से उदयपुर राज्य ने 1878 मे भूमि बन्दोबस्त आरम्भ किया था। 1880 में भील क्षेत्रों मे भी बन्दोबस्त कार्य आरम्भ हो गया था जिससे भीलों के मन में यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि भू–राजस्व में भारी वृद्धि की जाएगी। इसी वर्ष राज्य की आय में वृद्धि हेतु जगलात विभाग स्थापित किया गया था। भूमि बन्दोबस्त कार्य व जगलात ने भीलों में भारी बेचैनी उत्पन्न कर दी थी।[62] नए जगल नियमों के अनुसार जगल उत्पाद ठेकेदारो को लीज पर दिए जाने थे। इसके माध्यम से भील क्षेत्रों में ठेकेदार तत्त्व के प्रवेश ने भीलों के कष्टों को और बढ़ा दिया था।[63]

3 प्रशासनिक अधिकारी भीलों के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार कर रहे थे तथा उनसे बलपूर्वक अमानवीय तरीकों से धन ऐंठ रहे थे। भीलों का उत्पीड़न इस सीमा तक पहुँच गया था कि राज्य के करो व प्रशासनिक अधिकारियों की धन लिप्सा की पूर्ति हेतु बच्चों तक को बेचने पर बाध्य थे। भू–राजस्व अन्य करों व अवैध करों के भुगतान न करने की स्थिति में प्रशासनिक अधिकारी भीलों की औरतों बच्चों एव पशुओं तक को उनसे छीन लेते थे जिससे भीलों का धैर्य डगमगा गया था। प्रशासनिक अधिकारियों में व्याप्त भ्रष्टाचार की भारी शिकायतें थीं। 1878 में मगरा जिले के हाकिम पण्डित रघुनाथ राव से राज्य ने उनके द्वारा ली गई रिश्वतों व धन के दुरुपयोग के बारे में पूछताछ की थी। इस मामले में जाँच हेतु एक जाँच समिति नियुक्त की गई थी। जाँच समिति ने पण्डित रघुनाथ राव को तीन लाख रुपये की रिश्वत व धन के दुरुपयोग का दोषी पाया था।[64]

4 बनिया और सूदखोर भील क्षेत्रों में नही थे किन्तु नई व्यवस्था के अन्तर्गत भीलों में उनका प्रवेश हो गया था। अग्रेजी न्यायिक व्यवस्था के अन्तर्गत ये भी अशिक्षित व भोले भीलों का शोषण कर रहे थे। राजस्व अधिकारी, कर्मचारी व कलाल भी भील क्षेत्रों में सूदखोरी के व्यवसाय में लगे हुए थे। सरकारी नौकर जो विलायती पठानों के नाम से जाने जाते थे वे भीलों पर भारी जुल्म ढा रहे थे। वे गरीब भीलों को पाच या दस रुपये उधार देते थे जो सौ दो सौ रुपयो में बढ जाते थे एव ऋण के बदले उनके बच्चों को छीन लेते थे। इन स्थितियो मे जब भील तग आ चुके थे तो उन्होंने इन विलायतियों को मारा तब हाकिमो ने भील पालों को बरबाद किया।[65] अत शोषित व उत्पीडित भीलों ने आत्मरक्षार्थ विद्रोह कर दिया था।

5 भीलों मे अग्रेजों द्वारा समाज सुधार के प्रयासो ने भी भीलों को उत्तेजित किया था। भीलों मे डाकन प्रथा का प्रचलन था। किसी भी महिला को डाकन बताकर उसे क्रूरतापूर्वक मार दिया जाता था। अग्रेज अधिकारियों ने उदयपुर राज्य को इस प्रथा पर प्रतिबन्ध लगाने का दबाव डाला। भीलों ने इसे अपनी मान्यताओं पर आक्रमण माना जिससे अग्रेजों के प्रति भीलों का सदेह भाव और बढ गया था।[66]

6 1881 में मेवाड़ राज्य मे जनगणना कार्य की शुरुआत ने भी भीलों को आन्दोलित

कर दिया था। भीलों का सोच था कि उन्हें अंग्रेजी फौज में भर्ती करने के लिए जनगणना की जा रही है। उनको यह भी भय था कि जनगणना द्वारा उनके ऊपर अधिक कर थोपे जाएँगे, जबकि उनमें से कुछ का विचार था कि इसके द्वारा भीलों को समाप्त करने का षड्यंत्र चल रहा है।[7]

जनगणना के सन्दर्भ में भीलों में शरारतपूर्ण अफवाहें फैली हुई थी जिन्हें अज्ञानी भीलों ने गम्भीरता से लिया। ऐसी अफवाहें थीं कि बूढ़ी औरतें, बूढ़े आदमियों को, जवान औरतें जवान आदमियों को, मोटी औरतें मोटे आदमियों को तथा छोटी व पतली औरतें छोटे तथा पतले आदमियों को दी जाएँगी।[8] इस प्रकार जनगणना का मुद्दा भील विद्रोह का एक प्रमुख कारण बन गया था। मार्च, 1881 में जावद गाव के माता मन्दिर पर दो से चार हजार भीलों ने जनगणना कर्मचारियों का मुकाबला करने की शपथ ली। इस प्रकार उदयपुर राज्य के भीलों ने पुन एक बार विद्रोह कर दिया था।[9]

7. 1881 के विद्रोह के पीछे एक धार्मिक कारण भी था। भील रिखबदेव के भी उपासक थे। रिखबदेव के मन्दिर को राज्य ने सीधे अपने नियंत्रण में ले लिया था। मगरा जिले के हाकिम एव अहलकारों (अधिकारी) ने रिखबदेव के पुजारी भंडारी खेमराज को मंदिर के कोष से एक लाख रुपये के गबन का आरोपी माना था।[10] यह भी सम्भव हो सकता है कि 1877 में लागू किए मन्दिर के नए प्रबन्ध से पुजारी खुश न रहा हो एव उसने भीलों को विद्रोह हेतु उकसाया हो। पुजारी का इस विद्रोह से जुड़े होना इस बात से सिद्ध होता है कि जब विद्रोह को दबाने में सेनाएँ असफल हो रही थी तो रिखबदेव के पुजारी भंडारी खेमराज ने उदयपुर महाराणा के निजी सचिव कविराज श्यामलदास के समक्ष इस विद्रोह को शान्त करने के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित करने का प्रस्ताव रखा था। अन्त में श्यामलदास ने रिखबदेव के पुजारी की मध्यस्थता से भीलों के साथ वार्ता आरम्भ की।[11] इस प्रकार भील विद्रोह का यह धार्मिक कारण कम महत्त्वपूर्ण नहीं था।

8 भीलों की अंग्रेज विरोधी भावना भी 1881 के विद्रोह का एक कारण थी। वास्तव में भीलों की आजादी सर्वप्रथम अंग्रेजों ने छीनी तथा उन्हें कठोर प्रशासनिक नियंत्रण के अन्तर्गत रखा गया था। नई व्यवस्था के अन्तर्गत भील क्षेत्रों में अनेक परजीवी तत्त्वों के समावेश ने उनके जीवन को कष्टदायक बना दिया था, जो अंग्रेजी नीति का ही परिणाम था। 1818 से निरंतर अंग्रेजों द्वारा भीलों को बर्बरता पूर्वक कुचलने के प्रयासों ने अंग्रेजों के प्रति भीलों में भारी घृणा भाव उत्पन्न कर दिया था। 1881 में विद्रोह के दौरान श्यामलदास के साथ वार्ता में भीलों ने स्पष्ट उल्लेख किया था कि यदि दरबार हमें नहीं मारे तो हम फिरंगियों को इस देश से बाहर निकालकर फेंक सकते हैं।[12]

9 भीलों पर पुलिस अत्याचारों ने 1881 के भील विद्रोह की चिंगारी प्रज्वलित की थी। मार्च, 1881 के प्रथम सप्ताह में उदयपुर–खैरवाड़ा मार्ग पर स्थित पड़ोना नामक गाव में उत्पन्न एक समस्या ने भील विद्रोह को जन्म देने में तात्कालिक कारण की भूमिका निभाई। इसी गाव के रूपा एव कुबेरा नामक गमेतियों को बारापाल के थानेदार सुन्दर

लाल ने एक भूमि विवाद के मामले मे साक्ष्य हेतु थाने बुलवाया। जब उनके बुलावे हेतु एक सिपाही इनके पास पहुचा तो गामेतियो ने थानेदार के आदेशो को मानने से इन्कार कर दिया। इस पर थानेदार पुलिस दल सहित वहाँ पहुँचा जिससे भील उत्तेजित हो गए और उन्होने थानेदार पर आक्रमण कर दिया।[73] यह पुलिस कार्यवाही शराब निकालने के एक मामले से भी सम्बन्ध रखती थी। नई व्यवस्था के अन्तर्गत भीलों द्वारा शराब निकालने को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया था तथा शराब निकालने व बेचने के अधिकार ठेकेदारों को दे दिए गए थे। भीलों द्वारा शराब निकालने का कलाल (शराब का ठेकेदार) की आय पर विपरीत प्रभाव पड रहा था अत उसने अपने प्रभाव का उपयोग करते हुए पुलिस कार्यवाही की योजना बनाई। इस प्रकार थानेदार ने भूमि विवाद की ओट मे भीलो को प्रताडित करना चाहा। थानेदार के इन प्रयासों की परिणिती भयानक भील विद्रोह के रूप मे हुई।

थानेदार पर आक्रमण की घटना से स्वय भील चिंतित हो गए थे तथा उन्हे अपने ऊपर राज्य सेना के आक्रमण का अदेशा था। अत भीलो ने सेना का मुकाबला करने के लिए आवश्यक तैयारिया कर ली थी। 26 मार्च को बारापाल, टीडि एव पडोना के भीलो ने बारापाल की पुलिस चौकी व थाने पर आक्रमण किया तथा उन्होंने थानेदार व सभी सिपाहियों को मार दिया। भील हिंसा पर उतर आए थे एव उन्होंने बनियों की दुकानो व गोवर्धन कलाल के घर में आग लगा दी थी।[74]

26 मार्च 1881 की रात मे राज्य की सेनाऐं मामा अमानसिह (राज्य का प्रतिनिधि) एव लोनारगन (अग्रेज प्रतिनिधि) के नेतृत्व मे बारापाल पहुँची। इसके साथ महाराणा का निजी सचिव श्यामलदास भी था। 27 मार्च को सेना ने बारापाल में सैंकडों भील झोपडियों को जलाकर राख कर दिया। 28 मार्च को पूरे दिन सैनिक अभियान जारी रहा था तथा बारापाल के आस–पास भीलों के झोंपडो को जलाया जाता रहा। फौज की इन कार्यवाहियो से बचने के लिए अधिकाश भीलों ने परिवार सहित स्वय अपने घरो को उजाड़कर सघन जगलो व पहाडियो की ऊँची चोटियो पर पहुचकर सुरक्षात्मक स्थिति प्राप्त कर ली थी। इसी बीच अलसीगढ पई एव कोटडा के भील विद्रोहियो के साथ सम्मिलित हो गए थे। कुछ ही समय मे उदयपुर राज्य के पहाडी क्षेत्रो में यह विद्रोह फैल गया। भीलो ने उदयपुर–खैरवाडा मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था। 29 मार्च 1881 को कोटडा के उत्तेजित भीलो ने दो पुलिस के सिपाहियो व कामदार धूलचन्द नागौरी की हत्या कर दी। इसी दिन परसाद के भीलो ने मगरा जिले के हाकिम मेहता अखेसिह को घेर लिया। सेनाएँ परसाद गाव की ओर मुडी तथा हाकिम को बचाने मे सफल रही। 30 मार्च को विद्रोही भीलो व राज्य की सेना के मध्य वास्तविक युद्ध आरम्भ हो गया था। चार दिन तक निरतर युद्ध के उपरान्त सेनाऐ सघन जगल पहाडी एव सकरी घाटियो मे कठिनाइयो के कारण भीलो को दबाने मे असफल रही।[75]

भीलो ने मार्ग में बाधा उत्पन्न कर राज्य की सेनाओं को आगे बढने से रोक दिया। निराश सेना व सेनापतियो ने सुरक्षात्मक स्थिति लेकर रिखबदेव मे डेरे डाल दिए थे। यहाँ

लगभग 8000 भीलो ने इन्हे घेर लिया। इस विद्रोह के प्रमुख नेता बीलखपाल का गामेती नीमा, पीपली का खेमा एव सगातरी का जोयता थे। सैनिक अधिकारियो ने भीलो के साथ शान्तिपूर्वक समझौते के प्रयास किए, किन्तु कोई सफलता नहीं मिली। महाराणा के निजी सचिव श्यामलदास ने रिखवदेव मन्दिर के पुजारी खेमराज भडारी के माध्यम से भील नेताओ से वार्ता आरम्भ की।[१]

10 अप्रेल, 1881 को भीलों ने निम्नलिखित माँगे प्रस्तुत की जिनके आधार पर समझौता वार्ता हुई[२] –

1 भविष्य मे भीलों एव उनके घरों (परिवारों) की गणना नही की जाए।
2 भील पुरुष एव महिलाओ का भार नही मापा जाए।
3 रिखवदेव में मुसलमानों को नहीं रहने दिया जाए।
4 पड़ोना व बारापाल मे थानेदार व सिपाहियों की हत्या को बड़ा अपराध मानते हुए भीलों को इसके अपराध से माफी दी जाए। किन्तु भविष्य में इस तरह के अपराधकर्ता को दण्ड दिया जा सकता है।
5 भीलों की भूमि की पैमाइश न की जाए।
6 बराड़ (प्रतीकात्मक कर) की दर घटाकर आधी की जाए।
7 ऐसी व्यवस्था की जाए जिससे कूता (राजस्व निर्धारण) के समय कामदार (छोटा राजस्व कर्मचारी) भीलो को कष्ट न पहुँचाए, किन्तु भीलो की ओर से उचित राजस्व देने से कभी मनाही नही होगी।
8 भीलों से कोदरा (जगली अनाज) पर कोई कूता नहीं लिया जाए।
9 आम एव महुवा की पत्तियों के सग्रह पर कोई कर न लिया जाए।
10 भीलों द्वारा स्वय के उपयोग हेतु महुवा के सग्रह पर उत्पाद शुल्क (आबकारी शुल्क) नहीं लिया जाए।
11 भील क्षेत्रो मे पुलिस थानों की सख्या नहीं बढाई जाए।
12 सवारों (सिपाहियों) द्वारा पटिया गाव के भीलों से पूनम की चौकी के मद मे 12 आना प्रति भील वसूल किया जाता है भविष्य मे यह राशि वसूल न की जाए।
13 अपने निजी उपयोग हेतु भीलों द्वारा घास व लकड़ी पर कर नहीं लिया जाए।
14 रिखवदेव के खजाने से जो राशि बीलख व पीपली पालो को प्राप्त होती थी, वह उन्हें दी जाए।
15 अफीम नमक एव तम्बाकू का ठेका नहीं दिया जाए।
16 पहाड़ों में घास व लकड़ी का ठेका नहीं दिया जाए।
17 पिछले तीन वर्षो में जिन भीलों को बन्दी बनाया गया था उन्हें मुक्त किया जाए।
18 सम्बन्धित भील पालों से डाक–हरकारे हटाए जाएँ।
19 सुरक्षा चौकियों पर तब तक सिपाही नियुक्त न किए जाएँ जब तक की भील मार्गो की सुरक्षा के दायित्व को स्वय न निभाएँ।
20 रिखवदेव एव श्रीनाथजी जाने वाले तीर्थयात्रियों से पुरानी परम्परानुसार भीलों व

बोलाई वसूल करने का अधिकार दिया जाए।

21 भीलो के गावों में जोगियो व घोषियो से कूता (उत्पादन का अश) वसूल न किया जाए जो वे कभी नही देते थे।

22 भीलों को निजी उपयोग हेतु मावडी बनाने का अधिकार बिना कर के प्रदान किया जाए।

23 डाकन प्रथा एव भीलों के आपसी विवादों सहित भीलों की सामाजिक परम्पराओ मे हस्तक्षेप नहीं किया जाए।

24 सभी भीलो को जिन्होने इस विद्रोह में भाग लिया है, माफी दी जाए।

उपरोक्त मागो के सम्बन्ध में राज्य प्रतिनिधियों व अग्रेजों के मध्य मतैक्य नहीं था। असल मे दोनो के मध्य विवाद इस बात पर था कि इस समझौते का श्रेय कौन ले। विवाद इतना बढ गया था कि गवर्नर जनरल ने स्वय उदयपुर स्थित अग्रेज अधिकारियों को लिखा, यदि भीलों के साथ व्यवहार में दरबार के अधिकारियों व कर्मचारियों को नियन्त्रित व निर्देशित नहीं किया गया तो ये स्थिति को बिगाड़ कर परेशानी उत्पन्न कर देगे।[78] अन्त में 25 अप्रेल 1881 को भीलों के साथ एक समझौता हो गया। राज्य के अधिकारी आधा बराड कर छोडने भविष्य मे भीलो को जनगणना कार्यो से कष्ट न पहुँचाने एव विद्रोही भीलो को माफी देने पर सहमत हो गए। भीलों ने राज्य के नियमों के पालन करने का वचन देते हुए कानून विरोधी गतिविधियो मे सलग्न न होने की स्वीकृति दी।[79]

उपरोक्त समझौते ने एक भयकर भील विद्रोह को शान्त अवश्य कर दिया था किन्तु पूर्णशान्ति स्थापित नही हो पाई थी। मार्च 1882 मे भोराई एव नठारा पाल के भीलों ने पुन विद्रोह कर दिया था। विद्रोही भीलों ने राजस्व कर्मचारी दयालाल चौबिसा के घर को घेर लिया। महाराणा ने मामा अमानसिह के नेतृत्व में सेना भेजी जिसके साथ मगरा का हाकिम मेहता गोविन्द सिह भी था। विद्रोह को निर्दयता पूर्वक कुचल दिया एव अनेक गमेतियो को बन्दी बना लिया था।[80]

कुछ समय तक भील शान्त रहे किन्तु 1899–1900 का वर्ष भयानक अकाल एव सूखे का वर्ष था। भील अकाल से अत्यधिक पीड़ित थे क्योंकि उन्हें राज्य से उचित राहत नही मिल रही थी। पूरे अकाल के दौरान भील मीणा एव गिरासिया आदिवासी अशान्त बने रहे। निराश आदिवासी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए सभी जगह लूट पाट पर उतर आए थे।[81] इस प्रकार 19 वी सदी में आदिवासी विद्रोह 1818 से आरम्भ होकर 1900 तक निरतर रूप से होते रहे तथा 20 वीं सदी के आदिवासी विद्रोहों में समाहित हो गए थे।

उपरोक्त भील विद्रोह स्वस्फूर्त थे एव अग्रेजी राज्य के अन्तर्गत स्थापित नई व्यवस्था के प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुए थे। अग्रेजी सरकार ने भील गतिविधियों के नियत्रण हेतु अनेक तरीके अपनाए। एक ओर समय–समय पर उन्होने भीलों को अनेक छूटे घोषित की एव वहीं दूसरी ओर भील क्षेत्रो के नियत्रण हेतु प्रभावशाली सैनिक व प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की। किन्तु 19 वीं सदी के इन विद्रोहों ने यह स्पष्ट कर दिया

63 वही
64 कविराज श्यामलदास पूर्वोक्त जिल्द दो भाग 3 पृ 2191
65 वही पृ 2192–93
66 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल ए प्रोसीडिंग्स अगस्त 1881 न 313–34
67 वही
68 वही एव कविराज श्यामलदास पूर्वोक्त जिल्द दो भाग 3 पृ 2217
69 वही
70 वही पृ 2191–92
71 वही पृ 2222
72 वही पृ 2225
73 वही पृ 2218 इस घटना का यह विवरण भी मिलता है कि गमेतियों को भूमि विवाद के सम्बन्ध मे नहीं बुलाया गया था बल्कि उन्हें उनके गावो मे गैर कानूनी शराब निकालने के सम्बन्ध मे बुलाया गया था किन्तु श्यामलदास इसे भूमि विवाद से जोडते हैं। विस्तृत विवरण हेतु देखिए राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिक–ए प्रोसीडिंग्स अगस्त 1881 न 313–34
74 वही
75 कविराज श्यामलदास पूर्वोक्त जिल्द दो भाग 3 पृ 2219–21
76 वही पृ 2222
77 वही पृ 2222–28 एव राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल–ए प्रोसीडिंग्स 1881 न 313–34
78 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन डिपार्टमेन्ट पॉलिटिकल–ए प्रोसीडिंग्स अप्रेल 1881, न 25–39
79 कविराज श्यामलदास, पूर्वोक्त जिल्द दो भाग 3 पृ 2227–8
80 वही पृ 2239
81 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन डिपार्टमेन्ट एण्ड पॉलिटिकल इन्टरनल प्रोसीडिंग्स मार्च 1900 न 190–203। इस अकाल के दौरान भील जनसख्या की भारी क्षति हुई थी। 1891 की जनगणनानुसार राजस्थान की (अजमेर–मेरवाडा को छोडकर) भील जनसख्या 605 426 थी जबकि 1901 मे इनकी जनसख्या मात्र 339 786 रह गई थी। इस प्रकार भील जनसख्या की क्षति एक दशक मे 43 91 प्रतिशत हुई। 1901 मे मेवाड के रेजीडेन्ट ने टिप्पणी की थी कि "भीलों से उनकी जनसख्या इतनी अधिक कम हो गई है कि उनके कोई बडे विद्रोह की सम्भावना नही है।" विस्तृत विवरण हेतु देखे रिपोर्ट ऑन दी पॉलिटिकल ऐडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दी राजपूताना स्टेट्स एण्ड अजमेर–मेरवाडा 1900–1901 पृ 8

अध्याय–2

मेवाड़ का बिजौलिया आन्दोलन

राजस्थान के किसान आन्दोलन के इतिहास की शृखला मे मेवाड़ (उदयपुर राज्य) के बिजौलिया ठिकाने का किसान आन्दोलन अग्रणी रहा है। उदयपुर राज्य मे किसानो की स्थिति अत्यधिक दयनीय थी। यहाँ कुल कृषि भूमि का 87 प्रतिशत भाग जागीरदारो के नियत्रण में था जबकि कुल 13 प्रतिशत भाग सीधे महाराणा के नियत्रण में था। जागीर क्षेत्रों मे सामन्तो के अत्याचार के कारण किसानो की दशा अधिक शोचनीय थी। किसानों के साथ दासों जैसा व्यवहार होता था। जब सामन्ती शोषण व दमन ऐसी सीमा पर पहुच गया कि उसने किसानों के अस्तित्व को चुनौती उपस्थित कर दी तो किसान सामन्तों के विरुद्ध उठ खडे हुए थे। इस दिशा में बिजौलिया ठिकाने का कृषक आन्दोलन राजस्थान के अन्य किसान आन्दोलनो का अगुवा रहा जिसने अन्य किसान एव जन आन्दोलनों को प्रेरित किया।

बिजौलिया ठिकाना उदयपुर राज्य की "अ" श्रेणी की जागीरो मे से एक था जो अब राजस्थान के भीलवाडा जिले मे स्थित है। यहाँ के जागीरदार की गिनती उदयपुर के 16 उमरावो में होती थी जो महाराणा की सलाहकार परिषद में सम्मिलित थे। इस ठिकाने (जागीर) का क्षेत्रफल 100 वर्ग मील था जो 25 गावों में सगठित था। सन् 1921 में सम्पूर्ण ठिकाने की जनसख्या 12 हजार थी।[1] सन् 1931 मे यहा की जनसख्या 15 हजार थी जिसमें 10 हजार किसान थे। किसानो की कुल जनसख्या मे से धाकड जाति के किसानों की जनसख्या 6 हजार थी जो कुल किसान जनसख्या का 60 प्रतिशत थी।[2]

बिजौलिया ठिकाने मे भू–राजस्व निर्धारण एव सग्रह की पद्धति इस आन्दोलन का मुख्य मुद्दा थी। इस कार्य हेतु मुख्यत लाटा एव कूता पद्धति प्रचलित थी। इसके अन्तर्गत ठिकानो का कामदार अथवा अन्य राजस्व कर्मचारी खड़ी फसल का आकलन कर राजस्व का निर्धारण किया करते थे। कुल उत्पादन का एक मोटा आकलन कर ठिकाने का हिस्सा निर्धारित कर दिया जाता था। यह अत्यधिक पुरानी पद्धति थी जिसके द्वारा किसानो को लूटा जा रहा था। इसके अन्तर्गत किसान अपनी मेहनत की कमाई से वचित रह जाता था।

विजय सिह पथिक ने अपनी एक व्यगात्मक टिप्पणी मे कहा कि "लाटा–कूता जागीरदार द्वारा किसानों की लूट बन गई है।"[3] इसके अतिरिक्त किसानो को अपनी भूमि से बेदखली का निरन्तर भय बना रहता था। भू–राजस्व के भुगतान न करने पर किसानो को बेदखल कर दिया जाता था। भू–राजस्व की दर कुल उत्पादन का आधा भाग

निर्धारित थी तथा अकाल व असाधारण मौसम के कारण फसल खराबी अथवा बरबादी की स्थिति मे किसी प्रकार की छूट नही दी जाती थी।[8] ऐसी स्थिति मे अधिकाश किसानों को सूदखोर से भारी ब्याज की दरो पर पैसा उधार लेना पडता था जिससे किसानो की कर्जदारी बढती जा रही थी।

भू–राजस्व के अतिरिक्त किसानो से भारी सख्या मे लाग–बाग ली जाती थी। इनमे कुछ नियमित रूप से प्रतिवर्ष भू–राजस्व के साथ ही वसूल की जाती थी जबकि कुछ विशेष अवसरो पर वसूल की जाती थी। कभी–कभी लाग–बागो का भार भू–राजस्व से भी दुगना हो जाता था। यह शोषण की निष्ठुर व अन्यायी व्यवस्था थी। बिजौलिया मे किसानो पर 86 विभिन्न प्रकार की लागे थोपी हुई थी।[9] लाग–बागो की निश्चित सख्या नही थी उदाहरणार्थ सन् 1922 मे लाग–बागो की सख्या 74 थी।[10] लाग–बाग वसूली की व्यवस्था कोई नवीन नही थी बल्कि इसका प्रचलन मध्यकाल से ही चला आ रहा था। प्रारम्भ मे किसानो व अन्य जनता से लाग–बाग आकस्मिक प्रशासनिक खर्चों की पूर्ति हेतु वसूल की जाती थी। किन्तु उस समय लाग–बागों की सख्या व राशि नाम मात्र ही थी। बदलती स्थितियो मे यह किसानो से अवैध धनापहरण बन चुका था, जो सामन्त व उसके कारिन्दे किसानो से किया करते थे। अग्रेजी नियत्रण के पूर्व बिजौलिया की विशेष स्थिति थी। यह क्षेत्र मराठा आक्रमणो का शिकार था। जब मराठे मेवाड पर आक्रमण करते थे तो बिजौलिया ठिकाना पहला शिकार होता था। इन आक्रमणो ने किसानो को आतकित कर दिया था क्योंकि इनसे उनका सम्पूर्ण जीवन छिन्न–भिन्न हो जाता था। किसान जागीरदार का सहयोग करते हुए शत्रु से लडते थे एव जागीरदार किसानो की सहायता से अपनी सत्ता व प्रशासन पुन स्थापित करता था। वास्तव मे सकट के इन दिनों में प्रजा व जागीरदार एक परिवार की तरह रहते थे। यदि जागीरदार को सैनिक, प्रशासनिक अथवा घरेलू आवश्यकताओ हेतु अतिरिक्त धन की आवश्यकता होती थी तो किसान यह राशि एकत्रित कर जागीरदार को भेंट कर देते थे। खराब मौसम व फसल बरबादी की स्थिति मे किसानो को भू–राजस्व की अदायगी मे छूट मिल जाती थी। इतना ही नही बल्कि किसानों को उनकी पुत्री के विवाह अथवा परिवार में किसी मौत की स्थिति में भी भू–राजस्व की छूट किसान को मिल जाती थी।[11] बिजौलिया की असुरक्षित एव सकटकालीन राजनीतिक दशाओ ने जागीरदार व जनता के मध्य अत्यधिक निकटता स्थापित की थी तथा दोनों ही एक दूसरे की मौलिक आवश्यकता बन गए थे।

सन् 1818 में उदयपुर राज्य ने अग्रेजों के साथ सन्धि की जिसके अन्तर्गत महाराणा को बाह्य आक्रमणों के विरुद्ध अग्रेजों का आश्वासन प्राप्त हो गया था। इस सन्धि के पश्चात् शासक व शासितों के मध्य सम्बन्धों मे परिवर्तन आया। इन बदलते सम्बन्धों में जागीरदार अपनी प्रजा के स्थान पर राज्य एव अग्रेजों के प्रति वफादार हो गया था। जागीरदार भू–राजस्व के अतिरिक्त आकस्मिक खर्चो के लिए जो धन किसानो से प्राप्त करता था वह अब लाग–बाग के नाम से उसकी आय का नियमित साधन बन गया था। जागीरदार की बढती हुई फिजूलखर्ची व औपनिवेशिक आर्थिक भार के परिणाम

स्वरूप इन लागों की सख्या व राशि बढने लगी थी। किसानो के शोषण की प्रचण्डता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि एक अनुमान के अनुसार किसानों को उनके 87 प्रतिशत उत्पादन से वचित होना पडता था।[8] किसानों का स्पष्ट मत था कि *लाग–बागों ने उनके जीवन को कष्टमय बना दिया था।* अत दोषपूर्ण लाग–बाग व्यवस्था ने किसानो को जागीरदार के विरुद्ध विद्रोह के लिए मजबूर कर दिया था।

भू–राजस्व एव लागो के भार ने किसानो को कर्जदार बना दिया था। सूदखोर अथवा महाजन किसानो को भारी ब्याज की दरो पर ऋण देते थे तथा अनेक मनमानी शर्तें लाद देते थे। सूदखोर सामन्ती व औपनिवेशिक अर्थ व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण अग थे। सूदखोर किसानो का अमानवीय तरीको से शोषण एव उन्हें धोखे से लूट रहा था।[9] किसानो व महाजनो के मध्य लेन–देन में उत्पन्न विवाद की स्थिति मे जागीरदार महाजन का पक्ष लेते थे। किसानो की कर्जदारी बिजौलिया के किसान आन्दोलन का प्रमुख कारण व मुद्दा थी।

बेगार का प्रश्न भी किसान आन्दोलन का एक प्रमुख कारण था। विभिन्न अवसरों पर जागीरदार व ठिकाने के कर्मचारी किसानो को बेगार देने के लिए मजबूर करते थे। किसानों को जागीरदार के गढ तक भू–राजस्व का अनाज पहुचाने हेतु बिना किसी भुगतान, भोजन व चारे के बैलगाडियों की आपूर्ति करनी पड़ती थी। जागीरदार राज्य अधिकारियो व जागीर के कर्मचारियो का सभी प्रकार का सामान व भार किसान को बैलगाड़ी, पशु अथवा अपने सिर पर लाद कर ले जाना पडता था। जब कभी अधिकारियो को आवश्यकता पडती थी तो किसानों को बलात् पकडकर बेगार पर लगा दिया जाता था। बेगार पर लगाए गए किसानों का कृषि कार्य अवरुद्ध हो जाता था जिससे किसान को भारी हानि उठानी पड़ती थी।

बिजौलिया के जागीरदार की मनमानी अथवा निरकुश शक्तिया भी किसान आन्दोलन का महत्त्वपूर्ण कारण थी। जागीरदार को दीवानी व फौजदारी मामलो में न्यायिक अधिकार प्राप्त थे। उसे पाच वर्ष तक की सजा देने व पाच सौ रूपये तक का अर्थदण्ड देने का अधिकार प्राप्त था।[10] यू तो जागीरदार महाराणा मेवाड एव अग्रेजो को अपना अधिपति मानता था किन्तु वह अपनी जागीर का निरकुश शासक था। वहाँ लिखित कानूनो का सर्वथा अभाव था एव जागीरदार अपनी इच्छा व सनक के आधार पर न्याय करता था। अत किसानों ने जागीरदार की मनमानी स्थिति को चुनौती दी।

बिजौलिया ठिकाने मे शिक्षा व स्वास्थ्य जैसी कल्याणकारी गतिविधियो का सर्वथा अभाव था। किसान मध्ययुगीन अधकार मे जीवन यापन कर रहे थे। बिजौलिया के किसान आन्दोलन का एक ध्येय शिक्षा व स्वास्थ्य सबधी सुविधाएँ प्राप्त करना भी था।

बिजौलिया के किसान उपरोक्त सामती शोषण व उत्पीडन के अन्तर्गत बुरी तरह कष्टप्रद जीवन बिता रहे थे। प्रचलित शोषण ने *किसानो के अस्तित्व को ही मिटाने की* स्थिति उत्पन्न कर दी थी। अत किसानों ने आत्मरक्षार्थ सामती व्यवस्था के विरुद्ध सघर्ष

आरम्भ कर दिया था।

घटनाक्रम व विकास के स्तरो के आधार पर बिजौलिया के किसान आदोलन को मुख्यत तीन चरणो मे विभाजित किया जा सकता है। पहला चरण 1897–1915 जिसे स्वस्फूर्त किसान आदोलन की सज्ञा से जाना जा सकता है। इस चरण के अन्तर्गत स्थानीय नेतृत्व ने आदोलन को आगे बढाया। इसके दौरान जातीय आधारो पर किसान आदोलन आरम्भ होकर राष्ट्रीय राजनीतिक व सामाजिक चेतना के साथ जुडने की ओर प्रवृत हुआ। दूसरा चरण 1916–1922 किसानो की नई चेतना का काल था जिसका नेतृत्व राष्ट्रीय स्तर के प्रशिक्षित एव परिपक्व नेताओ ने किया। इस चरण के अन्तर्गत बिजौलिया का किसान आन्दोलन जाति एव क्षेत्र की सकीर्णताओ को लाघकर राष्ट्रीय धारा के साथ जुडने की प्रक्रिया मे था। इतना ही नही वरन् इस चरण मे यह आन्दोलन अपने क्षेत्र विस्तार के कारण राष्ट्रीय राजनीतिक मच पर उपस्थित हुआ तथा राष्ट्र की मुख्य धारा से जुड गया। तीसरा चरण 1923–1941 तक जारी रहा। बिजौलिया किसान आन्दोलन जिस गति व उत्साह के साथ उदित व विकसित हुआ उसका पटापेक्ष अधिक उत्साही नहीं रहा।[11]

आन्दोलन का प्रथम चरण (1897–1915):

जागीरदारी प्रथा कोई नवीन बात नही थी। जैसा पूर्व मे उल्लेख किया गया है कि अग्रेजों की आधीनता स्वीकार करने के पश्चात् जागीरदार व जनता के मध्य सम्बन्धो मे असन्तुलन उत्पन्न होने लगा था। सन् 1894 में बिजोलिया के राव गोविन्ददास की मृत्यु तक किसानों को जागीरदार के खिलाफ कोई विशेष शिकायत नही थी। सन् 1894 में नया जागीरदार किशन सिह बना जिसने किसानों के प्रति नीति व जागीर प्रबन्ध में परिवर्तन किए।[12] इन नए परिवर्तनों के अन्तर्गत जागीर के पुराने प्रशासको व कर्मचारियों को हटाकर नई नियुक्तिया इसलिए की गई कि नवनियुक्त अधिकारी किसानो से अधिक लगान वसूल कर सकें। परम्परागत पटेलो को हटाकर नए पटेल नियुक्त किए गए। समय–समय पर आवश्यकतानुसार अस्थाई तौर पर ली जाने वाली लागो को नियमित व स्थाई कर दिया गया। इस प्रकार परम्परागत सम्बन्धों मे असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हुई जिसने बिजौलिया किसान आन्दोलन को जन्म दिया।

किसानों में नए परिवर्तनों के कारण असन्तोष बढ रहा था किन्तु उसके प्रस्फुटन का उपयुक्त अवसर नहीं मिल रहा था। सन् 1897 में गिरधरपुरा नामक गाव मे गगाराम धाकड़ के पिता के मृत्युभोज (नुक्ता) के अवसर पर हजारों धाकड जाति के किसान एकत्रित हुए।[13] शोषित व उत्पीडित किसानो ने अपने कष्टों एव दुर्दशा की एक दूसरे से खुलकर चर्चा की तथा इसी समय एकत्रित किसानों की एकमत राय थी कि उनकी दुर्दशा का कारण दोषपूर्ण भू–राजस्व एव कर पद्धति है। इससे मुक्ति पाने के लिए कुछ किए जाने पर भी सहमति हुई। इसी क्रम मे किसानो ने महाराणा मेवाड के समक्ष एक प्रतिनिधि मडल भेजने का निर्णय लिया। वहीं एकत्रित किसानों ने प्रतिनिधि मण्डल मे दो

सदस्यो क्रमश बेरीसाल के नानजी पटेल व गोपाल निवास के ठाकरी पटेल को नियुक्त कर उन्हे किसानो की समस्याओ के समाधान हेतु महाराणा मेवाड से मिलने का दायित्व सौंपा। यह प्रतिनिधि मण्डल आठ माह के निरन्तर प्रयासो के उपरान्त महाराणा मेवाड के समक्ष उदयपुर पहुँचकर किसानो की समस्याएँ व शिकायते प्रस्तुत करने मे सफल रहा। महाराणा ने बिजौलिया के मामले मे किसानो की शिकायतो पर जॉच हेतु राजस्व अधिकारी नियुक्त किया।[4]

राजस्व अधिकारी ने अपनी जॉच मे बिजौलिया के किसानो की शिकायतो को प्रामाणिक व सत्य पाया। जागीरदार ने किसानो को इस जॉच अधिकारी से मिलने भी नही दिया। उसके उपरान्त भी जॉँच जागीरदार के विरुद्ध गई थी। जॉच रिपोर्ट महाराणा के सम्मुख प्रस्तुत की गई जिसे महकमाखास को कार्यवाही हेतु सौंप दिया गया। महकमाखास ने बिना किसी कार्यवाही के जागीरदार को चेतावनी व सलाह दी। इस सलाह मे जागीरदार को किसानों के प्रति व्यवहार व प्रशासन मे परिवर्तन की सलाह सम्मिलित थी। जागीरदार ने इस सम्पूर्ण प्रकरण का उल्टा ही अर्थ निकाला। किसी प्रकार के कृषकीय सुधारो को लागू करने के स्थान पर किसानो को उत्पीडित व आतकित करना आरम्भ कर दिया था। इसे जागीरदार ने अपनी सत्ता के प्रति किसानो की चुनौती के रूप मे लिया जिसे वह शक्ति द्वारा कुचल देना चाहता था। इसी ध्येय से जागीरदार ने प्रतिनिधि मण्डल के दोनो सदस्यो क्रमश नानजी पटेल एव ठाकरी पटेल को बिजौलिया जागीर के भू-भाग से निष्कासित कर दिया। बिजौलिया के किसान जागीरदार की इस कार्यवाही से हतोत्साहित हुए किन्तु उन्होने धैर्य नही छोडा। वास्तव मे जागीरदार की इस कार्यवाही ने किसानो को पक्के तौर पर यह सोचने के लिए बाध्य कर दिया था कि उनके कष्टो का कारण सामन्ती शोषण है।[5]

जागीरदार के व्यवहार से किसान खिन्न थे। वर्ष 1899–1900 मे भयानक अकाल पड़ा जिसने किसानो की दुर्दशा मे और बढोतरी की थी। सन् 1903 की एक घटना ने किसानो को खुले आम जागीरदार की सत्ता को चुनोती देने के लिए मजबूर कर दिया था। इस वर्ष जागीरदार ने किसानो पर चवरी नामक एक लाग थोप दी थी जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पुत्री के विवाह के समय तेरह रुपये चवरी लाग देना निर्धारित किया गया था। नई लाग किसानो पर न केवल एक आर्थिक भार थी वरन सामाजिक रूप से यह अपमानजनक भी थी। विरोध स्वरूप भारी सख्या मे किसान एकत्रित होकर 200 विवाह योग्य कुवारी लडकियो के साथ जागीरदार के समक्ष प्रस्तुत हुए तथा चवरी लाग को वापस लेने के लिए कहा। किसानों का कहना था कि चवरी लाग के आर्थिक भार के कारण वे अपनी पुत्रियो का विवाह करने में असमर्थ है। जागीरदार ने किसानो के साथ अपमानजनक व्यवहार करते हुए कहा कि इन लडकियो को बाजार मे बेच दो तथा चवरी जमा करा दो।[6] इस दुर्व्यवहार ने किसानो को अत्यधिक बेचैन कर दिया। किसानों ने जागीरदार को धमकी दी कि "वे ऐसे स्थान पर नही रहेगे जहा तुम्हारे जैसा शासक राज्य करता हो जो हमारी पुत्रियो को बिकवाना चाहता है।"[7] उसी रात

अनेक गावो के धाकड जाति के किसान भारी सख्या मे ग्वालियर राज्य के भू-भाग म निष्क्रमण कर गए।

यह एक असामान्य घटना थी तथा जागीरदार की सत्ता को चुनौती भी थी। यह एक प्रकार का किसानों द्वारा आरम्भ किया गया असहयोग आन्दोलन था। किसानो के निष्क्रमण से जागीरदार का चिंतित होना एक स्वाभाविक बात थी। इससे सीधे तौर पर आर्थिक हानि तो थी ही साथ ही जागीर मे व्याप्त कुशासन भी स्पष्ट होता था। जागीरदार ने स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए 1904 म किसानो को माफी मागते हुए वापस बुला लिया तथा चवरी लाग को वापस लेते हुए भू-राजस्व लाग-बाग एव बेगार सम्बन्धी मामलो मे निम्न छूटें घोषित की" –

1 ठिकाने का कामदार गाव के पाच किसाना व पटेल की सहमति से कूत का कार्य सम्पन्न करेगा।
2 पूर्व मे भोग नामक लाग प्रति मन पर 4 सेर की दर से वसूल की जाती थी किन्तु अब यह दो सेर प्रति मन की दर से वसूल की जाएगी। अनाज की तुलाई के लिए तकारी के स्थान पर काटा प्रयोग मे लाया जाएगा।
3 सन–धन (जूट एव कपास) पर राजस्व 2½ रुपये प्रति बीघा की दर से लिया जाएगा।
4 अफीम पर हासिल (नगदी राजस्व) पाच रुपए प्रति बीघा की दर से पूर्वानुसार लिया जाएगा।
5 पूर्व में बाटा (बटाई) उत्पादन का 1/2 भाग वसूल किया जाता था अब यह 2/5 भाग की दर से वसूल किया जाएगा।
6 कोंकूडा भूमि (कुए द्वारा सिंचित भूमि) पर खार लखार लाग छ आना प्रति बीघा की दर से तथा माल भूमि पर तीन आना प्रति बीघा की दर से वसूल की जाएगी।
7 पूर्व म पूला लाग का रुपया प्रति 300 पूला वसूल की जाती थी किन्तु भविष्य मे यह एक रुपया प्रति 1000 की दर से वसूल की जाएगी।
8 जब कभी कोई अग्रेज अथवा उदयपुर महाराणा ठिकाना आऐंगे तो किसानो की भैंसें बेगार मे काम मे ली जा सकेगी।
9 किसान निजी उपयोग हेतु अपनी भूमि पर उगे हुए बबूल वृक्ष काट सकेगे। यदि किसान इन्हें बेचेगा तो आधी कीमत ठिकाने म जमा करवानी पडेगी।
10 नूत बराड नामक नई लाग समाप्त की जाती है।
11 घोडे का धारा नामक लाग धारा के रूप में ठिकाने के घोडों के लिए ली जाती थी. अब नहीं ली जाएगी।
12 अपनी फसल की सुरक्षा हेतु किसानो को जगली सूअर व अन्य जानवरो को मारने की अनुमति प्रदान की जाती है।
13 मापा लाग (कस्टम ड्यूटी) एक पैसा प्रति रुपये की दर से वसूल की जाएगी।
14 इस्तमरारी–चूजा लाग जो एक आना प्रति रुपये की दर से वसूल की जाती थी उसको समाप्त किया जाता है।
15 सिगोटी लाग (पशु लाग) जो गाव में पशुओं के विक्रय पर लगाई जाती थी, वह समाप्त की जाती है।

सन् 1904 में घोषित उपरोक्त छूटो का लाभ किसानो को अधिक समय तक नहीं मिल सका क्योकि 1906 मे बिजौलिया के राव ने इन छूटो को वापस ले लिया था। सन् 1906 मे राव कृष्ण सिह की नि सन्तान मृत्यु के पश्चात् उसका नजदीकी रिश्तेदार पृथ्वी सिह जागीरदार बना। उसने न केवल छूटों को वापस लिया वरन् नई लाग तलवार बधाई (उत्तराधिकार शुल्क) किसानों पर थोप दी थी। नया प्रशासन किसानों के लिए अधिक कष्टदायक सिद्ध हुआ क्योंकि नए जागीरदार ने शक्ति द्वारा निर्दयतापूर्वक अवैध करों की वसूली करना आरम्भ कर दिया था। इसके कठोर व्यवहार का एक कारण यह भी था कि वह बाहरी व्यक्ति था जो कामा (भरतपुर) से आया था तथा उसका बिजौलिया जागीर के निवासियो के साथ कोई परम्परागत सम्बन्ध नहीं था।

विजौलिया के किसान सामती शोषण के चगुल में फसे हुए निस्सहाय महसूस कर रहे थे। सन् 1913 तक यह आन्दोलन किसानों का स्वस्फूर्त प्रयास था जिसका नेतृत्व स्थानीय साधु सीताराम दास ने किया।[19] मार्च 1913 मे साधु सीताराम दास के नेतृत्व में लगभग 1000 किसान जागीरदार के महल के सामने अपनी शिकायतें प्रस्तुत करने के लिए एकत्रित हुए। जागीरदार ने किसानो से मिलने से इन्कार करते हुए उनको पूर्णत नजर अन्दाज कर दिया। जागीरदार के इस उपेक्षापूर्ण व्यवहार ने किसानो को सामन्ती दमन के विरुद्ध आगे कदम बढ़ाने के लिए मजबूर किया। इसके अन्तर्गत किसानो ने वर्ष 1913–14 मे खेती न करके भूमि को पडत छोड दिया था। इस निर्णय से जागीरदार को भू–राजस्व को भारी हानि उठानी पड़ी जबकि किसान ग्वालियर बूँदी एव उदयपुर की खालसा भूमि पर खेती करके गुजारे का साधन जुटाने में सफल रहे।

दिसम्बर 1913 में जागीरदार पृथ्वी सिह की मृत्यु हो गई तथा उसके स्थान पर उसका अल्प वयस्क पुत्र केशरी सिह बिजौलिया का उत्तराधिकारी बना। जागीरदार की अल्प वयस्कता के कारण जागीर का नियत्रण सीधे उदयपुर राज्य के अन्तर्गत आ गया था। आन्दोलित किसान विजौलिया मे खेती न करने के निर्णय पर दृढ थे। बदलती स्थितियाँ आन्दोलित किसानों के पक्ष मे थी। उदयपुर राज्य के महकमाखास ने किसानो की शिकायतो की सुनवाई करते हुए बिजौलिया मामले की जाँच करने व किसानों की समस्याओ के समाधान हेतु जनवरी 1914 मे दो अधिकारियों की नियुक्ति की। पूर्ण जाँच के उपरान्त मेवाड राज्य विजौलिया ठिकाने से किसानों को कुछ छूटे दिलवाने मे सफल रहा। 24 जून, 1914 को निम्नलिखित रियायतें घोषित की गई थी[20] –

1 भोग (भू–राजस्व) के रूप मे पैदावार के 2/5 भाग के स्थान पर एक तिहाई भाग लिया जाएगा।
2 पूर्व मे खुनाची लाग 6½ सेर प्रतिमन की दर से वसूल की जाती थी, किन्तु भविष्य मे यह 4½ सेर प्रतिमन की दर से वसूल की जाएगी।
3 टकी हालमा एव पूला लाग समाप्त की जाती है।
4 पूर्व मे आम एव महुवा पर बाटा उत्पादन का आधा भाग लगता था किन्तु अब यह एक–तिहाई होगा।

5. किसान अपने उपयोग हेतु बिना किसी लाग भुगतान के बबूल के पेड इस शर्त पर काट सकेगा कि वह इन्हें अन्य किसी को नही बेचेगा।
6. कपास पर हासिल (नकदी राजस्व) तीन रुपये चार आने एव दो पैसे प्रति बीघा लगता था तथा इसके साथ 7½ सेर कपास प्रति बीघा की लाग ली जाती थी। अब यह दर 4 रुपये प्रति बीघा होगी तथा लाग पूर्णत समाप्त की जाती है।
7. सहना (एक तरह की पुलिस) द्वारा ली जाने वाली बौना का धान नामक लाग समाप्त कर दी जाएगी।
8. कूता कार्य के दौरान कामदार को सहयोग करने वाले व्यक्ति को कोई अनाज नहीं दिया जाएगा।
9. बेगार मे वर्षा के मौसम मे किसानो द्वारा जागीर को दिए जाने वाले ईंधन व घास की गाठे की प्रथा समाप्त की जाती है।
10. ईख पर लगने वाली लाग के अतिरिक्त पटेल बीस सेर गुड अपने लिए एव बीस सेर गोपालजी के मदिर के लिए लेता था अब दोनो मदों के अन्तर्गत केवल दस सेर ही लेगा।
11. भोग तुलाई के समय अनाज तोलने वाले को 1½ सेर प्रतिमन की दर से दिया जाएगा तथा एक स्थान से दूसरे स्थान अनाज ढोने वाले को एक सेर प्रतिमन की दर से अनाज दिया जाएगा।

उपरोक्त रिआयतें केवल घोषित की गई थी। इन्हें कभी लागू नहीं किया गया। यह एक आश्चर्यजनक स्थिति थी। या यू कहें कि किसानों का 1913–14 का असहयोग आन्दोलन धोखाधड़ी द्वारा असफल बना दिया गया था। लम्बे समय में आन्दोलित किसानों को यह भरोसा हो गया था कि बिजौलिया के जागीरदार से उन्हें कोई रिआयत मिलने वाली नहीं है, किन्तु मेवाड़ राज्य से वे न्याय की अपेक्षा रखते थे। मेवाड़ राज्य की दोहरी प्रशासनिक व्यवस्था थी। जहा महाराणा मेवाड़ कोई भी निर्णय लेने के लिए एक ओर अग्रेज अधिकारियों पर निर्भर करता था वहीं दूसरी ओर अपने प्रमुख जागीरदारों (16 उमरावों) की सलाह लेना आवश्यक समझता था। जैसा पूर्व मे उल्लेख किया गया है कि इस समय बिजौलिया जागीर का प्रबन्ध सीधे राज्य के नियत्रण में था जो किसानों के हित में कहा जा सकता है, किन्तु उपरोक्त घोषणा को लागू न करने के पीछे बडे जागीरदारो का हाथ था। वे नहीं चाहते थे कि बिजौलिया के किसानों को रिआयतें देकर अन्य जागीरो में भी किसान आन्दोलन जैसे सक्रामक रोग को आमन्त्रित किया जाए। इस घोषणा को लागू करने का दूसरा अर्थ था सामन्तों की शक्ति का ह्रास जो उस समय के सर्वशक्तिमान होने का दम्भ रखने वाले सामन्तों को एकदम पसन्द नहीं आ सकता था।

जून, 1914 की घोषणा ने बिजौलिया के किसान आन्दोलन को क्षणिक रूप में अस्थाई तौर पर शात करने में सफलता प्राप्त अवश्य की, किन्तु बिजौलिया के किसान अधिक समय तक अपने सामन्त विरोधी आन्दोलन को स्थगित नहीं रख सके। किसानों ने उपरोक्त घोषणा के बाद अपना कृषि कार्य पुन आरम्भ कर दिया था, किन्तु घोषणा के लागू न होने के कारण किसानों में असन्तोष बढता जा रहा था। वर्ष 1915 तक इस दिशा में कोई अन्य प्रगति नहीं हुई। इस प्रकार बिजौलिया किसान आन्दोलन का प्रथम चरण

असफलता समेटे हुए था। किन्तु इस चरण का सही परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया जाए तो हम इसे एक सफल युग की संज्ञा से परिभाषित कर सकते हैं। इस चरण में किसानों में भारी उत्साह व नई चेतना का संचार हुआ। इस चरण के दौरान स्वस्फूर्त किसान आन्दोलनो का नेतृत्व भोले एव अनपढ किसानो ने स्वय किया था। जिससे किसानो में राजनीतिक चेतना के उदय का युग आरम्भ हुआ। अत इस चरण में ऐसी भूमि तैयार हो गई थी जिस पर तीखा सामन्त विरोधी संघर्ष का वृक्षारोपण सम्भव था।

दूसरा चरण (1916–1922)

सन् 1916 मे विजय सिह पथिक के बिजौलिया आगमन एव किसान आदोलन का नेतृत्व सम्भालने से आरम्भ होता है *बिजौलिया किसान आदोलन का दूसरा चरण।* साधु सीताराम दास ने 1915 में विजय सिह पथिक को बिजौलिया किसान आन्दोलन का नेतृत्व सम्भालने के लिए आमन्त्रित किया। विजय सिह पथिक रासबिहारी बोस के क्रान्तिकारी सगठन का सदस्य था। उसका वास्तविक नाम भूप सिह था तथा उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर जिले के गुढावली नामक गाव का रहने वाला था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि 1857 के विद्रोह मे उसके पिता व पितामह ने सक्रिय भागीदारी निभाई थी। उसके पितामह अग्रेजी सेनाओ से लड़ते हुए 1857 में शहीद हुए थे तथा क्रान्ति के दमन के पश्चात् इनके पिता को बन्दी बनाया गया था।[21] अत विजय सिह पथिक को उसकी पृष्ठभूमि ने क्रान्तिकारी बनाया था। उसे उसके क्रान्तिकारी दल के साथियो ने राजस्थान में क्रान्तिकारी गतिविधियों को सगठित करने के लिए भेजा था। इसी दल के रासबिहारी बोस एव सचिन्द्रनाथ सान्याल ने अपने साथियो के साथ मिलकर 23 दिसम्बर, 1912 को दिल्ली मे गवर्नर जनरल हार्डिंग पर बम फेका जब वह भारत की नई राजधानी मे औपचारिक रूप से पहली बार प्रवेश कर रहा था। इस घटना मे हार्डिंग बाल–बाल बचा तथा क्रान्तिकारियो की योजना असफल हो गई जिससे क्रान्तिकारी गतिविधियो मे अवरोध उत्पन्न हो गया। सन् 1914 मे पुन रासबिहारी बोस एव सचिन्द्र नाथ सान्याल ने 21 फरवरी 1915 को सैनिक क्रान्ति की योजना बनाई किन्तु विश्वासघात के कारण योजना असफल हो गई। रासबिहारी बोस भाग कर जापान चला गया तथा सचिन्द्रनाथ सान्याल बन्दी बना लिया गया तथा उसे आजीवन कारावास की सजा हो गई।[22] राजस्थान मे विजय सिह पथिक एव उसके साथियों को इस सगठन से जुड़े होने के सन्देह मे बन्दी बना लिया गया था। विजय सिह पथिक को टॉडगढ की जेल में डाल दिया गया। कुछ समय पश्चात् वह जेल से बच निकला तथा अपना नाम विजय सिह पथिक रखकर राजस्थानी वेषभूषा धारण कर राजस्थान मे ही सामाजिक कार्य करने लगा।

जेल से बचने के बाद विजय सिह पथिक ने चित्तौड के समीप ओछडी नामक गाव में किसानों के बीच कार्य करते हुए विद्या प्रचारणी सभा की स्थापना की। जनवरी 1915 मे उसने विद्या प्रचारणी सभा का वार्षिक समारोह आयोजित किया। इस समारोह में बिजौलिया का साधू सीताराम दास भी सम्मिलित हुआ। साधू सीताराम दास विजय सिह पथिक के विचारो से भारी प्रभावित हुआ तथा उससे बिजौलिया के आन्दोलित किसानो

का नेतृत्व सम्भालने के लिए आग्रह किया। पथिक 1916 म बिजोलिया पहुंचा तथा आन्दोलन का नेतृत्व सम्भाला।[23] विजय सिह पथिक एक परिपक्व राजनीतिज्ञ व आन्दोलनकर्ता था। उसने बिजौलिया किसान आन्दोलन को एक निश्चित व सगठित स्वरूप प्रदान किया। उसने बिजौलिया मे भी विद्या प्रचारणी सभा की स्थापना की। इस सभा के अन्तर्गत एक पुस्तकालय एक स्कूल व एक अखाडा स्थापित किया गया।[24] ये सरथान किसान आन्दोलन की राजनीतिक गतिविधि का केन्द्र बन गए थे। इसी समय माणिक लाल वर्मा जो बिजौलिया ठिकाने के कर्मचारी थे ने विजय सिह पथिक की गतिविधियो से अत्यधिक प्रभावित होकर ठिकाने की सेवा से त्याग पत्र दे दिया। तत्पश्चात माणिक लाल वर्मा ने किसानो के कल्याण हेतु पथिक के साथ कार्य करना आरम्भ किया। माणिक लाल वर्मा ने पथिक की सलाह पर विद्या प्रचारणी सभा के अन्तर्गत येरीसाल व उमाजी का खेडा नामक गावो मे विद्यालय खोले। इस प्रकार किसानो मे शिक्षा के माध्यम रो नई चेतना का सचार करने मे पथिक सफल रहा।

अब तक बिजौलिया का किसान आन्दोलन सामाजिक आधार पर धाकड जाति के किसानों की जाति पचायत द्वारा चलाया जा रहा था। सन् 1916 मे पथिक ने बिजौलिया किसान पचायत की स्थापना की तथा प्रत्येक गाव मे इसकी शाखाएँ खोली। एक केन्द्रीय पचायत कोष भी स्थापित किया गया था जिसमे पचायत के सदस्यों से धनराशि एकत्रित की थी।[25] मन्ना लाल पटेल को बिजौलिया किसान पचायत का सरपच (अध्यक्ष) बनाया तथा उसके मातहत आन्दोलन सचालन हेतु 13 सदस्यीय समिति गठित की गई।[27] किसान आन्दोलन के भू-राजस्व लाग-बाग, बेगार इत्यादि मुद्दे तो यथावत चले आ रहे थे किन्तु 1916 मे उदयपुर राज्य के इशारे पर बिजौलिया जागीरदार द्वारा किसानो पर युद्ध कर थोपने के परिणाम स्वरूप नवगठित बिजौलिया किसान पचायत को आन्दोलन आरम्भ करने के लिए तत्पर होना पडा। सन् 1916 का वर्ष अकाल का वर्ष था। वर्षा के अभाव व फसलों मे रोग लग जाने के कारण बिजौलिया में अधिकाश फसलें नष्ट हो गई थी। अत अकाल के वर्ष मे राजस्व मुक्ति का मुद्दा और जुड गया था। एक अन्य मुद्दा सूदखोरों (महाजनों) से सम्बन्धित था। जागीरदार के समर्थन व सुरक्षा के अन्तर्गत सूदखोर किसानो का शोषण कर रहे थे।[28] वास्तव मे सूदखोर सामती अर्थ व्यवस्था के अभिन्न अग थे तथा शोषण की शृखला की महत्त्वपूर्ण कडी थे। अत सामन्तवाद से लडने के लिए सूदखोरो रो लडना अपरिहार्य था। यह इस तथ्य से सिद्ध होता है कि किसान आन्दोलन के दौरान सूदखोरो ने जागीरदार को समर्थन देते हुए उसके पक्ष को न्यायोचित सिद्ध करने का पूर्ण प्रयास किया था। दूसरे चरण के दौरान वर्ग विभाजन स्पष्ट परिलक्षित होता है जिसमें जनता के सभी वर्ग वर्ग चेतना से ओत प्रोत दिखाई देते हैं।

बिजौलिया किसान पचायत के निर्देशन व निर्णयानुसार किसान नेताओ ने सामन्त विरोधी अभियान दिसम्बर 1916 से आरम्भ कर दिया। अभियान के प्रारम्भ में गाव-गाव में किसानों की सभाएँ आयोजित की गई तथा किसानों से उनकी शिकायतों के सम्बन्ध में आवेदन पत्र एकत्रित किए। वर्ष 1917 के दौरान हजारों किसानों के हस्ताक्षरयुक्त

याचिकाएँ बिजौलिया ठिकाने व उदयपुर राज्य के पास भिजवाई गई। इन याचिकाओं के द्वारा लाग–बागों बेगार युद्धकर अन्यायिक भू–राजस्व समाप्त करने तथा जागीरदार व उसके कारिन्दो के हाथो किसानो के दमन व उत्पीडन को रोकने का आग्रह किया गया था। इन याचिकाओं पर सत्ताधारियों ने कोई ध्यान न देते हुए इनकी पूर्ण उपेक्षा की। उदयपुर राज्य की स्पष्ट मान्यता थी कि किसाना को किसी भी प्रकार की छूट सम्पूर्ण राज्य मे किसानो को समान छूटो की माग के लिए उत्साहित करेगी तथा किसान आन्दोलन सम्पूर्ण राज्य में फैल सकता है। राज्य एव जागीरदार की ओर से अनदेखी करने पर किसान पचायत ने अगस्त 1918 मे कर बन्दी के साथ असहयोग आन्दोलन आरम्भ करने की घोषणा कर दी थी। पचायत के निर्णयानुसार किसानो ने भू–राजस्व जमा न करने ठिकाने के आदेशो की अवज्ञा करना तथा ठिकाने की पुलिस एव न्यायालयो का बहिष्कार करना आरम्भ कर दिया। इतना ही नहीं वरन् किसानों ने अपने दूसरे शोषक महाजनों का भी बहिष्कार किया जिसके अनुसार किसानो ने कस्बे मे खरीददारी के लिए नहीं जाने का निर्णय लिया। इसके साथ ही किसानों ने शराब न पीने तथा विवाह व मृत्यु भोज न करने का भी निर्णय लिया।[29]

इस समय बिजौलिया के किसान रूस की अक्टूबर 1917 की क्रान्ति से भी प्रेरित थे। पथिक, माणिकलाल वर्मा साधू सीताराम दास भवर लाल सुनार प्रेमचन्द भील इत्यादि नेता रूस मे किसान एव मजदूर सत्ता की स्थापना का समाचार बिजौलिया के किसानों में प्रसारित कर रहे थे। इस अन्तर्राष्ट्रीय घटना ने बिजौलिया के किसान आन्दोलन को प्रभावित किया।[30] अत इस समय बिजौलिया के किसान आन्दोलन ने नया मोड लिया तथा तीखे तेवर दिखाए। उदयपुर का महाराणा इस आन्दोलन को कुचलने के पक्ष में था क्योंकि यह इस प्रकार के किसान आन्दोलन के सम्पूर्ण राज्य मे फैलने की सम्भावना से भयभीत था। अत महाराणा ने बिजौलिया के जागीरदार को इस आन्दोलन को कुचलने के निर्देश देते हुए ठिकाने की पूर्ण सहायता का आश्वासन दिया। इसके उपरान्त ठिकाने की किसान विरोधी दमनात्मक गतिविधिया आरम्भ हो गई। इसके अन्तर्गत माणिक लाल वर्मा व साधू सीताराम दास सहित सभी सक्रिय नेताओ तथा कार्यकर्त्ताओं को बन्दी बना लिया गया था। कुल मिलाकर 50 लोग गिरफ्तार हुए। विजय सिंह पथिक इसी बीच भूमिगत होकर आन्दोलन का सचालन करने लगा। किसानों ने सत्याग्रह आरम्भ करते हुए जेल भरना आरम्भ कर दिया । विरोध स्वरूप लगभग 500 किसानों ने बिजौलिया गढ के समक्ष प्रदर्शन किया जिन्हें बन्दी बना लिया गया। किसानों के जत्थे सत्याग्रह के लिए वहाँ पहुँचने लगे और हजारो किसान धरने पर बैठे। मजबूर होकर उदयपुर राज्य ने जनवरी 1919 में एक जाँच आयोग नियुक्त कर दिया। यह जाँच आयोग अप्रेल 1919 में बिजौलिया पहुँचा। आयोग की अनुशसा पर सभी बन्दी किसान एव नेताओं को जेल से रिहा कर दिया गया था जो किसान आन्दोलन की भारी सफलता थी।

जाँच आयोग ने किसानो की शिकायतो को सच पाया किन्तु ठिकाने के दबाव के

कारण कोई कार्यवाही इस दिशा मे नही हो सकी। असल मे उदयपुर राज्य व बिजौलिया ठिकाना किसान आन्दोलन को बगैर कोई माग माने तोड देना चाहते थे, जाच आयोग की मान्यता थी कि बन्दियो को रिहा करने से आन्दोलन शान्त हो जाएगा किन्तु इसके विपरीत किसान आन्दोलन अधिक तीव्र हो गया था। राज्य एव जागीर की ओर से आन्दोलन को कमजोर करने के उद्देश्य से इसे धाकड जाति का आन्दोलन सिद्ध करने के प्रयास किए जा रहे थे। इस आधार पर अन्य जाति के किसानो को इस आन्दोलन से अलग करने का प्रयास किया गया। किन्तु इस समय तक यह आन्दोलन जातीय सीमाओ को लाघकर वर्गीय एकता में परिवर्तित हो चुका था।

आन्दोलन का सामाजिक आधार काफी विस्तृत हो गया था। एक सरकारी दस्तावेज म उल्लेख मिलता है कि लगभग आधी जनसख्या इस आन्दोलन मे भागीदार थी। कुल 9000 आन्दोलन कर्ताओ म धाकड जाति क लोगो की सख्या 6000 थी।[11] इस विवरण स स्पष्ट है कि आन्दोलन मे धाकडो के अतिरिक्त अन्य जाति के किसान भी उल्लेखनीय सख्या में थे।

बिजौलिया का किसान आन्दोलन अपने दूसरे चरण म जातीय एव क्षेत्र की सकीर्णताओ को लाघकर राष्ट्रीय धारा के साथ जुडने की प्रक्रिया मे था। विजय सिंह पथिक ने सयुक्त प्रान्त के क्रान्तिकारी नेता व पत्रकार गणेश शकर विद्यार्थी के साथ अच्छे सम्बन्ध स्थापित कर लिए थे। पथिक अजमेर रहकर आन्दोलन का सचालन कर रहे थे। गणेश शकर विद्यार्थी के कानपुर स प्रकाशित होन वाले समाचार पत्र "प्रताप" ने बिजौलिया किसान आन्दोलन के पक्ष मे अनेक लेख व समाचार प्रकाशित किए जिससे बिजौलिया का किसान आन्दोलन राष्ट्रीय परिदृश्य म सम्मिलित हो गया था। बिजौलिया के किसानो न अपनी मागे न माने जान तक बिजौलिया में भूमि न जोतने का निर्णय जारी रखा। बिजौलिया किसान आन्दोलन क नेताओं ने अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का समर्थन प्राप्त करन के प्रयास किए किन्तु कोई विशेष सफलता नहीं मिली, क्योकि कांग्रेस देशी रियासतो म आन्दोलन के पक्ष म नही थी। राजस्थान सेवा सघ तथा राजपूताना मध्य भारत सभा जैसे क्षेत्रीय व स्थानीय सगठन अवश्य बिजौलिया आन्दोलन को खुलकर समर्थन दे रहे थे। दिसम्बर 1919 क कांग्रेस के अमृतसर सत्र में विजय सिंह पथिक लोकमान्य बाल गगाधर तिलक क माध्यम स बिजौलिया किसान आन्दोलन के समर्थन एव महाराणा की भर्त्सना का प्रस्ताव रखवाने म सफल रहे किन्तु महात्मा गाँधी एव मदन मोहन मालवीय के विरोध के कारण प्रस्ताव वापस लेना पडा। चाहे कांग्रेस न बिजौलिया किसान आन्दोलन को समर्थन न दिया फिर भी इस आन्दोलन ने राष्ट्रीय स्तर अवश्य प्राप्त कर लिया था। इसके माध्यम स बिजौलिया किसान आन्दोलन के नेता उदयपुर महाराणा के ऊपर दबाव बनाने म सफल रहे जिससे मजबूर होकर महाराणा ने दूसरा जाँच आयोग नियुक्त किया। इस आयोग की नियुक्ति फरवरी 1920 में हुई।[12] नए आयोग का किसानो ने स्वागत किया किन्तु आयोग क। निर्णय प्राप्त होने तक किसान पचायत ने आन्दोलन जारी रखने का निर्णय लिया।[13]

इस द्वितीय आयोग के समक्ष किसानो की माँगों को प्रस्तुत करने के लिए पन्द्रह सदस्यीय प्रतिनिधि मडल माणिक लाल वर्मा के नेतृत्व मे उदयपुर पहुँचा। इस प्रतिनिधि मण्डल ने किसानो की शिकायते व मागे प्रस्तुत करते हुए आन्दोलन के समर्थन मे आयोग के समक्ष साक्ष्यो सहित अपनी बात रखी। जॉच आयोग ने सम्पूर्ण जॉच पडताल के उपरान्त आन्दोलन की माँगों को न्यायोचित मानते हुए अनुशषा की कि किसानो की समस्याओ का शीघ्र समाधान किया जाए। महाराणा एव जागीरदार इस आयोग की अनुशषाओ से सहमत नही थे अत इस मुद्दे पर कोई कार्यवाही नही हो सकी। जून 1920 तक किसानो एव जागीरदार के मध्य समझौते के आसार समाप्त हो गए थे तथा किसानों को मजबूर होकर अपना आन्दोलन तेज करना पडा। किसानो ने असहयोग द्वारा जागीर प्रशासन को ठप्प अथवा अप्रभावी बना दिया था एव किसान पचायत की एक प्रकार से समानान्तर सरकार ही स्थापित हो गई थी। दिसम्बर 1920 मे अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर असहयोग आन्दोलन के आरम्भ करने से बिजौलिया के किसान आन्दोलन को भारी शक्ति मिली।[13]

सन् 1921 के आरम्भ मे बिजौलिया किसान आन्दोलन को मजबूती प्रदान करने के उद्देश्य से बिजौलिया किसान पचायत एव राजस्थान सेवा सघ उदयपुर राज्य के खालसा क्षेत्रों तथा पारसोली, भिंडर भैंसरोड़गढ बस्सी मडेसरा बैगू आदि ठिकानों मे भी किसान आन्दोलन आरम्भ करने में सफल रहे। इससे बिजौलिया आन्दोलन का प्रभाव विस्तार क्षेत्र काफी विस्तृत हो गया था। उदयपुर के रेजीडेन्ट ने दिसम्बर 1921 की एक रिपोर्ट मे स्थिति का विवरण इस प्रकार दिया है

"अब असतोष उदयपुर दरबार के प्रबन्ध के अन्तर्गत भिन्डर जागीर की और बढ रहा है जहा किसान राजस्व देने से खुला इन्कार कर रहे हैं। बिजौलिया तथा इसके पडौसी ठिकानो पारसोली, बैगू एव बस्सी में स्थिति और भी बिगड़ गई है। वहाँ राजस्व अदा करने से व्यापक असहमति है। यदि वहाँ राजस्व वसूल करने अथवा सरकारी आदेशों को लागू करने का कोई प्रयास किया गया तो हिसा की सम्भावना है। प्रत्येक गावों मे पचायतो का गठन किया गया है जिनके ऊपर एक उच्च समिति है। जो दीवानी फौजदारी एव राजस्व के मामले मे निर्णय लेती है। वे निर्धारित दिनों पर मिलते हैं तथा जागीरदार की सत्ता स्वीकार करने से इन्कार करते हैं। वे पूर्ण बहिष्कार एव जाति बाहर की पद्धति स्थापित कर चुके हैं एव उन पर जुर्माना थोप देते हैं जो उनके आदेशों का पालना नही करते। प्रत्येक ठिकाने में लाठियो से युक्त किसानों की साप्ताहिक सभाएँ होती हैं। प्रत्येक गाव मे पिछले तीन माह से बिल्ला एव पट्टाधारी स्वय सेवक नियुक्त हुए है। वे सभाओं के पर्चे बाटते हैं तथा किसी भी राज्य कर्मचारी को गाव मे घुसने से रोकते है। एक असतोष का माहौल उत्पन्न किया जा रहा है तथा आन्दोलन फैल रहा है।"[14]

सन् 1921 की राजपूताना एजेन्सी रिपोर्ट मे उल्लेख किया गया था कि "मेवाड अव्यवस्था का गर्म केन्द्र बनता जा रहा है। राजद्रोही भेदिए लोगों को समझा रहे हैं कि सभी आदमी समान हैं। भूमि किसानो की है राज्य एव जागीरदार की नहीं। यह

उल्लेखनीय है कि लोगो को सामान्य सम्बोधन की लीक से हटकर "कॉमरेड" के समान देशी भाषा की शब्दावली मे आपसी सम्बोधन के लिए उकसाया जा रहा है। कहा जाता है कि महाराणा को रूस के जार जैसी स्थिति कर देने की धमकी दी गई है। आन्दोलन मुख्य रूप से महाराणा विरोधी है किन्तु शीघ्र ही यह ब्रिटिश विरोधी होकर पडोसी ब्रिटिश क्षेत्रो मे फैल सकता है।"[33]

उपरोक्त उद्धरणो से स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकार इस आन्दोलन से भयभीत थी क्योकि यदि इस आन्दोलन को तुरन्त नियन्त्रित नही किया गया तो यह सम्पूर्ण राजस्थान मे फैल सकता है। इस समय तक बिजौलिया जैसा किसान आन्दोलन लगभग सम्पूर्ण उदयपुर राज्य मे फैल चुका था तथा इसी समय मोती लाल तेजावत के नेतृत्व मे मेवाड सिरोही मारवाड ईडर पालनपुर दाता आदि के आदिवासी भी विद्रोही हो गए थे। इन सब बातो को ध्यान म रखकर ब्रिटिश सरकार ने बिजौलिया आन्दोलन को समाप्त करने का निर्णय लिया।[34] इस उद्देश्य से भारत सरकार ने एक उच्च शक्ति प्रदत्त समिति गठित की जिसमे एजेन्ट टू गवर्नर–जनरल इन राजपूताना मि रार्बट हालैण्ड उसका सचिव कर्नल ओगालवी उदयपुर का ब्रिटिश रेजीडेन्ट विल किन्सान, उदयपुर का दीवान प्रभाष चन्द चटर्जी एव उदयपुर का सीमा शुल्क हाकिम बिहारी लाल कौशिक सम्मिलित थे।[35]

उपरोक्त समिति ने सभी प्रभावित ठिकानों का सघन दौरा किया तथा अपने स्तर पर बढते हुए किसान असतोष को समाप्त करने के अनेक उपाय सोचे। इस समिति की यह स्पष्ट मान्यता बनी कि मेवाड के सभी प्रभावित ठिकानो व खालसा क्षेत्र के किसान आन्दोलन व असतोष का मुख्य कारण बिजौलिया किसान आन्दोलन है। यदि इसे किसी भी प्रकार शान्त कर दिया जाए तो अन्य आन्दोलन स्वत ही समाप्त हो जाएँगे। अत यह समिति 4 फरवरी 1922 को बिजौलिया पहुची तथा 5 फरवरी को समझौता हेतु वार्ता आरम्भ हुई। किसानो की ओर से बिजौलिया किसान पचायत का सरपच मोती चन्द, मन्त्री, नारायण पटेल, राजस्थान सेवा सघ के सचिव रामनारायण चौधरी एव माणिक लाल वर्मा इस आयोग के साथ वार्ता करने के लिए अधिकृत किए गए थे तथा ठिकाने की ओर से कामदार हीरा लाल, फौजदार तेज सिह एव झालम सिह ठिकाने का पक्ष प्रस्तुत करने के लिए अधिकृत थे।[36] लम्बे विचार–विमर्श एव वार्ता के पश्चात् निम्नलिखित शर्तो पर समझौता करना निश्चित किया गया था[37] –

1 जेल म कैदियो के साथ मानवतापूर्ण आधारो पर सद्व्यवहार किया जाएगा तथा कैदी के जेल म रहने के दौरान उस पर होने वाले सभी खर्चे ठिकाना वहन करेगा। महिला बन्दिया का पुरुषो से पृथक रखा जाएगा तथा उनके साथ सभ्य व्यवहार किया जाएगा। बन्दियो को निम्नानुसार भोजन उपलब्ध कराया जाएगा –

गेहू का आटा	12	छटाक
दाल	1	छटाक
हरी सब्जिया	3	छटाक
मसाला	1/2	छटाक
घी	1	छटाक

2 सामाजिक विवादो तथा पशुओ के द्वारा फसल नष्ट करने गाली देने व्यक्तिगत अपमान करने जैसे फौजदारी मामलो मे किसान पचायतो का निर्णय ठिकाने को मान्य होगा।

3 उत्पादन की दरें निर्धारित करने हेतु एक समिति का गठन किया जाएगा जिस पर भू–राजस्व सग्रह के समय वर्ष में दो बार व्यापारी खरीददारी कर सकेंगे। इस समिति के आधे सदस्य किसान होगे।

4 किसान पचायत के माध्यम से ठिकाना किसानों की शिक्षा हेतु 30 रुपये प्रतिमाह देगा जिसे पचायत अपनी इच्छानुसार खर्च कर सकेगी किन्तु प्रत्येक दो माह पर ठिकाने मे हिसाब प्रस्तुत किया जाएगा किन्तु मेवाड़ राज्य द्वारा प्रतिबन्धित साहित्य को नहीं पढ़ाया जाएगा।

5 तब तक किसान की जोत जब्त नही की जाएगी जब तक उसका कोई वैध स्वामी हो अथवा बिना किसी खास कारण के तीन साल का राजस्व अदा न किया हो।

6 यदि किसी प्राकृतिक प्रकोप के कारण फसलें नष्ट हो जाती हैं तो भू–राजस्व पर 6 माह तक कोई ब्याज नही लिया जाएगा। तत्पश्चात् अगले 6 माह तक ब्याज की दर एक प्रतिशत होगी।

7 किसानो की फसल व सम्पत्ति की सुरक्षार्थ ठिकाना चौकीदारी का प्रबन्ध करेगा। इस हेतु ठिकाना 5 सिपाही व 5 सवार नियुक्त करेगा।

8 जब कभी ठिकाना किसी किसान से जमानत मागेगा तो उस स्थिति में केवल सूदखोर (महाजन) ही नहीं बल्कि भद्र किसान की जमानत स्वीकार की जाएगी।

9 आन्दोलन के दौरान किसानों के खिलाफ दायर मुकदमों को सामान्यतया वापस ले लिया जाएगा। जो भूमि जब्त कर ली गई थी अथवा किन्ही अन्य को आवटित कर दी गई थी वैध स्वामियो को वापस लौटाई जाएगी। इसी प्रकार किसानो द्वारा आन्दोलन के दौरान ठिकाने के कर्मचारियों के खिलाफ दायर मुकदमों को किसान वापस ले लेंगे।

10 पशु चराने हेतु प्रत्येक गाव में पर्याप्त चारागाह भूमि उपलब्ध करवाई जाएगी।

11 किसानो की जोत में उगे हुए वृक्षो पर उनका स्वामित्व होगा। वह बगैर कोई राजस्व अथवा लाग दिए इनका स्वतत्र रूप से उपयोग कर सकेगा।

12 सवत् 1975–77 (वर्ष 1918–1920) के दौरान विरोध स्वरूप किसानो द्वारा नही जोती गई भूमि पर बकाया राजस्व वसूल नही किया जाएगा।

13 पशुओ के बाडे के रूप मे काम ली जाने वाली भूमि पर कोई राजस्व नही लिया जाएगा।

14 बैजनाथ जी डाड़ा का सुरक्षित जगल समाप्त किया जाएगा तथा हरजीपुरा जगल का उपयोग किसान पशु चराने व लकड़ी प्राप्त करने के लिए कर सकेगे।

15 दोषियो को खोरा अथवा काठ की सजा नहीं दी जाएगी।

16 ठिकाना घोषित करेगा कि कौन से जगल व्यक्तिगत उपयोग हेतु घास व ईंधन की लकड़ी लाने के लिए खुले हैं। यदि कोई किसान अपनी निजी आवश्यकता से

अधिक घास–लकडी लेगा तो उसे दण्डित किया जाएगा।

17 किसानो के उत्पादन मे से सर्वप्रथम भू राजस्व की वसूली की जाएगी। अन्य कर्जो की डिगरी तभी कार्यान्वित की जाएगी जब यह सुनिश्चित कर लिया जाएगा कि भुगतान के बाद किसान के पास अगली फसल आने तक अपने परिवार के पालन हेतु पर्याप्त उत्पाद है। किसी भी डिगरी को लागू करने के लिए निम्नलिखित वस्तुऐ जब्त अथवा नीलाम नही की जा सकेगी –
   अ कृषि उपकरण पशु एव उसके गुजारे हेतु आवश्यक अनाज।
   ब घर अन्य इमारते एव वह वस्तु जो किसान के उपयोग हेतु आवश्यक है।
   स परिवार के कपड़े भोजन पकाने के बर्तन तथा महिलाओ के गहने।

18 ठिकाने की अनुमति के बिना किसान अपने खेता की बाड व कृषि उपयोग हेतु झाडिया काटने के लिए स्वतत्र होगे।

19 ठिकाना प्रतिमाह 20 रुपए औषधि वितरण हेतु देगा।

20 बिजौलिया के राव ने सहमति व्यक्त करते हुए यह मानना स्वीकार किया कि इस समझौते की शर्ते उसके ठिकाने के अन्तर्गत छोटी जागीरो के किसानो पर भी लागू होगी।

21 नूत–बराड नामक लाग जो जागीरदार के परिवार मे शादी के अवसर पर वसूल की जाती थी अब उस पर जोर नही दिया जाएगा किन्तु यह स्वैच्छिक होगी।

22 किसान इसे अपना सामाजिक दायित्व समझेगे कि जब कोई (राज्य अथवा ठिकाना कर्मचारी/अधिकारी) उनके गाव मे दौरे पर आयेगा तो किसान उसे सचार, परिवहन मजदूर एव भोजन सामग्री निर्धारित मूल्य पर उपलब्ध करवाऐगे। इस हेतु कीमत निर्धारण सम्बन्धित गाव के सरपच द्वारा किया जाएगा। यदि किसी विशेष कारणवश ये सेवाऐं नहीं दी जा सकेगी तो किसानो के साथ कोई कठोरता नहीं बरती जाएगी।

23 अनेक लागों से मुक्ति प्रदान की गई अथवा इनका भार कम कर दिया गया जिसकी एक विस्तृत सूची बनाई गई। यह तय किया गया कि भविष्य के लिए भू–राजस्व नए बन्दोबस्त के अनुसार लिया जाएगा। नया बन्दोबस्त सामान्य नियमों पर आधारित होगा जो ब्रिटिश भारत मे प्रचलित है। भू–राजस्व के साथ केवल वे ही लागें ली जाऐंगी जो ब्रिटिश भू–भागों मे भी ली जाती है।

तलवार बधाई एव छटूद लागे बन्दोबस्त से अप्रभावित रहेगी। नया बन्दोबस्त होने तक पुरानी पद्धति द्वारा निर्धारित दर का 3/4 भाग भू–राजस्व के रूप मे लिया जाएगा। पिछले वर्ष की भू राजस्व की राशि 3 वार्षिक किश्तो मे वसूल की जाएगी।

नए बन्दोबस्त को अन्तिम रूप दिए जाने के बाद किसानो से वसूल की गई भू–राजस्व की राशि अधिक होगी तो उसकी अन्तर राशि किसानो से ली जाएगी और यदि वसूल की गई राशि अधिक होगी तो किसानो को वापस लौटाई जाएगी।

24 छटूद लाग के अन्तर्गत 6300 रुपए वार्षिक के स्थान पर 2225 रुपये प्रतिवर्ष वसूल की जाएगी एव नए बन्दोबस्त के उपरान्त यह राशि भू–राजस्व मे सम्मिलित की

जाएगी।

25 तलवार बधाई लाग के अन्तर्गत जागीरदार की मृत्यु पर नए उत्तराधिकारी द्वारा 40 000 रुपए किसानों से तलवार बधाई के अवसर पर वसूल की जाती थी अब सभी किसान मिलकर 1000 रुपए प्रतिवर्ष भू राजस्व के साथ जमा कराएँगे।

26 नया बन्दोवस्त। अक्टूबर 1922 से आरम्भ हो जाएगा।

27 भू–राजस्व ब्रिटिश भारतीय मुद्रा मे लिया जाएगा तथा माडलगढ व बिजौलिया में प्रचलित बटटे (मुद्रा परिवर्तन का कमीशन) की दर वसूल की जाएगी।

उपरोक्त समझौता 11 जून 1922 को किसानो एव ठिकाने द्वारा स्वीकार कर लिया गया था।[४] यह समझौता बिजौलिया किसान आन्दोलन की बहुत बडी विजय थी। पहली बार किसान प्रतिनिधियो का राज्य व ठिकाने के बडे अधिकारियो के साथ सीधा समझौता हुआ था। इसके द्वारा किसानों की लम्बे समय से चली आ रही अधिकाश मागों को मान लिया गया था। इस समझौते में प्रथम बार ठिकाने की ओर से किसानो की शिक्षा व स्वास्थ्य का प्रावधान रखा गया था। सत्ता पक्ष ने किसान पचायत को किसानो की एक महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि सस्था के रूप मे मान्यता प्रदान कर दी थी। पचायत को अनेक शक्तिया व कर्त्तव्य सौंपे गए थे। बेगार समाप्ति लागों की कमी व समाप्ति प्राकृतिक उत्पादों पर किसानो के अधिकारों, ईंधन की लकडी व पशु चराई हेतु जगलात के उपयोग की छूट आदि का प्रावधान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण था क्यो कि इनसे आर्थिक प्रगति का द्वार खुलता है। सामान्य नियमो पर आधारित नए बन्दोबस्त का अर्थ था भूमि पर स्वेच्छाचारी सामन्ती नियत्रण मे ढील। इन सबके अतिरिक्त द्वितीय चरण की इस सफलता के पश्चात बिजौलिया किसान आन्दोलन न केवल मेवाड का वरन् सम्पूर्ण राजस्थान का अग्रणी व पथ प्रदर्शक किसान आन्दोलन बन गया था जिसने किसानो को सामती दासता के विरुद्ध सघर्ष हेतु प्रोत्साहित किया। 1897 मे आरम्भ हुआ बिजौलिया किसान आन्दोलन 25 वर्षो की अवधि के बाद सम्मानजनक तरीके से निर्णायक दोर में पहुचा। किसानो की इस भारी सफलता से प्रभावित होकर राजस्थान के अन्य राज्यो मे भी इसी प्रकार के किसान आन्दोलन आरम्भ हुए। कुछ लेखकों ने इस आन्दोलन की सफलता के श्रेय के सम्बन्ध मे एक बडी बचकानी बात लिखी है कि पथिक को इस सफलता का श्रेय देना उपयुक्त नहीं है। पहली बात तो यह है कि जन आन्दोलन की सफलता का श्रेय जनशक्ति को जाता है वही दूसरी बात जहाँ तक नेतृत्व का सवाल है वह हमेशा सयुक्त होता है। किन्तु बिजौलिया आन्दोलन को राष्ट्रीय स्तर पर प्रचारित कर लोकप्रिय बनाने में विजय सिह पथिक के प्रयासों की सराहना करना कोई अतिश्योक्ति नहीं है। विजय सिह पथिक ने कभी नेतृत्व को केन्द्रीयकृत करने का प्रयास भी नही किया तथा स्वय किसानो मे नेतृत्व की योग्यता विकसित करने का प्रयास किया था।

तीसरा चरण (1923–1941)

सन् 1922 का समझौता जितनी बडी सफलता थी उतना ही धोखा एव छलावा

बन कर रह गया था। पहली बात तो यह हुई कि इस समझौते को पूर्णत क्रियान्वित ही नही किया गया था। दूसरा दबाव मे मेवाड राज्य एव बिजौलिया ठिकाने ने समझौता तो कर लिया था, किन्तु इस समझौते के पश्चात् जागीरदार एव उसके अधिकारियो व कर्मचारियो का व्यवहार किसानो के प्रति अत्यधिक कठोर व उदासीन हो गया था। अग्रेजों की किसान विरोधी नीति और मुखर होकर सामने आई थी। वर्ष 1923 के दौरान सम्पूर्ण भारत मे कृषक आन्दोलन को अग्रेजो ने शक्ति द्वारा कुचल दिया था। अत बिजौलिया किसान आन्दोलन के प्रति सत्ता पक्ष का कठोर और उदासीन व्यवहार तदानुकूल ही था। वैसे भी सत्ता पक्ष को यह भरोसा था कि बिजौलिया समझौते के पश्चात् मेवाड के अन्य ठिकानो के किसान आन्दोलन स्वत ही समाप्त हो जाएँगे किन्तु ऐसा नही हुआ। विशेषत बैगू का किसान आन्दोलन इस समझौते के पश्चात् और अधिक तीव्र हो गया था।[1] यहाँ भी विजय सिह पथिक किसान आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे। पथिक की बढती हुई गतिविधियो से यह स्पष्ट हो गया था कि मेवाड मे किसान आन्दोलन समझौतो के स्थान पर दमन द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है। अत उदयपुर राज्य ने किसान आन्दोलन को कुचलने के कुचक तैयार करना आरम्भ कर दिया था उदयपुर राज्य की इस दिशा मे प्रयासो का एक उदाहरण निम्नलिखित सार्वजनिक सूचना है[2] —

"इश्तहार मजरिया राज श्री महकमहखास श्री दरबार उदयपुर मुल्क

मेवाड मरकूमा द्वितीय जेठ सुदी 7 ता. 21 जून, 1923 ई. संवत् 1979"

"गुजिश्ता चद सालो से प्रताप राजस्थान केसरी व नवीन राजस्थान नामी हिन्दी हफ्तेवार व रोजाना अखबारो मे खिलाफ वाकेआत व मुगालता आमेज मजामीन शाया किए जाते हैं। जिससे कमफहम लोगो को मुगालता होता है और कितने ही मजामीन इस किस्म के पुरजोश अलफाजो मे लिखे जाते हैं जिससे सरासर साया करने वालो का इरादा यह पाया जाता है कि अहालिया ने रियासत के निस्वत आम लोगो की तबियत में नफरत व हिकारत के ख्यालात पैदा हो और बद अमनी फैले या हुक्में जायज की तामील मे बेपरवाही और माल गुजारी मे रोक अमल मे आवे इसलिए यह मुनासिब ख्याल किया जाता है कि इन अखबारों की आमद कतईतौर पर इलाके मेवाड मे बन्द किया जावे। लिहाजा जरिए इश्तिहार हाजा हर खास व आम को आगाह किया जाता है कि आयन्दा अगर किसी शख्स का "प्रताप" "राजस्थान केसरी" और "नवीन राजस्थान" अखबारों को मगाना या किसी के पास इन अखबारो का मौजूद होना या इन अखबारो की कटिंग (कटा हुआ मजमून) या हैंडबिल पाया जावेगा तो वह सजा का मुस्तोजिब होगा जिसकी मयाद एक साल कैद सख्त या एक हजार रुपया जुरमाना तक होगा।"

जुलाई 1923 मे बैगू का किसान आन्दोलन और अधिक तीव्र हो गया था। इस जागीर के एक गाव गोविन्दपुरा में 13 जुलाई 1923 को उदयपुर राज्य के बन्दोबस्त आयुक्त मि.जी.सी ट्रेन्च ने राज्य की सेनाओ का नेतृत्व करते हुए सैनिक कार्यवाही किसानो के दमन हेतु की। सरकारी दस्तावेजो के अनुसार एक व्यक्ति मरा लगभग 25

घायल हुए तथा 485 बन्दी बनाए गए।[3] जबकि "तरुण राजस्थान" के अनुसार 11 व्यक्ति मरे लगभग 100 घायल हुए एव 540 बन्दी बनाए गए जिनमे महिला व बच्चे भी सम्मिलित थे।[4] इस घटना से विजय सिह पथिक काफी विचलित हो गया था। विजय सिह पथिक इस आन्दोलन का नेतृत्व भी अजमेर से ही कर रहा था क्योकि उदयपुर राज्य के भू भाग मे इनके प्रवेश पर पाबन्दी लगी हुई थी। इसके उपरान्त भी वह तुरन्त बैंगू पहुँचा तथा वहाँ पहुँचकर किसान पचायत के माध्यम से करबन्दी आन्दोलन आरम्भ कर दिया। किसान पचायत ने यह तय किया कि जो व्यक्ति ठिकाने को राजस्व देगा उसका सामाजिक बहिष्कार किया जाएगा। यह भी घोषित किया गया कि उनके साथ कोई वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नहीं किए जायेंगे। किसानों ने महाजनो का भी बहिष्कार किया जो ठिकाने के सहयोग में थे। इस हेतु किसान पचायत ने बेगू मे अपनी दुकान भी खोली।[5] विजय सिह पथिक की इन गतिविधियो ने सत्ताधारियो को अत्यधिक चिंतित कर दिया था एव उन्होने उसे बन्दी बनाने का निर्णय लिया। 10 सितम्बर 1923 को पथिक को गिरफ्तार कर लिया गया था। विशेष अदालत ने इस मुकदमे की सुनवाई करते हुए विजय सिह पथिक को साढे तीन वर्ष की सजा एव 15000 रुपये के जुर्माने से दण्डित किया।[6] पथिक की गिरफ्तारी के बाद बेगू के आन्दोलन की गति समाप्त हो गई थी। ठिकाने ने किसानो पर तीन वर्ष से बकाया राजस्व बलपूर्वक वसूल करना आरम्भ कर दिया था।

विजय सिह पथिक की गिरफ्तारी से बिजौलिया किसान आन्दोलन को भारी धक्का लगा। इसके पश्चात् ठिकाने ने समझौते की कार्यान्विति पर कोई ध्यान नही दिया। ठिकाने के बदलते दृष्टिकोण ने किसानो में पुन असतोष उत्पन्न कर दिया था। बिजौलिया किसान आन्दोलन के समक्ष भारी गतिरोध उत्पन्न हो गया था। न केवल बिजौलिया वरन् सम्पूर्ण उदयपुर राज्य मे किसानो की कठिनाइया बढती जा रही थी। तरुण–राजस्थान समाचार पत्र के 30 नवम्बर 1924 के अक मे इस सन्दर्भ मे "मेवाड के दु खी किसान" शीर्षक से लिखा था कि "भैसरोडगढ़ मेवाड़ की एक बड़ी जागीर है। परन्तु वहाँ के राव जी को दिवानी फौजदारी अधिकार नही है। तथापि वे सब मामले स्वय ही निपटा देते हैं। कुआखेडे की नई जिला अदालत बैठी–बैठी देखा करती है। राव जी की सजाए अधिकाश जुर्माने की होती है। इससे एक पन्थ दो काज वाली कहावत के अनुसार अपराधी भी जो प्राय निर्धन होते है, सीधे हो जाते हैं और रावजी का खाली खजाना भी भरा रहता है। हाल मे कुण्डाल परगने के एक मेतवाल महाजन से 200 रुपये और वहा के एक पटेल की स्त्री से 400/– रुपये इस सदेह मे ले लिया गया कि दोनो में अनुचित सम्बन्ध हैं। सभा करने के अपराध मे मण्डेसरा के धूलाराम तैली और लखमा भील से तीन–तीन सौ रुपये ऐंठ लिए गए। रोडी के नानू लाल पटेल के कुएँ पर पुराना महुवे का पेड़ था। वह आधी से गिर गया। रावजी ने अपने दौरे के समय पेड काटने का इलजाम लगाकर नानूराम से 100/– रुपये नगद जुर्माना ले लिया। अभी इलाके भर की भैंसों की गिनती हुई थी। लोगो का भय है कि चराई का टेक्स लगाया जाएगा। मातासरा के थानेदार और सिपाही खेडा आदि आस–पास के गावों से घास कटवाते है किन्तु

मजदूरी एक पाई भी नही देते। लगान के अलावा रावजी प्रत्येक खेत से एक भारा पकी ज्वार 100 भुट्टे मक्की एक टोकरी पोस्त और प्रत्येक मेड पर एक गठठा घास मुफ्त लेते हैं। राज्य लोगो की शिकायतो पर ध्यान नही देता इसलिए पीडित लोग मेवाड छोडकर समीपवर्ती अन्य राज्यो मे चले जा रहे है।

वैगू मे नए मुन्सरिम मुन्शी इलाही बक्श अपने गुरु लाला अमृत लाल की नीति को बराबर किन्तु तरकीब से काम म ला रहे हैं। किसानो की शिकायते तो धरी रहती हैं किन्तु महाजनो के पीढियो के लेन-देन के दावे किसानो के विरुद्ध धडाधड लिए जा रहे है।

सैटलमेन्ट वालो ने खालसे मे 8/- रुपया बीघा लगान की दरे नियत करना शुरू किया है और फसल बिगड जाने पर लगान की उचित कमी की शर्त भी नही रखी गई है। इस बात से बिजौलिया के किसान बड़े सशकित हो उठे हैं क्योकि इस हिसाब से उनके यहा 15/- 16/- की बीघा दर लगेगी इससे इनके कष्ट समझौते से पहली अवस्था से भी बढ जाऐगे और साथ ही असन्तोष भी।"

सन् 1923-26 के दौरान बिजौलिया म सूखा व अकाल ने किसानो की कठिनाईयो मे और अधिक बढोतरी की थी। अकाल के उपरान्त भी किसानो से भू-राजस्व एव अन्य कर कडाई पूर्वक वसूल किए जा रहे थे। इन स्थितियो ने किसानों की स्थिति को और भी अधिक दयनीय बना दिया था। आर्थिक बदहाली के कारण किसानों की ऋणग्रस्तता बढती जा रही थी। किसान पचायत ने किसानो की राहत हेतु अनेक आवेदन पत्र भेजे किन्तु सत्ताधारियो ने इन्हे नजर अन्दाज कर दिया था। वास्तव मे सत्ताधारी आन्दोलन पर कडा नियत्रण रखने मे सफल रहे। इस समय विजय सिह पथिक जेल मे था तथा दूसरा नेता माणिक्य लाल वर्मा ताजा आन्दोलन छेडने की स्थिति मे नही था। इस प्रकार एक असमजस की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। सन् 1922 के समझौते के अनुसार जनवरी 1927 मे बिजौलिया का नया बन्दोबस्त कार्य मेवाड के बन्दोबस्त आयुक्त जी सी ट्रेन्च ने पूर्ण कर लिया था तथा फरवरी 1927 मे इस बन्दोबस्त को लागू करने का कार्य आरम्भ हो गया था इसके अनुसार असिंचित भूमि के राजस्व की दरो मे भारी वृद्धि की गई थी। अत बिजौलिया के किसान फरवरी 1927 के पश्चात् पुन आन्दोलन आरम्भ करने के लिए मजबूर हो गए थे।

बिजौलिया किसान आन्दोलन का तीसरा चरण अत्यधिक जटिल था। 28 अप्रेल 1927 को विजय सिह पथिक के उदयपुर राज्य के भू-भागो में पुन न घुसने के आदेश के साथ जेल से मुक्त कर दिया गया था।" इससे बिजौलिया के किसानो मे नई शक्ति एव उत्साह का सचार हुआ। विजय सिह पथिक ने बिजौलिया के किसानो तथा अन्य नेताओ माणिक लाल वर्मा, रामनारायण चौधरी आदि के साथ विचार-विमर्श कर नए आन्दोलन की रूप रेखा तैयार की। इस प्रस्तावित आन्दोलन को व्यापक असहयोग आन्दोलन का रूप देने का निर्णय किया गया जिसके अनुसार किसानों द्वारा असिंचित भूमि से त्याग पत्र देना पहला कदम था। इस निर्णय के अनुसार पथिक बिजौलिया किसान पचायत के नेता

व कार्यकर्त्ताओं से 18 मई 1927 को ग्वालियर राज्य के भू-भाग में स्थित सिगोली नामक ग्राम मे मिले। यहाँ पथिक का गर्मजोशी के साथ स्वागत हुआ। विजय सिह पथिक ने किसान पचायत को वढे हुए भू-राजस्व के विरुद्ध विरोध स्वरूप असिचित जोतों को छोड़ने एव उनकी स्वतत्रता पर कर्मचारियों के द्वारा प्रहार के विरोध स्वरूप राज्य के स्कूलो का बहिष्कार करते हुए अपने स्कूल आरम्भ करने की सलाह दी। पचायत के सदस्यों ने सत्य एव अहिसा का पालन करने खादी पहनने मदिरा पान न करने एव प्रत्येक स्थिति में पचायत को बनाए रखने की शपथ ली। इस अवसर पर एक समारोह आयोजित किया जिसमे पथिक के प्रति समर्पण भाव रखने वाले पुरुषो ने चार साल से बाल नहीं कटवाए थे, बाल कटवाए गए।[8]

जून 1927 में किसानों ने अपनी असिचित जोतो से सशर्त त्याग पत्र देना आरम्भ कर दिया था।[9] किसान भूमि से त्याग पत्र को विरोध का एक प्रभावी तरीका मानते थे जिसका वे पूर्व में अनुभव कर चुके थे। अत किसानों का पक्का विश्वास था कि यह कदम जागीरदार को उनकी माँगे मानने के लिए मजबूर कर देगा किन्तु ठिकाने ने इस निर्णय को आपत्तिजनक माना। अत ठिकाने ने बगैर कोई छूट दिए अथवा माँग माने इस आन्दोलन को कुचलने का निर्णय लिया। किसानों का खुला आरोप था कि ठिकाने ने 1922 के समझौते को भग कर दिया है। किसानों के अनुसार असिचित भूमि पर निर्धारित भू-राजस्व की दरें अत्यधिक ऊची थी। उनकी आगे शिकायत थी कि ठिकाने के सत्ताधारी उनकी शिक्षा पचायत व खादी के मामले में हस्तक्षेप कर रहे थे।[10] अत बिजौलिया किसान पचायत ने विरोध स्वरूप असिचित भूमि से किसानों के सामूहिक त्याग पत्र प्रस्तुत कर दिए थे। ठिकाने ने इन त्याग पत्रों को स्वीकार नहीं किया। अधिकारियों की मान्यता थी कि सामूहिक त्याग पत्र की स्वीकृति किसान आन्दोलन को तीव्र एव शक्तिशाली बना सकती है। अत किसानों की एकता भग करने तथा किसानो को कानूनी जाल मे फसाने के उद्देश्य से किसानों के सामूहिक त्याग पत्र स्वीकार नहीं किए गए। इसके स्थान पर ठिकाने ने किसानों को व्यक्तिश त्याग पत्र प्रस्तुत करने की सलाह दी। किसानों ने अति उत्साह मे व्यक्तिगत त्याग पत्र प्रस्तुत कर दिए, जिन्हे ठिकाने ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। ठिकाना इस भूमि को अन्य किसानों को आवटित करना चाहता था किन्तु धाकड किसानो ने इस प्रक्रिया को इस धमकी द्वारा रुकवा दिया कि वे समर्पित (छोडी गई) भूमि पर कब्जा कर लेंगे एव जो इन्हें लेगे उन्हें अपने धन से हाथ धोना पड़ेगा।[11] अन्य जाति के किसानो ने धाकड़ किसानों के साथ पूरा सहयोग करते हुए इस भूमि को अपनी जोत मे लेने से स्पष्ट इन्कार कर दिया था। ठिकाना अधिकारियों ने जातीय आधारो पर बिजौलिया के किसानों की एकता को भग करने का भरपूर प्रयास किया था, किन्तु इसमे उसे सफलता नहीं मिली।

ठिकानें के अनेक प्रयासों के उपरान्त भी कोई अन्य किसान इन जमीनों को लेने के लिए तैयार नही हुआ। असल मे इस समय तक किसानों ने निश्चित चेतना का स्तर प्राप्त कर लिया था किन्तु ठिकाना किसी भी स्थिति में इन जमीनों को पुन अन्य लोगों को

आवटित करने पर आमादा था। इन्होंने महाजनों को इन जमीनों को लेने के लिए तैयार कर लिया था। अत किसानों द्वारा त्याग पत्र दी गई भूमि ठिकाने द्वारा महाजनों को आवटित कर दी गई तथा ठिकाने द्वारा महाजनों को इस पर बापीदारी अधिकार (स्थाई भू–स्वामी) प्रदान कर दिए गए।[72] सन् 1930 के अन्त तक ठिकाना 6000 बीघा भूमि पुन आवटित करने में सफल रहा।[73] ठिकाने की इस कार्यवाही ने किसानों को हताश व निराश कर दिया तथा वे बैचेनी का अनुभव करने लगे थे। किसानों ने नए भू–स्वामियो को शक्ति द्वारा जोतों से निकालने का प्रयास किया, किन्तु कोई सफलता नहीं मिली क्योंकि इन नए भू–स्वामियों की रक्षार्थ प्रत्येक गाव में सशस्त्र बल लगा दिए गए थे।[74]

किसान पचायत उत्पन्न हुई नई स्थिति से दिग्भ्रमित हो गई थी। वह इससे निपटने का कोई कारगर तरीका निकालने में असफल रही। इसी समय बिजौलिया किसान आन्दोलन के बड़े नेताओं विजय सिह पथिक एव माणिक लाल वर्मा के मध्य मतभेद उत्पन्न हो गए थे। इस मतभेद का कारण कुछ लोग दोनों के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित मानते हैं, मेरे विचार से इसका कारण वैचारिक था। जहा माणिक लाल वर्मा एव रामनारायण चौधरी अहिसात्मक व उदार आन्दोलन के पक्ष में थे, वहीं विजय सिह पथिक खुले सशस्त्र सघर्ष व क्राति के पक्षधर थे। राजस्थान के तथाकथित कुछ नवीन इतिहासकारों ने गलत तर्कों के आधार पर विजय सिह पथिक को किसानों के साथ विश्वासघाती बताने का प्रयास किया है, जो सर्वथा अनुचित है। वैसे भी विजय सिह पथिक बिजौलिया आन्दोलन के प्रेरक एव निर्देशक थे। उन्होंने हमेशा किसान प्रतिनिधियों, माणिकलाल वर्मा एव रामनारायण चौधरी को आगे रखा था।

सन् 1930 में बिजौलिया किसान आन्दोलन का नेतृत्व जमना लाल बजाज एव हरिभाऊ उपाध्याय के हाथों में आ गया था, जो नरम पन्थी, उदारवादी नेता थे तथा किसानों की जीवन दशा से पूरी तरह परिचित भी नहीं थे। सन् 1930 के पश्चात् बिजौलिया का किसान आन्दोलन धीरे–धीरे अवनति की ओर जाने लगा था तथा अपने द्वारा त्यागी गई भूमि की पुन प्राप्ति के मुद्दे पर केन्द्रित हो गया था। इसका मुख्य कारण देशी राज्यों के जन आन्दोलनों के प्रति काग्रेस की उदासीनता थी क्योंकि काग्रेस देशी राज्यों में किसी भी प्रकार के आन्दोलन के पक्ष में नहीं थी। गाँधी जी की स्वय की मान्यता थी कि काग्रेस का कार्यक्षेत्र केवल ब्रिटिश भारत है तथा देशी रियासतों में आन्दोलन आरम्भ कर काग्रेस अपने मूल लक्ष्य से भटक जाएगी। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि बिजौलिया किसान आन्दोलन का नेतृत्व गाँधी जी एव भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की औपचारिक तथा अधिकृत नीति का समर्थक था। स्वाभाविक तौर पर बदले नेतृत्व के अन्तर्गत इस आन्दोलन की मूल भावना ही समाप्त हो गई थी। किसान सन् 1939 में अपनी खोई हुई भूमि पुन प्राप्त करने में सफल रहे जब वे सभी राजनीतिक गतिविधियों से पृथक हो चुके थे तथा भविष्य में कोई आन्दोलन न करने का ठिकाने को आश्वासन दे दिया था।[75]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि बिजौलिया का किसान आन्दोलन जिस उत्साह के साथ उदित हुआ था, उसका अस्त बड़ी ही निराशाजनक स्थिति में हुआ। यह

आन्दोलन जो लगभग आधी सदी तक चला उसका अन्त सुखद नहीं कहा जा सकता। यह आन्दोलन स्थानीय स्तर तक ही सीमित रहा। इसके नेताओं ने इस आन्दोलन को राष्ट्र की मुख्य धारा के साथ जोडने का भरपूर प्रयास किया था किन्तु काग्रेस नेतृत्व की उदासीनता के कारण यह सम्भव नहीं हो सका। इस प्रकार एक अलग–थलग आन्दोलन का सत्ताधारियों द्वारा कुचले जाना आसान था। जब सन् 1938 में काग्रेस ने देशी रियासतो में प्रजा मण्डलों के माध्यम से रियासतों में जिम्मेदार सरकार की स्थापना की सलाह दी थी तो देशी रियासतों मे स्वतत्रता सघर्ष नियन्त्रित व सीमित ही रहा। राष्ट्रीय नेतृत्व ने कभी किसान आन्दोलन का समर्थन नही किया। बिजौलिया आन्दोलन को आरम्भ मे सामन्ती तत्त्वो ने गम्भीरता से नहीं लिया, किन्तु इसके अन्तिम चरण के दौरान सामन्ती तत्त्वों ने सगठित होकर किसान आन्दोलन को कुचलने का भरपूर प्रयास किया। सामन्ती तत्त्व खुलकर किसानों के साथ सघर्ष में उतरे इस प्रकार सामन्त महलों से सड़कों पर उतरे जिससे इनके विनाश का मार्ग प्रशस्त हुआ।

यह आन्दोलन सीधे तौर पर अपनी मन्जिल तक पहुँचने में असमर्थ रहा किन्तु इस आन्दोलन के प्रभाव को कम करके नहीं आका जा सकता है। कुछ सीमा तक बिजौलिया के किसानों को सामन्ती भार से मुक्ति अवश्य मिली थी। यह आन्दोलन सम्पूर्ण राजस्थान के किसानों में सामन्त एव उपनिवेशवाद विरोधी चेतना के सचार में सफल रहा था। यह सामतवाद पर एक शक्तिशाली प्रहार सिद्ध हुआ था। सदियों से अज्ञान व शोषण के अधकार में जी रहे किसान को आधुनिक युग के प्रकाश में पहुँचने का मार्ग इस आन्दोलन ने प्रशस्त किया। अत यह आन्दोलन राजस्थान के अन्य भागों के किसान आन्दोलनों के प्रेरणा एव उत्साह का स्त्रोत बन गया था। इसने जन सघर्ष सामाजिक विकास व स्वतत्रता सग्राम की अच्छी भूमि तैयार की थी।

उपरोक्त बिन्दुओं के अवलोकन से बिजौलिया के किसान आन्दोलन का महत्त्व स्वय सिद्ध है।

संदर्भ

1 रामनारायण चौधरी आधुनिक राजस्थान का उत्थान अजमेर 1974 पृ 47

2 शकर सहाय सक्सैना तथा पद्मजा शर्मा बिजौलिया किसान आन्दोलन का इतिहास बीकानेर 1972 पृ 06

3 विजय सिह पथिक का विशेष न्यायिक आयोग के समक्ष बयान पृ 17

4 राजस्थान राज्य अभिलेखागार उदयपुर कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड ब न 13 फाइल न 124

5 सुमित सरकार माडर्न इण्डिया 1885–1947 नई दिल्ली 1984 पृ 155

6 राजस्थान राज्य अभिलेखागार उदयपुर कान्फिडेंशियल रिकार्ड ब नं 4 फाइल न 31/ए 1921–22 एव ब न 13 फाइल न 130

7 शकर सहाय सक्सैना जो देश के लिए जिया (यशोगाथा लोकनायक श्री माणिक लाल वर्मा) बीकानेर 1974 पृ 19

8 रामनारायण चौधरी बीसवीं सदी का राजस्थान अजमेर 1960 पृ 62
9 बृज किशोर शर्मा आधुनिक राजस्थान का आर्थिक इतिहास जयपुर 1993 पृ 208 220
10 शकर सहाय सक्सैना पूर्वोक्त पृ 18
11 बृज किशोर शर्मा पीजेन्ट मूवमेन्टस इन राजस्थान जयपुर 1990 पृ 72
12 शकर सहाय सक्सैना तथा पद्मजा शर्मा पूर्वोक्त पृ 28
13 वही पृ 41
14 वही पृ 43
15 बृज किशोर शर्मा पीजेन्ट मूवमेन्टस इन राजस्थान जयपुर पृ 75
16 *शकर सहाय सक्सैना तथा पद्मजा शर्मा द्वारा उद्धत राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर मे उपलब्ध दस्तावेज व इनकी पुस्तक का पृष्ट 47 देखे*
17 वही पृ 47
18 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर उदयपुर कान्फिडेंशियल रिकार्डस फाइल न 124 बस्ता न 13
19 सुमित सरकार पूर्वोक्त पृ 155
20 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर उदयपुर कान्फिडेंशियल रिकार्ड फाइल न 38/ए बस्ता नं 4
21 बृज किशोर शर्मा पीजेन्ट मूवमेन्टस इन राजस्थान पृ 80
22 सुमित सरकार पूर्वोक्त पृ 148
[illegible] राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर उदयपुर कान्फिडेंशियल रिकार्डस फाइल न 38/ए ब न 4
24 रामनारायण चौधरी पूर्वोक्त पृ 47
25 शकर सहाय सक्सैना पूर्वोक्त पृ 24-25
26 रामनारायण चौधरी पूर्वोक्त पृ 48
27 शकर सहाय सक्सैना एव पद्मजा शर्मा पूर्वोक्त पृ 81
[illegible] रामनारायण चौधरी पूर्वोक्त पृ 49
29 बृज किशोर शर्मा पीजेन्ट मूवमेन्टस इन राजस्थान पृ 81-82 एव आधुनिक राजस्थान का आर्थिक इतिहास पृ 235
30 सुमित सरकार पूर्वोक्त पृ 200-201
31 प्रताप 10 मई 1920 कानपुर
32 वही
[illegible] बृज किशोर शर्मा आधुनिक राजस्थान का आर्थिक इतिहास पृ 240
34 राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न 428 पी (सीक्रेट) 1923
35 *वही इसी समय भरत राम प्रशान्त द्वारा लिखित व्यक्ति इस बात की परिचायक है कि बिजौलिया व किसान आन्दोलन पर रूस की क्रान्ति का प्रभाव था। वह व्यक्ति इस प्रकार थी*

मान- मान मेवाड़ा राणा प्रजा पुकारे रे
रूस आर वो घतो न लाग्यो सुण राणा फतमाल रे।।

36 बृज किशोर शर्मा पीजेन्ट मूवमेन्टस इन राजस्थान पृ 91
37 राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न 428 पी (सीक्रेट) 1923
38 नवीन राजस्थान 2 जुलाई 1922 राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली होम- पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न 18 1922
39 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर उदयपुर कान्फिडेशियल रिकार्ड फाइल न 31/ए बस्ता न 4 1921-22 एव शकर सहाय सक्सैना एव पद्मजा शर्मा पूर्वोक्त पृ 145-155
40 वही
41 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर उदयपुर कान्फिडेशियल रिकार्ड फाइल न 123 बस्ता न 13 1923
42 राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल नं 421 पी 1927
43 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर एव उदयपुर कान्फिडशियल रिकार्ड फाइल न 123 बस्ता न 13 1923
44 तरूण राजस्थान 5 अगस्त 1923
45 शकर सहाय सक्सैना व पद्मजा शर्मा पूर्वोक्त पृ 167
46 राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न 74 पी 1924-25
47 राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न 421 पी 1927
48 वही
49 वही
50 शकर सहाय सक्सैना एव पद्मजा शर्मा पूर्वोक्त पृ 231
51 राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न 421 पी 1927
52 राजस्थान राज्य अभिलेखागार शाखा उदयपुर महकमाखास फाइल न 22 1937-38
53 वही एव राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर उदयपुर कान्फिडेशियल रिकार्ड फाइल न 381/ए बस्ता न 4
54 राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली फॉरेन एण्ड पॉलिटिकिल डिपार्टमेन्ट फाइल न 421 पी 1927
55 राजस्थान राज्य अभिलेखागार उदयपुर शाखा महकमाखास फाइल न 22 1937-38

अध्याय–3

गोविन्द गिरि के नेतृत्व में भील आन्दोलन

19 वीं सदी मे मेवाड भील विद्रोहो का केन्द्र रहा। यद्यपि डूगरपुर व बासवाड़ा के भील भी अशान्त थे जिसके कारण छुट–पुट भील विद्रोह भी हुए किन्तु इन्हें किसी प्रकार के राजनीतिक व प्रशासनिक भार में कमी किए बिना ही कुचल दिया गया। मेवाड मे 19 वी सदी के भील विद्रोह स्वस्फूर्त थे किन्तु सन् 1881 के विद्रोह ने एक निश्चित सगठित स्वरूप प्राप्त कर लिया था। मेवाड राज्य व अग्रेजो ने इस विद्रोह को कुचलने के भरसक प्रयत्न किए, किन्तु सफलता नहीं मिली एव विवश होकर उन्हें भीलों की शर्तों पर उनके साथ समझौता करना पडा। इस समझौते के माध्यम से भीलों को अनेक छूटे व सुविधाएँ प्राप्त हो गई। अग्रेजों व मेवाड़ राज्य के प्रयासों से इस विद्रोह के पश्चात् मेवाड़ मे लम्बे समय तक भीलों मे शान्ति बनी रही। लगभग 40 वर्ष बाद सन् 1920 में मोती लाल तेजावत के नेतृत्व में मेवाड में शक्तिशाली भील आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। यद्यपि मेवाड की भील समस्या को 19 वीं सदी के अन्त तक पर्याप्त सीमा तक सुलझा लिया गया था, किन्तु डूगरपुर व बासवाड़ा के भीलों पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। अत 20 वीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में डूगरपुर व बासवाड़ा राज्यों में गोविन्द गिरि के नेतृत्व में शक्तिशाली भील आन्दोलन आरम्भ हुआ। गोविन्द गिरि ने भीलों के उत्थान हेतु समाज एव धर्म सुधार आन्दोलन आरम्भ किया था जो आगे चलकर राजनीतिक–आर्थिक विद्रोह में परिवर्तित हो गया था।

गोविन्द गिरि के नेतृत्व में समाज एवं धर्म सुधार आन्दोलन :

गोविन्द गिरि ने भीलों में समाज एव धर्म सुधार आन्दोलन आरम्भ किया था। वह सामाजिक व धार्मिक उपदेशों के माध्यम से भीलों का नैतिक व भौतिक उत्थान करना चाहता था। गोविन्द गिरि की शिक्षाओं ने भीलों को जागृत किया तथा समाज व धर्म सुधार आन्दोलन ने राजनीतिक–आर्थिक विद्रोह का रूप धारण कर लिया था। वास्तव में गोविन्द गिरि के प्रारम्भिक आन्दोलन के प्रति शासक वर्गों का व्यवहार इसके राजनीतिक–आर्थिक विद्रोहों के रूप में परिवर्तित होने के लिए जिम्मेदार था।

गोविन्द गिरि डूगरपुर में बेडसा नामक गाव का निवासी एव जाति से बजारा था। वह स्वय छोटा किसान था। उसकी निर्धन आर्थिक दशा एव उसके पुत्रों व पत्नि

की मृत्यु ने उसे आध्यात्म की ओर प्रेरित किया तथा सन्यासी बन गया था। वह कोटा बूँदी अखाडे के साधु राजगिरि का शिष्य बन गया था। उसने बेडसा गाव में अपनी धूनी स्थापित कर एव निशान (ध्वज) लगाकर आस–पास के क्षेत्र के भीलों को आध्यात्मिक शिक्षा देना आरम्भ किया। गोविन्द गिरि के स्वय के शब्दों में उसकी मुख्य शिक्षाएँ इस प्रकार थीं "उस समय मैं निर्धन विनम्र एव जगली भीलों के मध्य रहता था जिन्हें सृष्टिकर्ता का कोई ज्ञान नहीं था। जो मेरी झोंपड़ी पर आते थे उन्हें मैं सवर्णों की तरह आचरण करने की सलाह देता था। मैंने उन्हें सत्य और धर्म का रास्ता दिखाया एव उन्हें भगवान की पूजा करने चोरी न करने व्यभिचार न करने, धोखा आदि न करने, दूसरों के साथ शत्रुता न रखने बल्कि समान पिता (सृष्टिकर्ता) की सन्तान मानकर सबका आदर करने तथा अन्यों के साथ शान्तिपूर्वक रहने, अपने जीवनयापन हेतु कृषि करने वीर, वन्तरा, भोपा इत्यादि (भूत डाकन, मायावी तथा अन्य अन्धविश्वासी सत्ता) में विश्वास न करने बल्कि इनसे परित्राण हेतु धूनी व ध्वज स्थापित करने एव इनकी पूजा करने का उपदेश देता था।" इसके अतिरिक्त गोविन्द गिरि ने भीलों को मास भक्षण न करने तथा मदिरा न पीने की भी शिक्षा दी। गिरि ने उन्हें भोजन के पूर्व स्नान कर ईश्वर की उपासना करने, हत्या न करने, कोई व्यभिचार न करने, धन लोलुप न बनने, माता–पिता की आज्ञा मानने झूठी गवाही न देने, एक ईश्वर में आस्था रखने तथा हजारों देवताओं की पूजा न करने की भी सलाह दी।[7]

गोविन्द गिरि ने सच्ची लगन के साथ भीलों के धार्मिक विश्वासों एव सामाजिक मान्यताओं को सुधारने का कार्य आरम्भ किया था। अत शीघ्र ही इनका आध्यात्मिक पथ बागड़ के भीलों में काफी लोकप्रिय हो गया था। इस सुधार आन्दोलन के प्रभाव में भील सदियों पुराने सामाजिक–धार्मिक बन्धन व रूढियों से स्वतत्र होने लगे अत भीलों का स्वाभिमान व आत्मसम्मान हीन भावना से मुक्त होकर जागृत होने लगा। भीलों को शिक्षा दी जा रही थी कि वे अपने आपको उच्च हिन्दू जातियों के समान समझें एव कुछ मामलों में अपने से उन्हें हीन मानें जैसे कि उनका आरोप था कि सवर्णों में विधवा विवाह का प्रचलन नहीं होना उनकी हीनता को इगित करता है। गोविन्द गिरि के पथ की भावना उनके स्वय के वक्तव्य से स्पष्ट होती है कि " राजपूत इतने अधिक क्रूर हैं कि वे अपनी लड़कियों की हत्या इसलिए कर देते हैं जिससे उन्हें दूसरों को शादी द्वारा नहीं देना पडे। राजपूत उनकी युवा विधवाओं को पुर्नविवाह की अनुमति नहीं देते, और यदि ये लड़किया युवा अवस्था में विधवा हो जाती हैं तो उनके वैधव्य का पाप इनको लगता है क्योंकि उस स्थिति में वे अप्रसन्न रहती हैं तथा कष्ट का जीवन बिताती है। कोई सच्चा ब्राह्मण दिखाई नहीं देता। केवल जनेऊ ही ब्राह्मण होने का चिन्ह है एव जो इसे पहनता है वही ब्राह्मण है। वे भी राजपूतों की तरह ही पापी है एव उनकी विधवाएँ अवैध गर्भपात की दोषी हैं।"

इन विचारो ने भीलो को जागृत किया एव उन्हे अपनी दशाओ व अधिकारो के प्रति जागरूक बनाया। इन विचारो ने उन्हे यह सोचने के लिए भी बाध्य कर दिया था कि उन्हे उनके वर्तमान राजाओ व ठाकुरो ने दलित बनाया है, जबकि वे स्वय इस भूमि के स्वामी थे एव इन्हे इस पर पुन शासन करना चाहिए। इस प्रकार यह समाज एव धर्म सुधार आन्दोलन आर्थिक एव राजनीतिक आन्दोलन मे बदलता जा रहा था।

गोविन्द गिरि की उपरोक्त शिक्षाओं व कल्याणकारी गतिविधियो के कारण उनका पथ भीलों में अत्यधिक लोकप्रिय हो रहा था। गोविन्द गिरि के बढते हुए प्रभाव से राजा, उनके अधिकारी एव जागीरदार चिंतित होने लगे थे कि उसका बढता हुआ प्रभाव कहीं उनकी सत्ता को पलट न दे अथवा दुर्बल न कर दे। अत वे इन उपदेशकों अथवा प्रचारकों को अपने राज्य अथवा जागीर की सीमाओ से बाहर निकल जाने पर बाध्य करने लगे, जिससे वर्गीय कटुता बढने लगी तथा समाज एव धर्म सुधार आन्दोलन राजनीतिक स्वरूप प्राप्त करने लगा था।

गोविन्द गिरि के आन्दोलन को समन्वित रूप से समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि उसके प्रभाव क्षेत्र मे भीलो की जनसख्या कितनी थी। दक्षिणी राजस्थान के राज्यों व गुजरात के पडोसी क्षेत्रों की भील जनसख्या निम्नानुसार थी –[4]

राज्य	कुल जनसख्या	भील जनसख्या	भीलो का प्रतिशत
बासवाडा	1,65,463	95 834	57 91
डूगरपुर	1,59,192	74 229	46 62
प्रतापगढ	62,701	20,934	33 36
कुशलगढ	20 005	17,100	77 70
ईडर	1,68 557	70,312	41 71
पोल	3 959	3 365	84 99
सूथ	59 350	30,365	51 16

उपरोक्त आकडों से स्पष्ट होता है कि इन राज्यों की लगभग आधी जनसख्या गोविन्द गिरि के आन्दोलन के प्रभाव मे थी। अज्ञानी और अशिक्षित लोगों पर शासन करना आसान होता है किन्तु जागरूक लोगों पर तर्कहीन शासन सम्भव नहीं है। एजेन्ट टू गवर्नर जनरल इन राजपूताना को लिखे मेवाड़ के रेजीडेन्ट के पत्र में यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। इसके अनुसार " इन सिद्धान्तो ने विशेषकर (1) भीलों की सामाजिक अपेक्षाओं को बढा दिया था एव इससे वे राजपूत ठाकुरों व अधिकारियों

के आदेशों को चुपचाप मानने से इन्कार करने लगे एव (2) इनसे शराब की बिक्री कम हुई जिससे भील क्षेत्रो के राज्यो की आबकारी राजस्व मे गिरावट आई।[5] ऐसी स्थिति मे राज्यों के अधिकारी गोविन्द गिरि के पथ के उपदेशकों को अपने भू–भागो से बेदखल करने लगे थे। सत्ता पक्ष के द्वारा उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया तथा उनके पथ को अपमानित करने के लिए उनके पथ के अनुयायियों को जबरदस्ती शराब तक पिलाई गई। अनेक स्थानो पर इस पथ के ध्वज फाड़ दिए गए थे तथा धूनिया मिटा दी गई थी।[6] विशेषकर डूगरपुर राज्य के जागीरदारों व अधिकारियो ने गोविन्द गिरि को उनका भू–भाग छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया था।

सन् 1908 में गोविन्द गिरि ने डूगरपुर राज्य का बेडसा गाँव तथा दक्षिणी राजस्थान के भील भू–भाग छोड़ दिए थे। राजस्थान छोड़ने के उपरान्त गोविन्द गिरि ने बम्बई सरकार के अन्तर्गत ईडर एव सूथ राज्यों (गुजरात) के भीलो मे अपना कार्य जारी रखा।[7] यहा उसने अपने भाई की विधवा से पुनर्विवाह किया तथा किसान बन गया। उसने सूथ राज्य के अन्तर्गत उकरेली (एक गाव) के हाली के रूप मे कार्य किया। तत्पश्चात् सूरपुर नामक गाव मे भी हाली रहा।[8] ऐसा प्रतीत होता है कि उसने हाली के रूप में अपने विचारो को फैलाने मे सफलता प्राप्त की। अपनी शिक्षाओ के साथ–साथ उसने भीलो को उनके प्राकृतिक अधिकारो तथा राज्यों व जागीरदारों द्वारा उनके शोषण व उत्पीड़न के सम्बन्ध मे जागरुक बनाया। गोविन्द गिरि ने सभी बुराइयों से भीलों की आजादी का कार्य अपने हाथ में ले लिया। प्रारम्भिक समय में व दक्षिणी राजस्थान के भू–भागो मे अपना प्रभाव स्थापित करने में सफल रहा तथा 1908 के पश्चात् राजस्थान के समीपी गुजरात के भील क्षेत्रो मे अपने प्रभाव का विस्तार करने में सफल रहा। उसने भील जीवन के कष्टो के कारणों को उजागर करते हुए उन्हे शोषक व उत्पीड़क व्यवस्था के विरुद्ध लडने के लिए प्रेरित किया।

भील विद्रोह के कारण .

1 डूगरपुर, बासवाड़ा एव प्रतापगढ़ के भील भी उदयपुर के भीलो की तरह अग्रेजी राज के शिकार थे। 19वीं सदी के दौरान मेवाड़ मे हुए भील विद्रोहों के परिणामस्वरुप वे अपने अधिकारो की प्राप्ति मे सफल रहे। अन्य क्षेत्रो के भीलो को वे अधिकार और सुविधाएँ प्रदान नहीं की गई थी। समान अवस्थाओ मे रहने वाले समान सामाजिक समुदाय के साथ इस भेद–भाव पूर्ण अग्रेजी नीति के कारण अन्य क्षेत्रो के भीलों में असन्तोष बढ़ रहा था। अन्य क्षेत्रो के भील इस बात से पूरी तरह सहमत थे कि वे भी अपने अधिकारो की प्राप्ति विद्रोहों के द्वारा ही कर सकते हैं। अत डूगरपुर बासवाड़ा व प्रतापगढ के भीलों ने गोविन्द गिरि के नेतृत्व मे विद्रोह किया।

2 पुराने समय मे भील जगल में घास–लकडी की झोपडियो मे निवास करते थे तथा बरसात मे थोडी मक्का उपजाते थे। वे मुख्य रूप से आखेट व प्राकृतिक उत्पादो से गुजारा करते थे। अधिक कठिनाई के समय आस पास के क्षेत्रो मे लूट पाट भी कर लेते थे। किन्तु बदलती हुई परिस्थितियो मे वे कृषि व्यवसाय अपनाने के लिए बाध्य थे तथा कृषको की तरह जीवन यापन करने लगे थे। इस प्रकार वे सीधे अग्रेजी देसी रियासत व जागीरदारो के नियत्रण मे आ गए थे। जैसा कि वे स्वतत्र जीवन जी रहे थे किन्तु अब सामती व औपनिवेशिक नियत्रण के अन्तर्गत वे खुश नहीं थे। राज्य एव जागीरदार भीलो से भारी राजस्व वसूल कर रहे थे। भू–राजस्व के निर्धारण की मुख्य पद्धति बटाई अथवा भागवारी थी। राज्य अथवा जागीरदार का हिस्सा बटाई अथवा कलतार (मोटा अनुमान) पद्धति के द्वारा निर्धारित किया जाता था। इस पद्धति के अन्तर्गत भीलो पर राजस्व का अधिक भार थोप दिया जाता था तथा भुगतान न करने की स्थिति में अधिकारी उनके साथ दुर्व्यवहार करते थे। भूमि पर राज्य व जागीरदारों को मालिकाना अधिकार प्राप्त था जबकि भील इच्छा पर निर्भर किराएदार की हैसियत से कृषि कर रहे थे तथा दासों से कुछ ही ठीक थे।[?] स्वाभाविक तौर ए भील जागीरदारो व राज्यों की दया पर निर्भर हो गए थे। नई ग वस्था में उन्हें सूदखोरो के चुगल में फसना उनकी बाध्यता हो गई थी। भारी शोषण और उत्पीडन मे फसे भीलो के पास विद्रोह के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं रह गया था।

3 भीलों की अन्य शिकायत जगली उत्पादों के सम्बन्ध में थी। जगल प्रशासन की नई पद्धति ने भीलों को जगल उत्पादों को समेटने पर रोक लगा दी थी। यूं तो भील कृषि व्यवसाय अपना रहे थे, किन्तु पुराने व लम्बे अभ्यास के कारण अभी भी वे जंगल उत्पादों पर अधिक निर्भर करते थे। महुवा के वृक्षो का स्वामित्व उनके घरों के उपयोग हेतु लकडी के उपयोग का अधिकार एव जगल में पशु चराने आदि भीलों के मूल्यवान अधिकार थे। भूमि बन्दोबस्त के द्वारा राज्यो ने भीलो के इन अधिकारों को अत्यधिक सीमित कर दिया था तथा बिना कर दिए वे इनका उपयोग नहीं कर सकते थे।[10] कुछ सीमा तक अधिकारियों की अनुमति से भील अपने उपयोगार्थ लकडी ले सकते थे। किन्तु भीलों मे यह आम शिकायत थी कि अधिकारी उन्हे अनुमति काफी विलम्ब के बाद एव अपमानजनक तरीके से देते थे। अत ये प्रतिबन्ध भील विद्रोह का एक कारण बने।

4 भील क्षेत्रों में बडे पैमाने पर वेठ–बेगार प्रचलित थी जिससे भीलों में असन्तोष व्याप्त था। इस सन्दर्भ मे एजेन्ट टू गवर्नर जनरल इन राजपूताना द्वारा सचिव, फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट को लिखे एक पत्र से स्थिति स्पष्ट हो जाती है, जो इस प्रकार है – "वर्तमान परिस्थितियों में भार अत्यधिक असमानता पूर्वक भीलों पर पडता है। जो गाव मुख्य मार्ग अथवा बडे कस्बों के समीप स्थित है उन्हें बेगार अधिक देनी

पडती है एव बेगार के इस भार के कारण गाव के गाव खाली हो जाते हैं तथा भूमि कृषि विहीन छोड दी जाती है चाहे उस पर लिया जाने वाला राजस्व कितना भी कम निर्धारित किया गया हो।"[11] भील बेगार लम्बे समय से कर रहे थे किन्तु गोविन्द गिरि की शिक्षाओं ने उन्हें जागरुक बना दिया था तथा इस प्रथा को सामाजिक अन्याय माना जाने लगा था।

5 दोषपूर्ण आबकारी नीति भी भीलो को विद्रोह हेतु उत्तेजित करने के लिए जिम्मेदार थी। कुछ छोटे राज्यों जैसे सूथ ईडर, बासवाड़ा डूगरपुर एव कुशलगढ़ शराब के ठेकों से होने वाली आय पर निर्भर करते थे तथा उनकी राजस्व का 1/3 से 1/6 भाग इसी से प्राप्त होता था। शराब बेचने का अधिकार ठेकेदारों को दे दिया जाता था। राज्य अवैध शराब निर्माण को रोकते थे। भील लम्बे समय से देशी शराब जिसे मावड़ी कहते थे महुवा के फूलों व पत्तियों से निकालते आए थे जिसे वे अपना अधिकार समझते थे किन्तु अब उन्हे ठेकेदारों व राज्य के अधिकारियो द्वारा रोका जा रहा था, जिसका भीलों ने भारी प्रतिरोध किया था। किन्तु अब सुधार आन्दोलन के प्रभाव मे भीलों ने शराब पीना छोड़ दिया था जिससे राज्यो व ठेकेदारों को भारी हानि होने की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। उदाहरण के लिए बासवाडा मे अक्टूबर, 1913 मे शराब की विक्री 18 470 गैलन से घट कर 5 154 गैलन रह गई थी एव इसी प्रकार आस-पास के अन्य राज्य भी प्रभावित हुए थे।[12] वर्ष 1912-13 में बासवाडा एव कुशलगढ का कुल राजस्व क्रमश 2 50 000 रुपये एव 86 000 रुपये थी जिसमें से बासवाड़ा की 56 000 रुपये तथा कुशलगढ की 31 000 रुपये की आय शराब से प्राप्त हुई थी।[13] ठेकेदार व राज्य के अधिकारी सुधार आन्दोलन को कुचलने के उद्देश्य से भीलों को शराब पीने के लिए बाध्य कर रहे थे। दक्षिणी राजपूताना राज्यों के पॉलिटिकल एजेन्ट ने मेवाड़ के रेजीडेन्ट को इस सन्दर्भ में लिखा था कि ठेकेदार सीधे तौर पर प्रभावित थे। निसन्देह उन्होंने एव उनके कारिन्दों ने अपनी हानि को पूरा करने के सभी प्रयास किए तथा भीलों को उनकी पुरानी आदतों पर लाने के लिए अनेक गलत ओर प्रश्नवाचक साधन अपनाए।"[14] अत शराब का मुद्दा भी भील विद्रोह का एक प्रमुख कारण बन गया था।

6 सत्ता पक्ष द्वारा भीलो के साथ किए जाने वाले दुर्व्यवहार ने भील असन्तोष को जन्म दिया। राज्य के अधिकारी जागीरदार एव उनके कामदार भू-राजस्व जगल कानून बेगार एव आबकारी आदि मामलों में भीलों के साथ कठोर व्यवहार करते थे। कुछ राज्यो में जागीरदार अपनी स्वय की पुलिस रखते थे जो भीलों के साथ निष्ठुर तरीके से पेश आती थी। भारत सरकार के विदेश व राजनीतिक विभाग के सचिव को एजेन्ट टू गवर्नर जनरल इन राजपूताना के एक पत्र में बासवाड़ा राज्य में जागीर पुलिस का मामला उठाया गया। उसने लिखा था कि "जागीर पुलिस का प्रश्न अभी

तक कठिन है। बासवाड़ा जैसे राज्य मे जहा राज्य का एक बहुत बड़ा हिस्सा जागीरदारो के अधिकार मे है तुलनात्मक रूप से दरबार निर्धन है एव अल्प आय से वह पर्याप्त पुलिस बल राज्य के नियत्रण हेतु नही रख सकता। इसलिए जागीरदार अपनी सशस्त्र पुलिस रखते है। ये अपने महत्त्वपूर्ण उपयोग जैसे स्थानीय डाकू–गिरोह के सफाए और छोटे स्तर पर भील विद्रोहो को कुचलने का कार्य करते है जो वर्तमान समय मे अकाल व सूखा की स्थिति मे भयकर है एव जो सामान्य समय मे भी घटते रहते हैं के अतिरिक्त कर–सग्रहकर्ता, वारट देने वाले बेगार लेने दूतो का कार्य आदि भी करते हैं। यह सामन्ती प्रथा का अग माना जाता है जिसे धीरे–धीरे समाप्त किया जा सकता है एव यह महत्त्वपूर्ण है कि इसको कमजोर करने से स्थानीय जागीरदारो की सत्ता कमजोर हो जाएगी।"[5]

बासवाड़ा राज्य के जागीरदार अपनी जनता जो अधिकाशत भील थी पर असीमित फौजदारी शक्तिया रखते थे। उपरोक्त पत्र की निरतरता मे आगे उल्लेख किया गया है कि दस वर्ष पूर्व जब राज्य (बासवाड़ा) ब्रिटिश प्रशासन के अन्तर्गत था तो ये शक्तिया वापस ले ली गई थी तथा दरबार के फौजदारी न्यायालयो के नियत्रण मे प्रमुख जागीरदारों को मजिस्ट्रेट बना दिया गया था। वे अभी भी अपनी जनता पर पूर्ण दीवानी नियत्रण रखते हैं तथा कोई दीवानी मुकदमा जागीर क्षेत्रो से राज्य के न्यायालयो मे नही लाते जब तक कि दोनो अथवा एक पक्ष खालसा क्षेत्र का निवासी न हो।"[6] इन पुलिस न्यायिक एव प्रशासनिक व्यवस्थाओ ने भीलो को उत्पीडित किया जिसने उनमे असतोष उत्पन्न किया।

7 गोविन्द गिरि के नेतृत्व में सन् 1913 के भील विद्रोह का तात्कालिक कारण उनके समाज व धर्म सुधार आन्दोलन के प्रति सत्ता पक्ष के व्यवहार को माना जा सकता हैं। सत्ता पक्ष ने इसे अपनी सत्ता के लिए चुनौती मानते हुए इस आन्दोलन को कुचलने के सभी प्रयास किए। इस स्थिति का सही विश्लेषण दक्षिणी राजपूताना राज्यो के पोलिटिकल एजेन्ट द्वारा मेवाड़ रेजीडेन्ट को लिखे पत्र में किया गया है। उसने कहा कि यह भरपूर रूप मे स्पष्ट है कि गुरुओ द्वारा बोऐ बीजो को प्राप्त करने के लिए भूमि तैयार थी भीलो में यह आम शिकायत इसलिए थी क्योकि एक ऐसे युग में जब सभी जगह दलित वर्गो को जीवन की अच्छी स्थितियाँ उपलब्ध करवाई जा रही थी, वहीं भीलो की भारी उपेक्षा हो रही थी, ऐसी भीलो की भावना बनी हुई थी। यह निश्चित है कि बुरे कारणो का इस मामले से कोई लेना–देना नही है। अभी के वर्षो में कृषि का विकास हुआ है एव इस वर्ष बासवाडा मे 55 इन्च वर्षा हुई है व खाद्यान्नो की फसल अब तक सर्वाधिक है। समर्थ जानकारी के अनुभव मे भीलों की आम स्थिति पहले कभी इतनी अच्छी नहीं रही। हमको की गई शिकायतो मे मुख्य तौर पर बेगार व सामन्ती व्यवस्था के अत्याचार सुधार आन्दोलन की देन है।

वहाँ ऐसे आरोप है कि पुलिस ने उनके गुरुओ व बाबाओं को लूटा है उनके धर्म का अपमान किया गया है उनके पूजा स्थलो से झडे व धूनिया हटाई गई है पुलिस व शराब व्यापार मे रुचि रखने वाले अन्य लोगो ने उनके ऊपर दबाव बढाया एव उनके उपदेशकों को एक राज्य से दूसरे राज्य में निष्कासित किया है।"[7]

8 जैसाकि उल्लेख किया जा चुका है कि सन् 1908 मे गोविन्द गिरि ने राजपूताना छोडकर 1910 तक एक कृषक के रूप मे गुजरात के सूथ एव ईडर राज्य के भीलो मे कार्य किया। उसने इन राज्यों के भीलो को जागृत कर उनका शक्तिशाली जन आन्दोलन तैयार किया था। ईडर राज्य के अन्तर्गत पाल–पटटा मे भील आन्दोलन से ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि वहाँ के जागीरदार ने भीलों के साथ 24 फरवरी 1910 को एक समझौता किया।[8] इस समझौते के अन्तर्गत कुल 21 शर्ते थी जो भीलों के अधिकारों से सम्बन्ध रखती थी। इस समझौते ने राजस्थान व गुजरात के भीलो को युगों पुराने सामन्ती शोषण के विरुद्ध लडने का उत्साह दिया। यह समझौता गोविन्द गिरि के आन्दोलन की सफलता कहा जा सकता है। गोविन्द गिरि के नेतृत्व मे भील विद्रोह गुजरात व राजस्थान की राजनीतिक सीमाओ में बटा हुआ नही था। अत यह समझौता केवल गुजरात के भीलों की सफलता न होकर दोनों क्षेत्रों के भीलो की सफलता थी। वास्तव मे यह पहला अवसर था जब दलित भीलों के साथ एक सामन्त को समझौते के लिए बाध्य होना पड़ा । अत इस सफलता ने भीलों के उत्साह को और अधिक बढाया।

सन् 1913 में भील विद्रोह की घटनाएँ :

भीलों की शान्तिपूर्ण गतिविधिया अपने नैतिक व भौतिक उत्थान के आन्दोलन से अपने प्रति शासक वर्गो के व्यवहार को नहीं बदल सकी किन्तु सन् 1910 तक समाज धर्म सुधार आन्दोलन का प्रभाव इतना विस्तृत एव गहरा था कि भील आन्दोलन उग्र रूप धारण करने की स्थिति में आ गया था। गोविन्द गिरि की कार्य शैली व आवाज बदलने लगी थी एव अब वह शासक वर्गो को कडा जवाब देने की स्थिति में था जिन्होने उसके द्वारा स्थापित भगत पथ को अपमानित कर उसके अनुयायियो को आतकित किया था।

सन् 1910 तक गोविन्द गिरि गुजरात के भीलों के मध्य ही समाज एव धर्म सुधार के कार्यक्रम करता रहा। सन् 1911 के आरम्भ में वह डूगरपुर स्थित अपने मूल स्थान बेडसा वापस आया। वहा उसने धूनी स्थापित कर भीलों को आधुनिक पद्धति पर उपदेश देना आरम्भ किया। सन् 1911 मे उसने अपने पथ को नए रूप में सगठित किया तथा धार्मिक शिक्षाओं के साथ–साथ भीलों को सामन्ती व औपनिवेशिक शोषण से मुक्ति की युक्ति भी समझाने लगा। उसने प्रत्येक भील गाव में अपनी धूनी स्थापित

की तथा इनकी रक्षा हेतु कोतवाल नियुक्त किए गए थे।[19] गोविन्द गिरि द्वारा नियुक्त कोतवाल केवल धार्मिक मुखिया ही नही थे बल्कि अपने क्षेत्र के सभी मामलो के प्रभारी थे। वे भीलो के मध्य विवादों का निपटारा भी करते थे। इस प्रकार अन्य अर्थो मे गोविन्द गिरि की समानान्तर सरकार चलने लगी, किन्तु दूसरी ओर राजा व जागीरदारों द्वारा उसके शिष्यों का उत्पीडन भी जारी रहा।

बेडसा गोविन्द गिरि की गतिविधियों का केन्द्र बन गया था। ईडर, सूथ, बासवाड़ा व डूगरपुर राज्यों तथा पच महल व खेड़ा जिले के भील वहा आने लगे। इस आन्दोलन का प्रभाव सम्पूर्ण दक्षिणी राजस्थान के राज्यों व बम्बई सरकार के अन्तर्गत गुजरात के भील क्षेत्रों मे फैल गया था। उसके बढते हुए प्रभाव से भयभीत होकर अप्रेल, 1913 में डूगरपुर पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया तथा उसका सभी सामान जब्त कर लिया था व उसे उसके धार्मिक पथ को छोड़ने के लिए धमकाया। उसके परिवार को भी पुलिस हिरासत में ले लिया था। उसे तीन दिनो तक बदी रख जेल से मुक्त कर दिया एव उसे डूगरपुर राज्य क्षेत्र से बाहर जाने की सलाह दी। वह अप्रेल, 1913 में यहा से ईडर राज्य के रोजड़ा नामक गाव पहुचा। यहा ईडर के राजा ने उसे गिरफ्तार करने का प्रयास किया।[20]

सामन्ती एव औपनिवेशिक सत्ता द्वारा उत्पीड़क व्यवहार ने गोविन्द गिरि एव उनके शिष्यों को सामन्ती व औपनिवेशिक दासता से मुक्ति प्राप्त करने हेतु भील राज की स्थापना की योजना बनाने हेतु बाध्य किया। गोविन्द गिरि ईडर से अपने साथियों के साथ बासवाडा एव सूथ राज्यों की सीमा पर स्थित मानगढ की पहाड़ी की ओर चला गया। यह पहाड़ी सघन व विकट वनो से आच्छादित थी, जैसा कि यह प्राकृतिक रूप से सुरक्षित थी। गोविन्द गिरि व उसके शिष्यों ने वहा सुरक्षात्मक स्थिति प्राप्त करने के लिए राशन पानी की व्यवस्था कर इस पहाड़ी की किलेबन्दी कर ली। इस पहाड़ी का चयन नि सन्देह सुरक्षात्मक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण था। यह पहाडी माही नदी के किनारे पर स्थित है जो पूर्व डूगरपुर राज्य की सीमा बनाती थी, जहाँ से एकत्रित लोग आसानी से बासवाड़ा, डूगरपुर, सूथ, ईडर राज्यों तथा अन्य पड़ोसी क्षेत्रों की ओर जा सकते थे। गोविन्द गिरि अक्टूबर, 1931 में मानगढ़ पहाडी पर पहुँचा तथा भीलों को पहाडी पर एकत्रित होने के लिए सन्देशवाहक भेजे गए।[21] धीरे–धीरे भारी सख्या मे भील पहाडी पर आने लगे तथा साथ में राशन–पानी व हथियार भी ला रहे थे। इसके विरोधियों द्वारा यह अफवाह फैलाई गई कि भील दीपावली के चार दिन पूर्व 25 अक्टूबर को सूथ राज्य पर आक्रमण करने वाले हैं। पहाड़ी पर लगभग 4000 भील एक समय एकत्रित थे।[22] इस स्थिति से सत्ताधारियों का चिंतित होना स्वाभाविक था।

30 अक्टूबर 1913 को सूथ के पुलिस निरीक्षक ने जमादार युसूफ खान व सिपाही गुलमुहम्मद को मानगढ पहाड़ी जाकर यह पता लगाने के लिए आदेश दिया कि वहाँ क्या हो रहा है। इसके अनुसार 31 अक्टूबर को दोनो मानगढ की पहाडी गए। भीलों ने इन्हें बन्दी बना लिया तथा एक को मार दिया व दूसरे की चिमटों से भयानक पिटाई की व उसे मानगढ़ पर कैद कर लिया गया। 1 नवम्बर को भीलों के एक दल ने सूथ के प्रतापगढ़ किले पर आक्रमण किया किन्तु असफल होकर लौटे। इन गतिविधियों ने सूथ बासवाडा, डूगरपुर एव ईडर राज्यो को चौकन्ना कर दिया था। इन सभी राज्यो ने अपने सम्बन्धित अग्रेज अधिकारियों से मानगढ़ पर भीलों के जमावड़े व पालो में युद्ध के लिए तैयारी कर रहे भीलो को कुचलने की प्रार्थना की। 6 से 10 नवम्बर, 1913 में मेवाड भील कोर की दो कम्पनिया 104 वेलेजली रायफल्स की एक कम्पनी व सातवी राजपूत रेजीमेन्ट की एक कम्पनी मानगढ पर भीलों के जमावड़े को कुचलने के लिए पहुची।[8]

ये सेनाएँ अशान्त क्षेत्रों के भीलों को आतकित करती हुई पहुँची एव 10 नवम्बर 1913 को इस सेना ने मानगढ की पहाडी का घेरा डाल दिया। विभिन्न दिशाओ से पहाड़ी की ओर भीलों के झुड के झुड आ रहे थे। सेनाओं ने उन्हें वापस अपने गाव लौटने के लिए बाध्य कर दिया था। अनेक निरपराध भीलो को सेना के द्वारा मार दिया गया जिसके पीछे सेना का उद्देश्य भीलों को बुरी तरह आतकित करना था। सेना ने पहाड़ी के सभी रास्ते रोक दिए थे। कुल मिलाकर पहाड़ी पर व पहाडी के अतिरिक्त भील क्षेत्रो के भीलो के मध्य सम्पर्क टूट गया था। पालों के भील अपने गुरु के आदेश के बिना कुछ करने की स्थिति में नही थे जबकि वे फौज से टकराने के लिए तैयार थे। 10 नवम्बर की सुबह बम्बई सरकार के उत्तरी सम्भाग का आयुक्त एक छोटी सेना की सुरक्षा लेकर मानगढ की पहाडी की ओर गया किन्तु सशस्त्र भील दल ने इन्हें वापस लौटा दिया।[9] इसी बीच पहाडी का घेरा डाले हुए सेना और समीप आ गई थी तथा गोविन्द गिरि से मिलने के लिए जोर से चिल्लाते हुए अग्रेज अधिकारी थक गए थे। 12 नवम्बर को भीलों का एक प्रतिनिधि मण्डल पहाडी के नीचे आया, जिसने अपनी शिकायतों व समझौते की शर्तो का एक पत्र अग्रेज अधिकारियो को सौपा। गोविन्द गिरि द्वारा भेजे गऐ इस पत्र में भील राज स्थापित करने की ध्वनि परिलक्षित होती है। इनके द्वारा रखी गई शर्तो का स्वरूप भी बडा क्रान्तिकारी था। इस पत्र का विवरण निम्नानुसार है[10] –" प्रार्थी सन्यासी गोविन्द गिरि जी राजूगर जी, दसनामी पथ मूल निवासी बेडसा (डूगरपुर के अन्तर्गत) हाली निवासी सूथ–बासवाड़ा सीमा पर स्थित मानगढ की पहाड़ी का नम्र निवेदन निम्नानुसार है –

पूर्व में मैंनें अपने गाव बेडसा मे एक कुटिया बनाई एव वहा मैं अपने परिवार

सहित रहता था। उस समय मैं गरीब दलित तथा वनवासी लोगो भील कोली आदि के बीच रहता था जिन्हें सृष्टिकर्ता के सम्बन्ध मे कोई जानकारी नही थी। जो मेरी कुटिया पर आते थे उन्हें मैं सवकारो (उच्च जातियों) की तरह आचरण करने की सलाह देता था मैंने उन्हे भगवान की पूजा का मार्ग दिखाया। मैंनें वेडरा व इसके समीप के क्षेत्रो के इन लोगों को उपदेश देकर अपना चेला बना लिया था। मैंने उन्हे सत्य व धर्म का मार्ग दिखाया एव उनको ईश्वर की पूजा करने चोरी पर–स्त्री गमन धोखा आदि न करने दूसरो के साथ मन मे शत्रुता न रखने बल्कि समान पिता (सृष्टिकर्ता) की सन्तान मानकर सबका आदर करने तथा अन्यो के साथ शान्तिपूर्वक रहने अपने जीवनयापन हेतु कृषि करने वीर वन्तरा भोपा आदि मे विश्वास न करने बल्कि इनसे परित्राण हेतु धूनी व ध्वज स्थापित करने व इनकी पूजा करने की शिक्षा दी थी। जो मेरे शिष्य थे उन्हे मैंने रूद्राक्ष की माला पहनने व सर पर पीला साफा बाधने तलवार रायफल धनुष व तीर आदि हथियार न रखने केवल चिमटा रखने प्रत्येक सुबह नहाने व धोने किसी भी जानवर को न मारने की सलाह दी थी। इस प्रकार मैंने उन्हें सत्य का रास्ता दिखाया। इन लोगो ने इस सबको इतना अच्छा और आसान माना कि मेरे शिष्यो की सख्या बढती ही चली गई, इतनी अधिक कि इस समय मेरे इन लोगों में लगभग चार–पाच लाख शिष्य हैं, यह पथ फैल चुका है। .

इसी बीच राज्यो के कर्मचारियो ने अपने राजाओ को इस आशय की गलत सूचना दी कि बाबा (गोविन्द गिरि) ढोंगी है व रैयत को लूट (धोखा) रहा है। राजाओं ने अपने अहम् एव राजसत्ता के अहकार के द्वारा सत्य को जानने की कोशिश नही की तथा डूगरपुर के राजा ने मुझे अचानक गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया, उसने मेरा सभी सामान जब्त कर लिया एव मुझे इस पथ से अलग होने के लिए धमकाया इससे भी अधिक उसने मेरी पत्नि व बच्चो को भी पुलिस हिरासत में रखा। किन्तु भगवान सत्य का रक्षक है, इसलिए मेरे ईश्वर ने मुझे तीन दिन की जेल के पश्चात् जेल से मुक्त होने में मदद की। मैं वहा से तुरन्त भागकर ईडर राज्य के रोजड़ा गाव पहुचा। वहाँ मैं अपनी जाति के बजारो के साथ रहा। मैं वहाँ कुछ समय रहा, यह धर्म वहाँ भी फैला तथा ईडर के राजा ने मुझे बन्दी बनाने का प्रयास किया। मैं जानता था कि उनका इरादा धार्मिक भक्ति का जिसका मैं उपदेश देता था, अपमान करना था एव मैंने निरन्तर भारी उत्पीडन के भय से वह स्थान छोड़ दिया तथा मैं इस सघन व भयानक जगल में पहुँचा। मेरे इस जगल मे प्रवेश के साथ ही सूथ राज्य की पुलिस चौकी का जमादार वहाँ पहुँचा तथा उसने मुझे तुरन्त वहाँ से बाहर निकालने के प्रयास किए तथा मेरे पर जुल्म किया। तदपश्चात् वह वहाँ से भाग कर आया तथा एक झूठी रिपोर्ट दी कि एक लूटेरा बाबा जगल में आया है एव उसने सीमा पर पुलिस थाने को आग लगाकर एक जमादार को मार दिया है। इस रिपोर्ट की सत्यता अथवा असत्यता की जॉच किए बगैर आपको इस बारे में सूचित किया गया। तब मैंने सूथ

दरबार के पास निवेदन लेकर आदमी भेजे कि धूनियो के ध्वज चिमटे साफे तम्बूरे इत्यादि जो मेरे शिष्यों से जब्त कर पुलिस थानों मे जमा कर दिये गये थे को वापस लौटा दिया जाय किन्तु मेरे आदमी दरबार में प्रवेश करे इसके पूर्व ही व बिना कोई प्रश्न पूछे उन पर गोलिया चलाना आरम्भ कर दिया एव मेरे चौदह आदमी वहीं मर कर ढेर हो गए। उनमें से कुछ की लाशे अभी तक पडी हुई है, यदि शीघ्र जाँच की जाए तो आपको सभी कुछ का तुरन्त पता चल जाएगा। जाँच से यह भी पता चलेगा कि अन्य घायल भी हुए थे। इस प्रकार सताए जाने पर मैं अपने शिष्यो के साथ इस पहाड़ी पर पहुँचा हूँ कि जहाँ मैं अपनी जान और धर्म (पथ) की रक्षा कर सकू। अब मेरी प्रार्थना है कि कड़ाना, सन्जेली आदि मे मेरे शिष्यो को उत्पीड़ित किया जाएगा, इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी ये शिकायतें दूर की जानी चाहिए। मैं एक गरीब व निर्दोष साधु हूँ। मैं अपनी भक्ति को जारी रखने के लिए निरन्तर सताए जाने के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान भागता रहा। आप चारों कोनो (विश्व) के शासक हैं इसलिए आपसे निम्नलिखित शिकायतों को शीघ्र दूर करने की प्रार्थना है –

1 प्रत्येक गाव मे मेरे पथ की धूनिया समाप्त कर दी गई हैं एव मुसलमानों ने इन पर पानी डाला है। चिमटे साफे ध्वज धार्मिक पुस्तको नारियल इत्यादि को सूथ राज्य के आदेशों से जब्त कर लिया है एव ये राज्य के फौजदार के अधिकार में हैं। इन्हें वापस लौटाने का आदेश दिया जाना चाहिए।

2 सभी गावों में मेरे पथ की धूनिया व निशान मूल रूप से जैसी वे थीं पुन स्थापित की जाएँ।

3 पूर्व की भाँति लोगों को धूनी व निशान का अधिकार दिया जाए अमावस्या पूर्णमासी एव एकादशी तथा हिन्दुओ के पवित्र दिनों पर मेले आयोजित करने की अनुमति दी जाए।

4 मेरे आवास हेतु घर बनाने के लिए इस पहाड़ी की खराब भूमि मुझे दिए जाने के आदेश प्रदान करे।

5 धूनि व निशानों से होने वाली मेरी आय मे सरकार कोई हस्तक्षेप नहीं करे।

6 ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि राज्य मेरे निवास पर दर्शन हेतु आने वाले शिष्यो को न रोकें।

7 राजा के अतिरिक्त कोई भी मातहत नौकर मेरे शिष्यों से वेठ (बेगार) नही लेगा एव न ही कोई मेरे शिष्यो से प्रचलित दर से कम कीमत पर कोई सामान लेगा।

8 मेरे पथ से जुड़े मामलो में राज्य अधिकारियों द्वारा ली गई रिश्वत मुझे वापस लौटाई जानी चाहिए।

9 किले (प्रतापगढ के थानेदार द्वारा बिना किसी कारण के मेरे आदमियों की हत्या की सही जाच करवाई जानी चाहिए एव मेरे अपमान की क्षतिपूर्ति की जाए।

10. मैंने किसी को अपने शिष्यों का मुखिया नियुक्त नहीं किया है किन्तु मेरे कुछ प्रमुख शिष्यों जैसे पुजा, धीरा, डुगर का पटेल तथा बटकवाडा परतापगढ, वयार बन्डारा, घूघारा, मोलारा, बावरी, पटवाल, आपतलाई आदि के पटेलो पर राजद्रोह का सन्देह किया जा रहा है। इसलिए सही बन्दोबस्त किए जाने चाहिए जिससे कि इस मामले के सुलझने के पश्चात् सूथ दरबार साहेब उनको राजद्रोह के सन्देह पर उत्पीड़ित न करें।

11 मुझे अपने शिष्यों के साथ उपदेश देने के लिए एक गाव से दूसरे गाव जाने से नहीं रोका जाना चाहिए।

12 प्रत्येक गाव में बरसात के मौसम में मेरी धूनियों पर छत बनाने हेतु सुरक्षित वनो से धर्मादे में लकड़ी प्रदान की जाए।

13 मेरे दो मृत पुत्रों के दफन स्थान पर जो मोलारा गाव में दफन है, वहाँ मुझे समाधि बनाने की अनुमति प्रदान की जाए।

14 राज के अतिरिक्त (राजा स्वय) राजा का वाया मेरे शिष्यों से वेठ (बेगार) नहीं ले।

15. राजा साहेब ऐसे लोगों को दीवान रखते हैं जो रैयत को उत्पीड़ित करना पसन्द करते हैं व उत्पीड़ा आदेश निकालते हैं। इसे रोका जाना चाहिए तथा मेरी व रैयत की सुरक्षा हेतु ब्रिटिश सरकार दीवान नियुक्त करे, जैसा कि महाराणा प्रताप सिंह जी के समय पारसी दीवान था जिसने वीघोती (बन्दोवस्त) निर्धारित की थी।

16 सूथ राज्य में मेरी सुरक्षा के लिए ब्रिटिश सरकार 200 भीलों की एक बटालियन स्थापित करे जिसमें मेरे रायफलधारी शिष्य नियुक्त हो एव मुझे 100 रायफलें रखने की अनुमति दी जाए।

17 मेरे शिष्य जो राज के लिए घास काटते हैं उन्हें दो रुपये प्रति हजार पूले की दर से भुगतान किया जाए। वर्तमान में रामपुर सम्भाग के लोगों को एक रुपया व अन्य गावों में चार आने की दर दी जाती है। इसे तुरन्त रोका जाए व उन्हें उपरोक्त दरों पर भुगतान किया जाए।

18 बाबरोल के दो आदमियों को, जो मेरे शिष्य थे, बिना साक्ष्य के बन्दी बनाया गया है। इस मुकदमें के कागजों को देखा जाए एव उन्हें रिहा किया जाए।

19 मेरे शिष्यों को शराब पीने के लिए बाध्य किया गया तथा धूनि पर भोजन पकाकर सिपाहियों ने इन्हें प्रदूषित किया है। इसके पीछे उनका क्या ध्येय है?

20 मेरे शिष्य राज्य की वेठ (बेगार) करते हैं। यह उनसे समानुपाती तरीके से ली जाए।

21 मेरे शिष्यों को धार्मिक रिवाजों के लिए आवश्यक गहने व रगीन वस्त्र पहनने से न रोका जाए।

22 मेरे पास आने के लिए मेरे शिष्यों से 500 रुपए के जो सुरक्षा बॉण्ड भरवाए गए हैं। उन्हें रद्द किया जाए।

23 पुन्जाधीर जी डूगर का पटेल निर्दोष है किन्तु अभी भी उसकी गिरफ्तारी हेतु पुलिस ने वारन्ट जारी कर रखे हैं। पुन खेराप्पा के थानेदार ने झूठी रिपोर्ट की है कि उसने (पुन्जा) गडरा चौकी को जलाकर एक जमादार की हत्या की है। उसने (पुन्जा) ऐसा कुछ नहीं किया है इसलिए उसे निर्दोष घोषित किया जाए तथा उसे मुक्ति प्रदान की जाए।

24 वर्तमान में राज कर्मचारी गावों का दौरा करते हैं तथा मेरे शिष्यों को पीटने व गिरफ्तार करने की धमकी देते हैं। इसलिए उनके दौरे रोके जाएँ तथा सूथ दरबार यह आश्वासन दें कि उन्हें सताया नहीं जाएगा एव उन्हें सुरक्षा प्रदान की जाएगी।

25 दरबार साहेब (सूथ का राजा) अपने बच्चों (रैयत) को साला (पत्नि का भाई) कहता है। यह गाली है जिसे रोका जाए एव राजा की व्यभिचार में सलग्नता को नियत्रित किया जाए तथा वह सत्य के मार्ग पर चले।

26 राज्य द्वारा की गई हत्याओं के भय से मेरे अनुयायी जगलों में भाग गए हैं व इसलिए उनकी फसलों को नुकसान हुआ है। राज्य बीरो (भू-राजस्व) में वृद्धि न करे एव उनको छूट दे जिनकी फसलों को नुकसान हुआ है। साहूकारों की दीवानी कुर्कियाँ इस वर्ष आगे बढा दी जाएँ।

27 मैं रामपुर के सेठ गुलाबचन्द अमीरचन्द को अपना मुख्त्यार नियुक्त करता हूँ, जो मेरे पास आकर मेरा उत्तर एव स्पष्टीकरण ले सकेगा। इसलिए उसके द्वारा ऐसे आदमी रखने पर राज्य आपत्ति नहीं करेगा जिसे वह रखना चाहे एव उसको अथवा उसके आदमियों को उत्पीडित नहीं किए जाने की सही व्यवस्था करें।

28 इस सबकी सत्यता अथवा असत्यता की जाँच करते समय सूथ राज्य की रैयत व राज्य कर्मचारियो को एक साथ मिश्रित नहीं किया जाए।

29 जब मामला तय हो जाए तो मुझे आपके हस्ताक्षरयुक्त एक थाख (निर्णय पत्र) प्रदान किया जाए। मेरे शिष्यों की उपरोक्त कठिनाइयां है। आप एक मात्र स्वामी (शक्ति) हैं जो हमे उनसे बचा सकते हैं तथा लाखों लोगो की रक्षा कर सकते हैं।

30 रैयत राजा जी की है एवं उन्हें अभी भी घर (झोंपड़ी) बनाने मे भारी कठिनाई होती है। जब कभी ये लोग इमारती लकडी की नि शुल्क प्राप्ति हेतु आवेदन करते हैं तो उन्हे यह लगभग दो वर्ष बाद मिलती है। वो भी अपर्याप्त मात्रा मे। अधिकाधिक प्रकृति प्रदत्त सम्पदा को राज्य लेता है। इसलिए महलकारी (जगल कानून) के अन्तर्गत पुरानी प्रथा का अनुसरण किया जाए तथा पर्याप्त इमारती लकडी शीघ्रतापूर्वक दी जाए। बास काटने पर लगाई गई पाबन्दी हटाई जाए तथा राज्य द्वारा इच्छा पत्र विहीन सम्पति जब्त न की जाए। अफीम बागड मे (डूगरपुर, बासवाडा) एक रुपए की चार तोला मिलती है। जबकि यहाँ एक रुपए की दो तोला का भाव है। यहाँ व बागड़, दोनों में अफीम की समान दर होनी चाहिए। जलाने वाली लकड़ी निर्धन लोगों को सर्दी से बचने का एकमात्र साधन हैं इसलिए लोगो को सूखी ईंधन की लकड़ी प्राप्त करने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाए।

31 तकावी ऋणों का ब्याज (राज द्वारा) नहीं लिया जाए, फलों के वृक्षों पर लाग व पत्थर, चूनम ककड़ पर शुल्क नहीं लिया जाए।

32 निर्धन लोगों द्वारा जोती जाने वाली भूमि पर निर्धारित बीघोती (भू–राजस्व) समाप्त की जाए तथा भू–राजस्व का आकलन पुरानी प्रथानुसार किया जाए। जिस प्रकार सीमा के लोगों को तलवार व बन्दूक रखने की अनुमति दी जाती है उसी प्रकार यहा की रैयत को भी अनुमति दी जाए।

33 हमारा उत्सव अभी डेढ़ माह व सात दिन और चलेगा। हम शान्ति से बैठे हैं और ईश्वर के नाम का स्मरण कर रहे हैं। मेरा निवास दो सीमाओं (राज्यों की) के मध्य स्थित है यहा हमें पानी व ईंधन की सुविधा है एव इसलिए मेरे अनुयायी उत्सव के दिनों अमावस्या व पूर्णमासी को मेरे प्रति सम्मान प्रकट करने आते हैं। मैंने अपने सासारिक कष्टों को दफना दिया है (भूल चुका हूँ) एव मैं यहाँ अपने तक सीमित हूँ एव अभी तक मेरे अनुयायियों को सताया जा रहा है। आप जो करते हैं उसके लिए आपको सावधान व विचारशील होना चाहिए। हमारी ओर ससार (दैविक ससार) है दूसरी ओर (आपकी तरफ) शक्ति है। एक पक्ष (हम) वेदी (सत्य को जानने वाले) है तथा दूसरा पक्ष (आप) भेदी (सासारिक गतिविधियों में सलग्न) है। श्रीमान बोलो, हमारे कार्यो के बारे में मत पूछो एव हमें भी राज्य के कार्यो के बारे में नहीं पूछना चाहिए। प्रार्थना है कि लोगों को भयभीत नहीं

किया जाए, उन्हें उनकी भक्ति (पूजा) करने दी जाए। वे सभी आपकी प्रजा हैं यदि वे आपके कानूनो को न मानें तो मुझे कहे किन्तु यदि आप उन्हें पूजा करते हुए मारते हो तो आप भगवान के समक्ष इसका उत्तर दोगे। मैं अपने शिष्यो मे ऐसे लोगों को शामिल नही करता जो सूअर व गाय खाने वाले शराब पीने वाले लालची झूठे व मक्कार चुगलखोर चोर झूठ बोलने वाले व्याभिचारी व ऐसा और बुराई करने वाले बनियो की औरते ब्राह्मण व राजपूतों की बाल–विधवाएँ अनैतिकता करती है। उन्हे सती कहा जा सकता है या पापिन। ये (भील) निर्धन व धरती के जीव हैं। वे भूमि जोतते हैं एव इसमें हथेली भर अनाज बिखेरते हैं। एक चुटकी भर भीख मेरे लिए पर्याप्त है एव मैं उसे खुशी से स्वीकार करता हूँ। मैं किसी से और कुछ नही चाहता। मैं उससे लेता हूँ जो बिना मागे देता है। इसलिए प्रार्थना है कि मुझे सताया न जाए। मेरा किसी पर दावा नहीं है। दीवाली के महिने में मैं अपने बगीचे (सम्भवत पहाड़ी) पहुँचा किन्तु वहाँ भी मुझे सताया गया। ईडर के थानेदार लूनावाड़ा के थानेदार व दरबार के चाचा इन्होंने मेरे से रिश्वत मागी, एव जैसा कि मैनें इन्हें रिश्वत नही दी उन्होंने कहा कि वे मेरी धूनियों पर शौच कर देगे एव वहा मुरगा व बकरा मारेगे एव मेरे ध्वज का अपमान करेंगे। ऐसा कहते हुए वे मुझे गिरफ्तार करने आए तब मैंने भयवश अपने आप को मानगढ़ की पहाडी पर छुपाया। कलियुग के इस समय मे आपका साम्राज्य पूर्ण रावेग पर है इसलिए आप हमें न्याय दे तथा पानी से दूध को अलग करे व करोड़ों जानो की रक्षा करे। सजेली मे सत्ताधारियों ने मेरे ध्वज जलाए हैं रूथ दरबार ने मेरे पर बहुत जुल्म किए हैं। मैनें अपनी पूजा के छ वर्ष पूरे कर लिए हैं तथा छ और शेष है। मैं आपसे मिलूगा। आप कानून के अन्तर्गत मानव के महान रखवाले हैं। आप सरकार मेरे पच व मेरे प्रतिनिधि हैं। मैं किसी पर आक्रमण करने मारने या लूटने नही जा रहा। मैं अपने धार्मिक अनुष्ठान में लगा हुआ हूँ। क्योकि किसी भी राज्य ने मुझे नीचे (मैदान) नहीं रहने दिया, वे मेरे धर्म व मेरा अपमान करेगे। इसलिए मैंनें आत्मसम्मान की रक्षा हेतु इस पहाडी पर शरण ली है। मैं निर्दोष हूँ, मैं राजूगरजी का शिष्य हूँ जो सोलागरजीका शिष्य था वह बूँदी अखाडे के घोटागर जी का शिष्य था। मैं एक ससारी हूँ व प्रार्थना करता हूँ कि मुझे सताया न जाए। भीख शकर भगवान का प्रतीक है। भगवान से डरो सबको मरना है इसलिए दया व धर्म की भावना रखो। मेरे पर धोखे व झूठ का प्रयोग मत करो। गुस्से में मुझ पर आक्रमण मत करो। यदि मेरा इरादा राजा या रैयत के प्रति धोखे का होगा तो मेरा धर्म मुझे नष्ट कर देगा। यदि आप मेरे विरुद्ध कोई धोखा करोगे तो आपका धर्म आपको नष्ट कर देगा। जो गड्ढा खोदता है वही उसमे गिरता है। जो जैसा बोता है वैसा ही काटता है। जो जैसा करता है वैसा ही उसको फल मिलता है। आप इस सबका निर्णय करे व न्याय करें तथा अपने

रास्ते जाएँ, वरना आपका क्षेत्र नष्ट हो जाएगा। मैं इन लोगो का गुरु हूँ एक गुरु के लिए तीन चीजें जरूरी है। शिष्यों का उत्थान, गुरु मन्त्र व गुरु की शिक्षा। मैं कोई छल या कपट नहीं करता। मैं भगवान पर भरोसा रखता हूँ, मैंनें दैविक ससार को स्वीकार किया है मेरी भीख में श्रृद्धा है जो भगवान का प्रतीक है। आप महान हैं। आपसे प्रार्थना है कि चीटी पर पनसेरी मत फेको। जल्दी या देर से सभी को जाना हैं। ससारी लोग समाप्त होगे। दैविक ससार जोगियो का रखवाला है। मुझे आपके शब्दों पर भरोसा है यदि इसमें भरोसा तोड़ा गया तो हम मरते दम तक लडेंगे एव मेरे बच्चे असहाय स्थिति में होगे। यदि आप भक्तों (मेरे पथ के अनुयायी) को रुष्ट करोगे तो इसके अच्छे परिणाम नहीं होगे।

यहाँ मेरे निवास स्थान पर प्रत्येक सुबह लगभग 1000 साधुओ को भोजन कराया जाता है। इस व्यय की पूर्ति हेतु आपको मेरी लागत (कर) निश्चित कर देनी चाहिए अर्थात मेरी दर निश्चित कर दीजिए जो मैं सभी समुदायों से एकत्रित कर सकूँ। मैं निम्नलिखित व्यक्तियों को अपना प्रतिनिधि नियुक्त करता हूँ जो इस मामले को आपके साथ तय कर सकेंगे –

1 रामपुर का सेठ सराफ अली सलेमानजी
2 रामपुर का मेहता छगन लाल पदमचन्द
3 बन्जारा, लाखा जीवन
4 घटकवाड़ा का परागी मेन्डल जोरजी
5 घटकवाडा का सालजी जोरजी
6 झालोद तालुका में गराड़ू का मुनिया तेजा गाला व मुनियापुन्जा गाला
7 बन्जारा दूधा कशाला

मैं उपरोक्त नाम के व्यक्तियों को इस मामले को तय करने हेतु अपना मुख्तायार नियुक्त करता हूँ। उपरोक्त निर्धन साधु का आवेदन पत्र है।'

सवाद के दौरान ब्रिटिश अधिकारियों ने कहा कि उन्हें उनके सुधार आन्दोलन से सहानुभूति है, किन्तु इतनी बड़ी सख्या में हथियार बन्द होकर एकत्रित होना तथा एक पहाड़ी पर अपने आपको किलेबन्द करना विद्रोह है। भीलों के शिष्ट मण्डल को यह सुझाव दिया गया कि पहले तुम तितर–बितर होकर अपने घर लौट जाओ तभी आपकी समस्याओं का समाधान होगा। भील शिष्ट मडल ने अपनी प्रतिबद्धता दिखाते हुए अपनी मागों के शीघ्र समाधान पर बल दिया तथा उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि वे सत्ता पक्ष के समक्ष झुकेंगे नही। दोनों ही पक्ष अपनी अपनी बात पर अड़े हुए थे, ऐसी स्थिति म कोई समझौता नहीं हो सका। भारी कशमकश के बाद अग्रेज अधिकारियों ने भीलो को लिखित आश्वासन दिया कि उनके पथ के मामले में कोई

हस्तक्षेप नहीं होगा तथा इस आशय के आदेश सभी राज्यों व जिलों को भिजवा दिए जाएँगे। तत्पश्चात् ब्रिटिश अधिकारी अगले दिन की बैठक निश्चित कर चले गए। ब्रिटिश अधिकारियों ने भील शिष्ट मण्डल को जो पत्र लिखा उसका विवरण निम्नानुसार है[1] –

"हमने आपका आवेदन पत्र प्राप्त कर लिया है एव यह जानकर प्रसन्नता है कि आप लोगों ने शराब पीना डकैती व चोरी करना तथा अन्य बुरी आदतों को छोड दिया है तथा धर्म अपना लिया है। हम कभी आपको शराब पीने व उपरोक्त बुरी बाते करने के लिए बाध्य नहीं करेगे। हम प्रत्येक राज्य को आदेश जारी करेंगे कि वे आप लोगों को ये पाप करने के लिए बाध्य न करें किन्तु इस स्थान पर हथियारो सहित भारी सख्या में एकत्रित होने को बर्दाश्त नहीं करेगे। यदि आप लोग पूजा करना चाहते हैं तो कहीं भी कर सकते हैं किन्तु भारी सख्या में आपके जमावडे का अनुमोदन नहीं कर सकते। कल हम पहाडी पर अपनी सेना भेजेंगे। इसलिए आप लोगों को आगाह किया जाता है कि दोपहर तक तुम लोग पहाडी से नीचे आओगे और यदि कोई पहाडी पर रहेगा तो उसे लडना नही चाहिए। यदि वह ऐसा करता है तो उसे मार दिया जाएगा।

उपरोक्त धमकी भरा पत्र भी भीलों को निरुत्साहित नही कर पाया। अग्रेज अधिकारी निरन्तर इस प्रयास में लगे थे कि कैसे भी भीलो के इस जमावडे को तितर–बितर किया जाए किन्तु उनके प्रयास असफल होते जा रहे थे। शान्तिपूर्ण प्रयासो के साथ–साथ अग्रेजो की सैनिक तैयारिया बढती जा रही थी। यह पूरी सम्भावना थी कि भीलों पर सैनिक आक्रमण कभी भी हो सकता है। गोविन्द गिरि ने 14 नवम्बर, 1913 को दार्शनिक अन्दाज में पुन एक पत्र लिखा। यह पत्र ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण व रोचक है जिसका मूल पाठ इस प्रकार है[17] –

"मैं किसी के साथ हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। मैं कोई राज्य का शासन नहीं करना चाहता न ही किसी शहर को लूटना। मैं अपनी पुरानी धूनी पर पूजा के प्रतीकों सहित बैठा हूँ जिसकी स्थापना मैंनें इस पहाड़ी पर की है। मैं दूसरो के द्वारा दिए जाने वाले अनाज पर निर्भर रहता हूँ। मैं ना तो चोरी करता हूँ ना ही अपने शिष्यों को ऐसा करने की सलाह देता हूँ। यदि वे मेरी बात नहीं मानते हैं तो मेरा उनका गुरु होना व्यर्थ है। ये सभी लोग यहाँ मेरे प्रति श्रृद्धा अभिव्यक्त करने हेतु एकत्रित हुए हैं। आपको भ्रमित किया गया हैं। आप अनपढ नहीं हैं एव आपको अन्य लोगों के बहकावे में नही आना चाहिए। हमने क्या नुकसान किया है जो आप नाखुश हैं। हम चोर नही

हैं। ससार नश्वर है। हमको जीने के लिए केवल अनाज व तन ढकने के लिए कपडा चाहिए। हम सन्तुष्ट रहेंगे यदि आप हमें हमारे धर्म, विश्वास अच्छाई आत्मविश्वास को बनाए रखने की अनुमति प्रदान करें। आप यहाँ इतनी विशाल सेना लेकर क्यों आए हैं ? आप शासन कर सकते हैं। हम अपने धर्म से सन्तुष्ट हैं। भील इस भय से कि उन्हे व उनकी महिलाओं को बेइज्जत किया जाएगा, पहाड़ों की ओर भाग गए हैं। उन्हे शराब पीने व भैंसे भक्षण हेतु बाध्य किया गया है। गुरु को भी अपमानित किया गया था। हिन्दुओं व मुसलमानो ने अपना धर्म छोड दिया है। हिन्दू नास्तिक हो गए हैं। मुसलमानों को हम अपनी भक्ति मे आने की अनुमति नही देते। राजपूतो ने हमारी भक्ति को नष्ट किया है एव हमे मास भक्षण व शराब पीने के लिए बाध्य किया है। मुसलमानों ने हमें गो–मास खाने पर बाध्य किया है एव हमारे धर्म को नष्ट किया है। इन सभी कारणों से हम पहाडी पर चले गए क्योंकि हम असहाय हैं। ये तीन जातिया हमारे समीप नहीं आती। मुसलमान नास्तिक है तथा ये धन पर ब्याज लेते हैं व सूअर का मास खाते हैं जो इनके वर्जित है। ये लोग जो ऐसे नास्तिक हैं, हमारी पूजा को नष्ट करते हैं, वे ऐसे धर्म को पसन्द नहीं करते जो अच्छी नैतिकता का उपदेश देता हो। आप इसका निर्णय करें कि यह अच्छा है या बुरा। इस भक्ति को बचाने के लिए हमने सम्पत्ति परिवार, धान एव हर वस्तु का त्याग किया है व आत्म मोक्ष के लिए जगल मे शरण ली है। हमारा पाप हमें कहीं बसने की अनुमति नहीं देता। आप इन राज्यो से पूछेगे कि क्या हमने कोई चोरी अथवा हत्या की है। हमने ऐसा कुछ नहीं किया। केवल भक्ति की है। हम जन्म से बन्जारे हैं । हम बनियों की तरह चतुर नहीं हैं। हम कानून के अन्दर रहकर कृषि से जीवन यापन करते हैं। यू तो हम साधारण सासारिक आदमी हैं व पहाड़ी पर इसलिए आए हैं कि हमारे धर्म को नष्ट किया जा रहा था। निम्नलिखित बूंदी दशनामी अखाड़े के गौंसाई हैं –

गिरिनामा
छोटा गरजी
सालन गरजी, एव
राजू गरजी।

यह अभागा गोविन्द गिरि जी। आप उनसे तार द्वारा जानकारी कर सकते हैं कि यह कोई नया धर्म है अथवा सारे ससार में फैला हुआ है ? भील मुझे अपना गुरु स्वीकारते हैं एव मैंने उन्हें मेरे दर्शन हेतु आमन्त्रित किया है एव वे मेरे शिष्य बने हैं। मैंने उनकी धार्मिक परम्पराओं के बारे में जाच कर इनका निर्धारण किया है। हम

आपको निष्पक्ष व सच्चा मानते हैं। सत्य को तौले एव तब हमको मारे। शिष्य अपने गुरु के दर्शन हेतु आए हैं। यदि उनके द्वारा कोई धोखेबाजी किए जाने का भय है तो उनसे गाव के मुखिया की मध्यस्थता के नियत्रण मे वचनबद्धता करवा सकते हैं। गुरु की सलाह है कि जो धर्म का पालन करेगा वही मोक्ष प्राप्त करेगा। उदाहरणार्थ जैसा आप बोएँगे वैसा काटेगे जो पाप करता है वह भोगेगा। जैसा आपका कर्म होगा वैसा ही फल मिलेगा। हम इस ससार मे पिछले जन्म के पापों का प्रायश्चित करने आए हैं। इस ससार में हम अधिक पाप करेगे तो हम अधिक प्रायश्चित करेगे। हम केवल मात्र चीखने अथवा शक्ति द्वारा शासन करने हेतु राज्य स्थापित करने नहीं जा रहे। हमारे प्राण का कोई स्वामी नहीं हैं। मैं यहाँ अपने पूर्व जन्म के कर्मों के परिणाम स्वरुप हूँ तथा जगल में भील भक्तो द्वारा भेंट किए जाने वाले हथेली भर अनाज पर जीवित हूँ। यदि मैं अथवा मेरा वारिस पहाडी से किसी गाव को लूटने उतरता है तो उसे बन्दूकों से भून दे। मुझे अपने सृजक मे पूरा विश्वास है जो मेरी धूनी में निवास करता है। मेरे शिष्य सन्तुष्ट हैं। जो कुछ वे प्राप्त करते हैं उसे वे बाट लेते हैं। यदि उन्हें कपड़े मिलते हैं तो वे उन्हें पहन लेते हैं। यदि नहीं तो वे आग जलाकर उसके पास बैठकर समय गुजार देते हैं। वे व्यभिचारी नहीं हैं। उन्होने सभी बुराईया छोड दी है। हम इस ससार में अपनी आजीविका हेतु कार्य करते हैं। यदि हम इस जन्म मे अच्छा करेंगे तो अगले जन्म मे हमें इसका पुरस्कार मिलेगा शक्तिशालियों को अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए एव आप हमारी फकीरी (भक्ति) को नष्ट न करे। आप देश के शासक हैं । इस कलियुग मे कोई न्याय नहीं हैं। एक दिन आपको पाप घेर लेगा। शक्ति का प्रयोग न करे। हमारी भावनाओं की इज्जत करें। भगवान आपको आर्शीवाद देगा। लोगों को सताऐ नहीं। हमारे दिल मे आग जल रही है। ससार मे इसे बुझाने वाला आपके अलावा कोई नही है। आप हमारे लोगो के रखवाले हैं। आप समझदार हैं। हमारे पास गुरु मन्त्र है। एक धर्म गुरु के शब्दो पर भरोसा करें। देर सवेर हमे भरना हैं। हम केवल भक्ति द्वारा ही मोक्ष प्राप्त कर सकते है हमारे धर्म को नष्ट न करे। '

राजा व सामन्त अधीर हो रहे थे तथा अग्रेज अधिकारियो को भीलो के शीघ्र दमन हेतु उकसा रहे थे। अत अधिकारियों द्वारा गोविन्द गिरि को कहा गया कि पहले वे पहाड़ से आदिवासियों के जमावडे को तितर–बितर करे। तदुपरान्त ही माग पत्र पर विचार किया जा सकता है जबकि गोविन्द गिरि का कहना था कि पहले उनकी मागे मानी जाएँ उसके बाद ही समझौता सम्भव है। राजा व सामन्त अग्रेज अधिकारियो से विनती कर रहे थे कि शीघ्र से शीघ्र मानगढ की पहाड़ी को भीलों की

भीड से मुक्त कराया जाए। डूगरपुर के महारावल ने अग्रेज अधिकारी पॉलिटिकल एजेन्ट, सदर्न राजपूताना को स्थिति की गम्भीरता बताते हुए लिखा कि " भीलों को शान्त करने में हो रहे विलम्ब का बहुत बुरा प्रभाव पड रहा हैं। पालो मे भील इकटठे होकर प्रार्थना कर रहे हैं कि ब्रिटिश फौजे हारेगी तथा बाबा गोविन्द गिरि जीतेगे। जैसे कि उनके पास दिव्य शक्तियाँ हैं तथा विलम्ब इसलिए हो रहा है कि साहिब (अग्रेज) बाबा पर आक्रमण करने से भयभीत है। आप कुछ प्रभावी कदम उठाएँ। वरना भील यहाँ के अलावा मेवाड व ईडर मे भी कष्ट देगे। इस पत्र को माफ करें किन्तु मैं कोई अवसर बगैर सूचना दिए नहीं जाने दे सकता। लिमरवाडा पाल के भील कष्ट दे रहे हैं तथा मैं उन्हें शान्त रखने की हर सम्भव कोशिश कर रहा हूँ।"[28] इस प्रकार रुचि रखने वाले पक्ष भीलों के खिलाफ शीघ्र कार्यवाही हेतु अग्रेज अधिकारियों को भडका रहे थे।

राजा व सामन्त तो शक्तिहीन थे, किन्तु अग्रेजो को भडकाकर भीलों का कत्लेआम करवाने पर कृत सकल्प थे। 17 नवम्बर 1913 को अंग्रेजी फौजो ने मानगढ की पहाडी पर आक्रमण कर दिया। मानगढ की पहाड़ी के सामने दूसरी पहाडी पर अंग्रेजी फौजों ने तोप व मशीन गनें तैनात कर रखी थीं एव वहीं से गोला बारूद दागे जाने लगे। लगभग एक घन्टे तक मानगढ पर भीलों ने सेना का सफल मुकाबला किया, किन्तु आधुनिक युद्ध सामग्री के समक्ष अधिक समय तक वे टिक नही सके। मानगढ की पहाडी के नीचे तैनात अंग्रेजी फौज पहाडी को घेरते हुए ऊपर पहुची तथा भीलो को अधाधुध गोलियो से भूनना आरम्भ कर दिया। भीलो में भी भगदड़ मच गई। कुछ ही समय में पहाड़ी पर भीलो ने आत्मसमर्पण कर दिया, उसके उपरान्त भी भीलों का कत्लेआम जारी रहा। अंग्रेजी दस्तावेजों के अनुसार कुल 100 भील मारे गए थे तथा 900 भीलो को बन्दी बना लिया गया था।[29] इनके साथ ही गोविन्द गिरि व पुन्जीया को भी बन्दी बना लिया गया था। पुन्जीया ही पहला व्यक्ति था जिसने आत्मसमर्पण करते हुए अन्यों को भी आत्मसमर्पण के लिए प्रेरित किया। दोनों को तुरन्त प्रभाव से अहमदाबाद जेल भेज दिया गया। बन्दी बनाए गए 900 लोगों में से 800 को एक सप्ताह के पश्चात् रिहा कर दिया गया तथा शेष लोगों को मुकदमा चलाने के लिए सूथ जेल में रखा गया।[30] इस घटना की खबर समस्त भील गावों में तेजी से फैल गई जिससे उन्हें भारी निराशा हुई। अहमदाबाद बड़ौदा, खेरवाड़ा एव उदयपुर की ओर लौटती हुई सेना ने चीख कर व गोलिया चलाकर भील क्षेत्रों को आतकित किया। इस प्रकार भील क्रान्ति को निर्दयता पूर्वक कुचल दिया गया।

गोविन्द गिरि के नेतृत्व में भील विद्रोह को कुचल दिया गया था किन्तु भील पालो में विद्रोह की सम्भावनाएँ नही हुई थी। मानगढ़ से आने जाने वाली फौजों ने भील पालों में खासा आतक स्थापित कर दिया था। इसके साथ–साथ अग्रेज अधिकारियों ने भीलो को सन्तुष्ट करने के ध्येय से शीघ्र प्रभाव से सुधारात्मक तरीके भी अपनाए। बन्दी भीलो पर शीघ्र प्रभाव से मुकदमे की कार्यवाही आरम्भ कर दी गयी थी। गिरफ्तार 100 लोगों पर इसी उद्देश्य के लिए गठित विशिष्ट न्यायालय में मुकदमा चलाया गया। इस न्यायालय के आदेश से इनमें से 70 लोगों को जो मुख्य रूप से मुखिया, पटेल एव गमेती थे को उनके सम्बन्धित राज्यों के हवाले कर दिया गया, जहा उनको सम्बन्धित न्यायालयों मे विभिन्न सजाएँ सुनाई। शेष 30 व्यक्ति जिन पर हत्या, डकैती वैमनस्यता व वर्ग घृणा फैलाने व राज्य के विरुद्ध बगावत करने जैसे गम्भीर आरोप थे, पर मुकदमा विशेष अदालत ने तय किया। इस मुकदमे मे मनमाने तरीके से निर्णय किया गया। बाबा गोविन्द गिरि को मृत्युदण्ड पुन्जीया धीर जी को आजीवन कारावास एव शेष को तीन वर्ष का कठोर कारावास की सजा दी गई। 30 मे से 6 अपराधियो को बिना किसी सजा के मुक्त कर दिया गया।[5] इस विशेष न्यायालय का गठन मुख्यत प्रशासनिक व सैनिक अधिकारियों को न्यायाधीश के रूप में नियुक्त करके किया गया था जो अपने आप में न्याय सगत नही था।

उपरोक्त फैसले को उच्च न्यायालय की स्वीकृति के पश्चात् ही लागू करना था। उच्च न्यायालय का गठन अहमदाबाद में बम्बई सरकार के उत्तरी सम्भाग के आयुक्त द्वारा किया गया। यह निर्णय व सजा प्राप्त अभियुक्तो की याचिका इस न्यायालय मे पहुँचनी थी। 23 याचिकाकर्ताओ का प्रतिनिधित्व अन्तोल दास वकील ने किया। 24वा अपराधी जेल में ही मर गया था। मुकदमें की कार्यवाही आरम्भ होते ही अपराधियों के वकील अन्तोलदास ने औपचारिक आपत्ति उठाई कि अपराध प्रक्रिया सहिता की धारा 556 के अन्तर्गत वर्तमान उत्तरी सभाग का आयुक्त उच्च न्यायालय के रूप में बैठने के योग्य नहीं है। उसकी यह आपत्ति सही थी क्योंकि मानगढ पर सैनिक अभियान के समय उत्तरी सम्भाग का आयुक्त एक पक्षकार के रूप मे उपस्थित था। सैनिक अभियान उसकी उपस्थिति एव उसके निर्देशों व निगरानी के अन्तर्गत चलाया गया था। किन्तु वकील की इस आपत्ति को अस्वीकृत करते हुए मुकदमे की कार्यवाही जारी रही।

उच्च न्यायालय के रूप में उत्तरी सम्भाग के आयुक्त ने आदेश पारित किया कि "अपराध प्रक्रिया सहिता की धारा 423 के तहत मे सूथ व बासवाड़ा राज्यों में

प्रचलित कानून के पैनल कोड की धारा 121 के अन्तर्गत गोविन्द गिरि बेचारगर की राजा की पुष्टि करता हूँ, किन्तु उसकी सजा को आजीवन कारावास मे बदलता हूँ। पुन्जा धीर जी को विशेष न्यायालय द्वारा दी गई आजीवन कारावास की सजा को उपरोक्त सहिता की धारा 121 एव 302 के अन्तर्गत पुष्टि करता हूँ तथा इसमे परिवर्तन से इन्कार करता हूँ। इसी सहिता की धारा 148 व 149 के अन्तर्गत शेष 21 याचिकाकर्ताओ की सजा की पुष्टि करता हूँ, किन्तु इन सभी की सजा 6 माह का कठोर कारावास कम करता हूँ।[32]

उपरोक्त आदेशो की न्यायप्रियता पर प्रश्नवाचक चिन्ह लग जाता है। जब न्यायाधीश स्वय पूर्वाग्रहो से युक्त हो। इसे किसी भी स्थिति मे न्याय कहना तर्कसगत प्रतीत नही होता है। यह अधिकारी अपने निर्णय मे निष्पक्ष न्यायधीश की भूमिका निभाने मे असफल रहा क्योकि वह भारत मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हितो से जुड़ा हुआ था। राष्ट्र उत्थान के उस युग रक्तशोषक साम्राज्यवादियों द्वारा ऐसी घटनाओ को सहन किया जाना सम्भव नही था। विद्रोहो पर नियत्रण स्थापित करने के लिए तथा भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा के लिए इस तरह के कदम उठाना आवश्यक था।

यह विद्रोह कुचल दिया गया था, किन्तु इसने दूरगामी प्रभाव छोड़े। मानगढ की पहाडी भील प्रेरणा का सूचक बन गई थी। अग्रेज अधिकारियों ने अकेले या भारी सख्या में सम्बन्धित दरबारों की लिखित अनुमति के बिना किसी भील का मानगढ की पहाडी पर जाना दो वर्ष के लिए प्रतिबन्धित कर दिया था। भील आन्दोलन कुचल दिया गया था। किन्तु भील अपने गुरु की गिरफ्तारी को लेकर आन्दोलित थे। भीलों में गोविन्द गिरि भारी लोकप्रिय थे क्योंकि उसने उन्हें अनेक बुराईयों से मुक्ति दिलाई थी। अत गोविन्द गिरि की लोकप्रियता के कारण आजीवन कारावास की सजा को दस वर्ष की सजा में बदल दिया गया था तथा सात वर्ष के पश्चात् इस शर्त पर रिहा कर दिया गया था कि वह सूथ डूगरपुर बासवाडा कुशलगढ एव ईडर राज्यों में प्रवेश नहीं करेगा। वह सरकारी निगरानी में अहमदाबाद सम्भाग के अन्तर्गत पचमहल जिले के झालोद नामक गाव में रहने लगा। इसी स्थान पर सभी क्षेत्रों के भगत भील उसके प्रवचन सुनने वहाँ पहुँचने लगे।

आश्चर्य की बात तो यह थी कि इतना बड़ा हत्याकाण्ड जो कि जलियावाला बाग से भी वीभत्स था, की उपेक्षा राष्ट्रीय स्तर पर हुई। किसी भी तथाकथित सभ्य समाज की सस्था ने न तो इस हत्याकाण्ड की आलोचना की एव न ही इस शहादत

को सराहा। बागड के भील आदिवासियों की यह शहादत व्यर्थ नहीं गई, बल्कि इस घटना के पश्चात् गोविन्द गिरि द्वारा रखी गई अधिकतर मागों को सम्पूर्ण आदिवासी क्षेत्रों (मेवाड़ सहित) मे आशिक तौर पर मानकर लागू कर दिया। इतना ही नहीं सबसे बड़ी बात तो यह थी कि सदियों पुराने अधकार से निकलकर भील आदिवासियो ने नए सवेरे की रोशनी में आखें खोलीं।

संदर्भ

1 राष्ट्रीय अभिलेखागार फारेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट इन्टरनल–ए प्रोसीडिग्स अप्रेल 1961 न 38–47
2 वही प्रोसीडिग्स अगस्त 1914 न 18–22
3 वही प्रोसीडिग्स मार्च 1914 न 8–67
4 वही प्रोसीडिग्स अप्रेल 1916 न 38–47
5 वही प्रोसीडिग्स मार्च 1914 न 8–67 पृ 29
6 वही
7 वही, इन्टरनल ए प्रोसीडिग्स अप्रेल 1916 न 38–47 पृ 11
8 वही एव शोध पत्रिका भाग–9 अक–2 1957 पृ 62
9 राष्ट्रीय अभिलेखागार फारेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट इन्टरनल–ए प्रोसीडिग्स अप्रेल 1961 न 38–47
10 वही
11 पत्र सख्या 3342 दिनाक आबू 17 दिसम्बर 1914
12 राष्ट्रीय अभिलेखागार फारेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट इन्टरनल–ए प्रोसीडिग्स मार्च 1914 न 8–67 पृ 33
13 वही पृ 33–34
14 वही पत्र सख्या 35–सी बी दिनाक 29 नवम्बर 1913
15 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट इन्टरनल–ए प्रोसीडिग्स अप्रेल 1916 न 38–48 लेटर न 3342 दिनाक आबू 7 सितम्बर 1914
16 वही
17 वही इन्टरनल–ए प्रोसीडिग्स मार्च 1914 न 8–67
18 वही इन्टरनल–ए प्रोसीडिग्स अप्रेल 1916 न 38–47
19 शोध पत्रिका पूर्वोक्त पृ 63
20 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट इन्टरनल–ए प्रोसीडिग्स अगस्त 1914 न 18–22 पृ 3–4
21 वही
22 वही होम डिपार्टमेन्ट पुलिस–बी प्रोसीडिग्स दिसम्बर 1913 न 108–22
23 वही इन्टरनल–ए प्रोसीडिग्स मार्च 1914 न 8–67
24 वही
25 वही इन्टरनल–ए प्रोसीडिग्स अप्रेल 1916 न 38–47 पृ 11–15
26 वही प्रोसीडिग्स मार्च 1914 न 8–67 पृ 41
27 वही पृ 39–40
28 वही पृ 41 पत्र दिनाक 17 नवम्बर 1913

29 वही
30 वही
31 वही, इन्टरनल ए प्रोसीडिंग्स अगस्त 1914 न 18–22 निर्णय की प्रति
32 वही

अध्याय – 4

मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में आदिवासी आन्दोलन

20वी सदी के प्रारम्भ में पृथक प्रकार के आदिवासी आन्दोलन दृष्टिगोचर होते हैं। इस सदी के पूर्वार्ध में अधिकाश आदिवासी आन्दोलन समाज सुधार के रूप मे उदित हुए जो कुछ समय पश्चात् राजनीतिक आर्थिक विद्रोहों में परिवर्तित हो गए। गोविन्द गिरि के नेतृत्व मे आदिवासी आन्दोलन इस प्रकार का एक शक्तिशाली आन्दोलन था। वैसे सीधे तौर पर गोविन्द गिरि व मोतीलाल तेजावत के बीच कोई तारतम्य नहीं था किन्तु मोतीलाल तेजावत का आन्दोलन गोविन्द गिरि द्वारा प्रतिपादित विचारों का विस्तार दिखाई देता है।

गोविन्द गिरि के नेतृत्व में आदिवासी आन्दोलन डूगरपुर, बासवाड़ा, सूथ एव ईडर के आदिवासियों तक ही सीमित था। उदयपुर व सिरोही राज्यों के अधिसख्यक भील व गिरासिया आदिवासी इस आन्दोलन से अलग ही रहे या यू कहें कि गोविन्द गिरि का प्रभाव उदयपुर व सिरोही राज्य के आदिवासियों में नगण्य ही रहा। गोविन्द गिरि के आन्दोलन को शक्तिपूर्वक कुचल दिया गया था किन्तु इसने गुजरात मध्य भारत व राजस्थान के भीलों को प्रभावित अवश्य किया था। अग्रेज अधिकारियों ने मेवाड व सिरोही राज्यों को भील आन्दोलन रोकने के लिए सतर्कता बरतने की सलाह दी थी। उन्होंने भीलों को सन्तुष्ट करने के लिए विशेष रूप से जगल कानूनों भू–राजस्व एव बेगार में सुधार करने का सुझाव दिया था। गोविन्द गिरि के आन्दोलन से सम्बन्धित अग्रेजी दस्तावेजों से स्पष्ट होता है कि भीलों सम्बन्धी सुधारों व छूटो का मुद्दा पत्र व्यवहार तक ही सीमित रहा वास्तव मे कुछ नही किया गया। भीलों की स्थितिया सुधार के स्थान पर बिगडती जा रही थी। उनका असतोष अनेक छोटे–छोटे आन्दोलनों के रूप में परिलक्षित होता है। सन् 1913–20 के मध्य अनेक भील आन्दोलन उत्पन्न हुए जिन्हे कुचल दिया गया था। ये आन्दोलन बिजौलिया किसान आन्दोलन से भी प्रभावित थे किन्तु अनेक कारणों से उसकी समाज पद्धति पर विकसित नहीं हो सके। वास्तव में ये आन्दोलन स्वस्फूर्त अलग–अलग व असगठित थे। स्वाभाविक तौर पर उपयुक्त नेतृत्व के अभाव में ये आन्दोलन गति नहीं पकड़ सके।

मेवाड़ में 19वीं सदी के भील विद्रोह मुख्य रूप से मगरा जिले में केन्द्रित थे जबकि अनेक जागीरों में रहने वाले भीलों को इनका कोई लाभ नहीं मिला था। अब गोविन्द गिरि

उदयपुर राज्य में मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में आन्दोलन ·

असहयोग आन्दोलन की जागृति के प्रभाव में 1921 में मेवाड़ व अन्य राज्यों के भीलों व गिरासियों ने मोती लाल तेजावत के नेतृत्व में आन्दोलन छेडा। मोतीलाल तेजावत उदयपुर राज्य के झाडोल ठिकाने के अन्तर्गत कोलियारी गाव का निवासी व ओसवाल बनिया जाति का था। उसने कुछ समय झाडोल ठिकाने के कामदार के रूप मे भी कार्य किया था। इसी दौरान वह इस ठिकाने के भीलों के सम्पर्क में आया। झाडोल के जागीरदार के साथ कुछ मतभेद हो जाने के कारण उसने ठिकाने की नौकरी छोडकर परचून का व्यवसाय आरम्भ किया। वह भील क्षेत्रों में घूम–घूमकर मिर्च मसाला आदि बेचता था तथा पोसीना ठिकाने में सामलिया नामक स्थान पर लगने वाले चित्रे–विचित्रे के मेले में नियमित रूप से दुकान लगाता था। अत अपने व्यापार के माध्यम से वह उदयपुर राज्य के भीलों के अत्यधिक निकट सम्पर्क में आया। वह भीलों के कष्टों से अत्यधिक द्रवित हुआ एव उसने उनके उत्थान हेतु कार्यक्रम आरम्भ किया। आरम्भ में उसने भीलों को समाज सुधार हेतु प्रेरित करते हुए निम्नलिखित निर्णय करवाए[2] –

1 शराब नहीं पी जायेगी।
2 कोई भी व्यक्ति अपने भाई की विधवा से बलात विवाह नहीं करेगा।
3 कोई भी महिला जिसका पति जीवित हो दूसरे पुरुष से विवाह नहीं करेगी।
4 अविवाहित महिला का अपहरण दण्डनीय अपराध होगा।
5 एक विधवा अपनी इच्छा पर पुनर्विवाह के लिए स्वतन्त्र है।
6 अविवाहित महिला के विवाह के अवसर पर कोई पैसा नहीं लिया जायेगा।
7 किसी महिला के अन्य पुरुष के साथ अवैध शारीरिक सम्बन्ध होने के अपराध में उसे जाति बाहर कर दिया जायेगा।
8 कोई भील पशुओं का मास नहीं खाएगा।
9 कोई भील चोरी नहीं करेगा।

मोतीलाल तेजावत की समाज सुधार की गतिविधियों ने उसे भीलों के मध्य काफी लोकप्रिय बना दिया था। इन उपदेशों के साथ उसने आदिवासियों का एकी आन्दोलन भी आरम्भ किया। एकी आन्दोलन का उद्देश्य राज्यों व जागीरदारों द्वारा किए जाने वाले भीलों के सभी प्रकार के शोषण के विरुद्ध सयुक्त रूप से विरोध करना था। भीलों को उसने यह भी बताया कि वे इस भूमि के असली स्वामी थे, किन्तु वर्तमान शासकों व उनके पूर्वजों ने भीलों को पददलित किया है। भीलों को यह भी सलाह दी गई कि वे राज्यों व जागीरदारों की कचहरियों (न्यायालयों) का बहिष्कार करें क्योंकि वे अन्याय पर स्थापित की गई है। इन विचारों व शिक्षाओं ने भीलों में नई चेतना का सचार किया। मोती लाल तेजावत की गतिविधिया तो झाडोल जागीर तक ही सीमित थी, किन्तु उनका प्रभाव अन्य भील क्षेत्रों में भी तीव्र गति से फैल रहा था। उसके बढते हुए प्रभाव से सत्ताधारियों का

चिन्तित होना स्वाभाविक था, अत सत्ताधारियो ने इसे एक चुनौती के रूप मे लेते हुए भीलो पर जुल्म करने के कठोरतम कदम उठाए। इसी दौरान तेजावत विजय सिंह पथिक अन्य नेताओ से मिला तथा उनके साथ विचार–विमर्श कर भीलो की समस्याओ के समाधान हेतु कार्यक्रम तैयार किया। वह असहयोग आन्दोलन से भारी प्रभावित था तथा वह भीलो का ऐसा ही आन्दोलन छेड़ना चाहता था। इस समय तक बिजौलिया किसान आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था जिसने तेजावत को भी उत्साहित किया तथा जब उसे बिजौलिया के नेताओ से समर्थन का आश्वासन मिल गया तो उसने अपने कार्यक्रम को अन्तिम रूप प्रदान किया। जुलाई 1921 में उसने भीलो का करबन्दी सहित असहयोग आन्दोलन आरम्भ कर दिया था।[3]

तेजावत द्वारा छेड़े गए आन्दोलन को भारी समर्थन मिला एव यह भीलो का एक शक्तिशाली आन्दोलन बन गया था। आन्दोलन के दौरान मोतीलाल तेजावत की गतिविधियों के सम्बन्ध में कोटडा के सहायक पॉलिटिकिल एजेन्ट ने लिखा था कि "मोतीलाल महात्मा गाँधी के अनुयायी हैं एव यह लागों से कहता है कि जब गाँधी सर्वोपरि बन जाएँगे तो उन्हें एक रुपए के स्थान पर एक आना कर देना होगा एव यदि वे उसका अनुसरण करने से इन्कार करेगे तो उनको कुचल दिया जाएगा।"[4] यह शरारतपूर्ण टिप्पणी भील आन्दोलन के भय से उपजी अग्रेजों की बैचेनी का सूचक है किन्तु यह एक सत्य भी है क्योकि तेजावत ने गाँधी के प्रभाव में यह आन्दोलन आरम्भ किया था। सर्वप्रथम झाडोल ठिकाने के भीलो में बेगार करना व कर देना बन्द कर दिया था। यह तेजावत की गतिविधियों का मुख्य केन्द्र था।

झाडोल का ठाकुर इस स्थिति से चिंतित हो गया था एव स्थिति को नियत्रण मे लाने के ध्येय से उसने 19 अगस्त, 1921 को मोतीलाल तेजावत को गिरफ्तार कर लिया।[5] तेजावत की गिरफ्तारी ने भीलो को और अधिक उत्तेजित कर दिया था। अपने नेता को मुक्त कराने के लिए हजारो भील एकत्रित हो गये। भीलों के भारी जमावडे ने तेजावत को मुक्त करने हेतु ठाकुर को बाध्य कर दिया था। इसके पश्चात् तेजावत ने अपना आन्दोलन और भी तीव्र कर दिया था। गाव–गाव मे ढोल पीटकर भीलो को कर न देने व सत्ताधारिया के साथ सहयोग न करने की सलाह दी जाने लगी। इसको भीलों का भारी समर्थन मिला तथा भीलों ने तेजावत के निर्णय के पालन हेतु शपथ ली। उन्होंने यह भी तय किया कि यदि कोई इनकी अवज्ञा करेगा तो उसे जाति बाहर कर अथवा अर्थदण्ड देकर दण्डित किया जाएगा।[6] ये निर्णय झाडोल जागीर के निवासी भीलो ने लिए थे। किन्तु भोमट के भील भी इन्हीं पद चिन्हो पर जा रहे थे। तेजावत ने भोमट क्षेत्र का दौरा किया तथा वहा तक अपनी गतिविधियो का विस्तार करने में सफल रहा। वहाँ भी यह अत्यधिक लोकप्रिय हो गया था। भीलो का ऐसा विश्वास था कि तेजावत गाँधी का धर्मदूत था। वे उसे भगवान का वरदान भी मानते थे तथा झुंड के झुंड भील उनसे मिलने अथवा उनके दर्शन करने आने लगे। भीलों ने उसके प्रति समर्पण दिखाते हुए उसके नेतृत्व मे

मरते दम तक सघर्ष करने की शपथ ली। भीलों ने उसका ईमानदारी से अनुसरण किया। भौमट के भीलों ने भी भू–राजस्व लाग–बाग अन्य कर एव बेगार देना बन्द कर दिया था। उन्होंने बिना अनुमति के वन उत्पादों का उपयोग भी आरम्भ कर दिया था। भील क्षेत्रों में उदयपुर राज्य का नियत्रण समाप्त हो गया था एव प्रशासन पूरी तरह पगु हो गया था। उदाहरणार्थ जब झाडोल जागीर के कारिन्दे राजस्व वसूल कर रहे थे तो मोती लाल तेजावत हजारों भीलों को लेकर वहाँ पहुँचा तथा राजस्व की एकत्रित राशि को जब्त कर लिया व कारिन्दो की पिटाई करते हुए उन्हें बन्धक बना लिया था।" वर्ष 1921 के अन्त तक पहाड़ा झाडोल मादरी जागीरों व सम्पूर्ण भौमट क्षेत्र के भील बगावत पर उतर आए थे। इस प्रकार मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में सम्पूर्ण उदयपुर राज्य के भीलों ने करबन्दी के साथ असहयोग आन्दोलन छेड दिया था।

महाराणा एव ब्रिटिश अधिकारी तेजावत के बढते हुए प्रभाव से अत्यधिक चिंतित थे। अत उदयपुर सरकार ने 31 दिसम्बर, 1921 को एक आदेश निकाला जिसके तहत भौमट के जागीरदारों को आदेश दिया गया कि वे अपने क्षेत्रों में 50 से अधिक लोगों की सभा सरकारी अनुमति के बिना नहीं होने दें। इसके साथ ही राज्य ने मोतीलाल तेजावत की गिरफ्तारी के लिए 500 रुपए का ईनाम घोषित किया।" राज्य ने यह भी घोषणा की कि यदि कोई उसे शरण या सहायता देगा तो वह दण्ड का पात्र होगा।"

उपरोक्त दमनात्मक कदम भील आन्दोलन को कुचलने में असफल रहे जिसके अनेक कारण थे। प्रथम मेवाड़ के खालसा एव जागीर क्षेत्रों के भीलों ने अपनी शिकायतों व माँगों के सन्दर्भ में सैंकडों माँग पत्र व शिकायत पत्र भेजे, किन्तु सत्ता पक्ष ने इन पर कोई कार्यवाही नहीं की। इसके विपरीत उन्होंने न्यायिक माँगों पर आधारित भील आन्दोलन को कुचलने की योजना बनाई। इसलिए माँगो को आशिक या पूर्ण रूप में माने बिना भीलो द्वारा यह आन्दोलन समाप्त करना अथवा वापस लेना सम्भव नहीं था। दूसरा भीलों के ये आन्दोलन असहयोग आन्दोलन के प्रभाव में थे जो इस समय अपने पूरे यौवन पर था। तीसरा, एकी आन्दोलन ने भीलो को सामाजिक व राजनीतिक रूप से सगठित कर दिया था कि दमनात्मक कदम उठाने के उपरान्त भी यह आन्दोलन भीलों की समस्याओ के समाधान के बिना टूटने वाला नहीं था। चौथा उदयपुर राज्य में बिजौलिया व अन्य स्थानों पर किसान आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर थे जो आदिवासी आन्दोलन की प्रेरणा का स्त्रोत बने हुए थे। विशेषकर बिजौलिया किसान आन्दोलन के साथ इस आदिवासी आन्दोलन का सीधा जुडाव था एव दोनों के मध्य आपसी सहयोग चल रहा था। जैसा कि विदित है कि तेजावत ने आदिवासी आन्दोलन आरम्भ करने के पूर्व पथिक से सम्पर्क किया था। अत दोनो आन्दोलनों पर कोई समझौता अथवा निर्णय हुए बिना आदिवासी आन्दोलन समाप्त होने वाला नहीं था।

दिसम्बर 1921 तक उदयपुर राज्य में किसान एव आदिवासी आन्दोलनों के

कारण एक विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो गई थी। इस स्थिति से निपटने के लिए अग्रेजों व उदयपुर राज्य ने विभिन्न दमनात्मक कदम उठाए। असल में इस समय तक उदयपुर के किसान व आदिवासी आन्दोलन अत्यधिक उग्र रूप धारण कर चुके थे, जिन्हें महज शक्ति से दबाना आसान कार्य नहीं था। अत भील आन्दोलनो के बढते हुए प्रभाव को देखते हुए ब्रिटिश अधिकारियों ने 1 जनवरी, 1922 को भीलों को कुछ छूट देने का निर्णय लिया एव तदनुसार जागीरदारों को सलाह दी गई थी।[10] आन्दोलन के परिणाम स्वरूप राज्य का यह निर्णय समर्पण का सूचक था, जिसने भीलों की इच्छा शक्ति को और अधिक बढ़ा दिया था।

उपरोक्त उपाय स्थिति को नियत्रण में नहीं ला सके क्योंकि अग्रेजो द्वारा घोषित छूटें उनकी समस्याओं के सन्दर्भ में तुच्छ थी। इस समय तक भील आन्दोलन इतना सुदृढ जनाधार प्राप्त कर चुका था कि उसे छोटा लालच देकर समाप्त नहीं किया जा सकता था। अत भीलों का आन्दोलन निरन्तर रूप से जारी रहा। जनवरी, 1922 में मोतीलाल तेजावत ने सिरोही राज्य में प्रवेश किया जहाँ भारी सख्या में भील व गिरासिया आदिवासी रहते थे। वे उदयपुर के आन्दोलन से भारी प्रभावित थे एव सिरोही में ऐसा ही आन्दोलन छेड़ना चाहते थे। वास्तव में मोतीलाल तेजावत उदयपुर राज्य के भय से उदयपुर से भागकर सिरोही नहीं गया था बल्कि उसे सिरोही के भीलों व गिरासियों ने अपने मार्गदर्शन हेतु आमन्त्रित किया था। इस समय तक उसे यह भी पूरा भरोसा हो गया था कि उदयपुर में उसके अनुयायी उसकी अनुपस्थिति में आन्दोलन चलाने में सक्षम थे।

जनवरी–अप्रेल, 1922 के दौरान उदयपुर राज्य व अग्रेज अधिकारियों ने भीलों को भू–राजस्व, बेगार, लाग–बाग एव अन्य करों के मामले में अनेक छूटों की घोषणा की जो भीलों को स्वीकार्य नहीं थी। भील विभिन्न बहानों से कर देने से इन्कार करते रहे व राज्य आदेशों की भी अवहेलना करते रहे। राज्य द्वारा घोषित सुविधाओं को अस्वीकार करने का एक अन्य कारण मोती लाल तेजावत के साथ सरकारी दुर्व्यवहार भी था। मार्च, 1922 में मोतीलाल तेजावत ने गुजरात के ईडर राज्य में प्रवेश किया। जब मोतीलाल तेजावत अपने 2000 अनुयायियों के साथ ईडर राज्य के अन्तर्गत पोल में रूका हुआ था तो 7 मार्च, 1922 को मेजर सटन की कमाण्ड में मेवाड़ भील कॉर्पस ने उन्हें घेर लिया तथा उनके ऊपर गोलिया दागी। सरकारी स्त्रोतों में उल्लेख मिलता है कि इस गोलाबारी में तेजावत के 22 अनुयायी मारे गए तथा 29 घायल हुए।[11] इस घटना ने भीलों को अपना आन्दोलन शान्त करने के स्थान पर और अधिक तीव्र करने पर बाध्य किया। पुन जून, 1922 में भौमट के जागीरदारों व गमेतियों के मध्य एक नया समझौता हुआ। किन्तु यह समझौता भी इस आन्दोलन को समाप्त करवाने में सफल नहीं हुआ क्योंकि इसकी कार्यान्विति को लेकर अनेक विवाद उत्पन्न हो गए थे। इस प्रकार उदयपुर राज्य का भील आन्दोलन 1929 में तेजावत की गिरफ्तारी के बाद ही हुआ।

सिरोही में मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में आन्दोलन :

सिरोही राज्य मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में आदिवासी आन्दोलन का दूसरा महत्त्वपूर्ण केन्द्र बना। सिरोही राज्य में भी आदिवासियों की जीवन दशाएँ मेवाड राज्य के भीलों के समान ही थी। सन् 1922 में तेजावत ने सिरोही राज्य के आदिवासियों में प्रवेश किया। यहाँ भी उसने उदयपुर के भीलों की पद्धति पर गिरासिया आदिवासियों में समाज सुधार के कार्य आरम्भ किए। उसने गिरासियों के उत्थान हेतु समाज सुधार के साथ–साथ एक आर्थिक सघर्ष भी आरम्भ किया। जनवरी, 1922 में तेजावत ने भ्रमण करते हुए भीलों व गिरासियों की अनेक सभाएँ की तथा उन्हें कर बन्दी व राज्य के साथ असहयोग हेतु खुला आह्वान दिया। सिरोही के आदिवासियों ने तेजावत के सन्देश का ईमानदारी से अनुसरण किया। जनवरी, 1922 के अन्तिम सप्ताह में आदिवासियों द्वारा लूट व राज्य कर्मचारियों के साथ उनके दुर्व्यवहार की अनेक घटनाएँ घटीं। यहाँ आदिवासी हिसा पर उतारु हो गए थे। इस समय राष्ट्रीय नेता मदनमोहन मालवीय का पुत्र रमाकान्त मालवीय सिरोही राज्य का दीवान था। उसने आदिवासी आन्दोलन को नियन्त्रित करने के लिए अपने पिता के नाम का भी उपयोग किया। सम्भवत वह आदिवासियों के प्रति उदारता भी रखता हो किन्तु यह उसके वर्गहित के विपरीत था। रमाकान्त मालवीय ने मामले को निपटाने के लिए महात्मा गाँधी व विजय सिह पथिक तक अपनी इच्छा व्यक्त की।[12] विजय सिह पथिक ने इस मामले में कोई भी मदद करने से स्पष्ट इन्कार कर दिया था, जबकि गाँधीजी ने रमाकान्त मालवीय की भारी सहायता की।

यहाँ गाँधीजी की भूमिका का विश्लेषण प्रासगिक होगा क्योंकि गाँधीजी इस समय भारत के स्वतन्त्रता सग्राम के निर्विवाद नायक थे। असल में गाँधीजी देशी रियासतों में किसी भी प्रकार के आन्दोलन के पक्ष में नहीं थे जबकि इन रिसासतों के निवासी अग्रेजों देशी रियासतों व जागीरदारों की तिहरी प्रशासनिक पद्धति के भार से त्रस्त थे। अखिल भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस द्वारा छेड़े गए राष्ट्रव्यापी असहयोग आन्दोलन के प्रभाव से उत्पन्न राजस्थान के किसान व आदिवासी आन्दोलनों का समर्थन भी काग्रेस नहीं कर सकी थी। इतना ही नहीं बल्कि काग्रेस ने 1920 के नागपुर अधिवेशन में देशी रियासतों के मामलों में हस्तक्षेप न करने का निर्णय लिया था। गाँधीजी काग्रेस के इस निर्णय को अपने काल्पनिक तर्क से जायज ठहराते थे, जो तर्क से बहुत परे थे। उनकी मान्यता थी कि "मैं ऐसा विश्वास रखता हूँ कि यह एक स्वीकार्य सिद्धान्त है कि काग्रेस भारतीय रियासतों में न कोई सत्याग्रह चलाए अथवा न तो चलाने की सलाह दे। केवल यही सही है। काग्रेस का उद्देश्य ब्रिटिश भारत का स्वराज है। यदि, यह अन्य क्षेत्रों के सत्याग्रह से अपने को जोड़ती है, तो यह आत्मधारित सीमाओं का उल्लघन होगा। जब काग्रेस अपनी लडाई जीत लेगी तो रियासतों की समस्याएँ स्वत ही हल हो जाएँगी। यदि दूसरी और लोग किसी भारतीय राज्य में स्वराज प्राप्त कर लेते हैं तो उसका ब्रिटिश भारत पर अल्प प्रभाव ही पडेगा।" वास्तव में गाँधीजी राजाओं को सरल ह्रदय मनुष्य मानते थे। जबकि

वे कुछ शासको के अत्याचारो से अनभिज्ञ भी नही थे। स्वय गाँधीजी ने बाद मे 23 मार्च 1940 के हरिजन के अक मे लिखा था कि "जहा तक उनकी जनता का सम्बन्ध है राजाओ को उन पर असीमित नियत्रण प्राप्त है। वे उन्हे अपनी इच्छानुसार बन्दी बना सकते हैं एव यहाँ तक कि उनको मार भी सकते हैं।" वे आगे कहते हैं कि "किन्तु मैं उन्हे इसके लिए दोषी नहीं मानता। इन राज्यों के ये मामले ब्रिटिश व्यवस्था का परिणाम हैं।"[11] इसलिए उन्होने यह स्पष्ट कर दिया था कि अधिक से अधिक इन शासकों के तरीकों व उपायो की कटु आलोचना की जा सकती है।[12] उन्होने यह भी स्पष्ट तौर पर घोषणा की कि देशी शासक स्वतत्र भारत में अपने राज्यो को रख सकेगे।[13]

सम्भवत गाँधीजी की यह नीति स्थाई नही थी बल्कि यह उनकी सोची समझी रणनीति का एक हिस्सा थी क्योकि असहयोग आन्दोलन प्रथम राष्ट्रव्यापी जनसघर्ष था एव वे इस समय एक ओर काग्रेस की शक्ति रियासती मामलों मे नहीं लगाना चाहते थे तथा दूसरी ओर देशी नरेशो के साथ उलझना नहीं चाहते थे। गाँधीजी की यह भी समझ थी कि देशी नरेश अग्रेजों से पल्ला झाडकर काग्रेस के सहयोगी बन सकते हैं। अत उनके खिलाफ सघर्ष का समर्थन न कर उनका हृदय परिवर्तन किया जाए जबकि वास्तविकता यह थी कि देशी रियासते अपना स्वतत्र सामाजिक राजनीतिक अस्तित्व खो चुकी थी तथा पूरी तरह पराश्रित बन चुकी थी। अब उनका अस्तित्व अग्रेज स्वामियो की कृपा पर निर्भर था। अत अब वे अपने जीवन दाता को समाप्त करने की स्थिति में नहीं थे। इसी का परिणाम था कि वे 1947 में भारत स्वतत्र होने तक भारत में अग्रेजी सत्ता के पक्षधर बने रहे। 1938 में देशी रियासतों के जन आन्दोलनों के प्रति काग्रेस की नीति में परिवर्तन आया एव रियासतों के जन आन्दोलन के नेताओं को अपने–अपने राज्यो मे प्रजा मण्डलों की स्थापना कर उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु सघर्ष करने की सलाह दी।

सिरोही के आदिवासी आन्दोलन को असहयोग आन्दोलन का अग तो नहीं कह सकते, किन्तु यह असहयोग आन्दोलन द्वारा उपजी एक चेतना का परिणाम अवश्य था। सीधे तौर पर गाँधीजी का भी इससे कोई सम्बन्ध नहीं था, किन्तु मोतीलाल तेजावत आचार–विचार से गाँधीजी के अनुयायी थे। वह भी अपने आप को गाँधीजी का अनुयायी कहता था। आन्दोलन की बढती हुई शक्ति व लोकप्रियता के कारण राज्य का चिंतित होना स्वाभाविक था। अत इस आन्दोलन पर किसी भी प्रकार नियन्त्रण न कर पाने की स्थिति मे सिरोही के दीवान प० रमाकान्त मालवीय ने गाँधीजी को लिखा कि आपके नाम पर यहाँ बड़ा धोखा किया जा रहा है। आपके नाम पर मोतीलाल नाम का व्यक्ति सीधे सादे आदिवासियों को गुमराह कर रहा है । अत रमाकान्त मालवीय की विनती पर गाँधीजी ने एक वक्तव्य यग इण्डिया में छापा जो निम्नानुसार था – "मैंने सुना है कि उदयपुर निवासी मोती लाल पचोली नामक सज्जन अपने आपको मेरा शिष्य बताता है एव राजपूताना राज्यों के देहातियों को आत्म सयम और क्या नहीं का उपदेश देता है। ऐसी सूचनाएँ प्राप्त हो रही हैं कि वह अपने प्रशसकों की सशस्त्र भीड़ से घिरा रहता है एव जहाँ

कहीं जाता है वहाँ अपनी राजधानी स्थापित करता है। यह दिव्य शक्तियाँ रखने का दावा भी करता है। उसने अथवा उसके प्रशसकों ने कुछ विध्वन्सात्मक कार्य किया है ऐसी सूचनाएँ हैं। मैं चाहता हूँ कि लोग एक बार हमेशा के लिए समझ लें कि मेरा कोई शिष्य नहीं है। इस समय मेरा काग्रेस और खिलाफत कमेटी से पृथक कोई अस्तित्व नही है। मेरी सब गतिविधि इन दो सगठनो के सम्बन्ध में है। मेरे नाम पर कोई कार्य, ना ही कोई मेरे नाम का उपयोग करने के लिए मेरे द्वारा लिखित रूप मे अधिकृत किया गया है। ना ही किसी ने मेरे से लिखित में कार्य करने की अनुमति ली है काग्रेस अथवा खिलाफत के कार्य को छोड़कर मैंनें किसी को भी किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध हथियार यहाँ तक की एक छड़ी के उपयोग हेतु अधिकृत किया है।

मैं समझता हूँ कि इन बहादुर किन्तु सरल ग्रामीणो को कर भुगतान से इन्कार करने के लिए प्रेरित किया गया है। उनको यहाँ तक कहा गया है कि मैंनें सिरोही राज्य से सम्बन्धित करदाताओं को 1% रुपया प्रति व्यक्ति से अधिक नहीं देने को कहा है। मुझे अब इस मामले में कोई जानकारी नहीं है। किसी ने मुझसे इस मामले में सलाह भी नहीं ली है। राज्य का दीवान प0 रमाकान्त मालवीय इस मामले को मेरी जानकारी में लाया एव उसने मुझे कहा कि मेरे नाम पर भारी धोखा किया जा रहा है। यदि मेरा लेखन इन ग्रामीणों तक पहुँचता है तो मैं उनको कहना चाहता हूँ कि वे अपनी सभी समस्याएँ राज्य के अधिकारियो के समक्ष प्रस्तुत कर दें एव कभी हथियार न उठाएँ। यदि वे उस कर का भुगतान रोकना चाहते हैं जिसे वे अधिक समझते हैं यह उनका अधिकार है किन्तु मनमानी करना कभी अधिकार नहीं है। उन्हे अपने पक्ष में जनभावना उत्पन्न करनी चाहिए व अपने मामले को अच्छी तरह प्रचारित करना चाहिए। यदि वे ये सावधानियाँ नहीं बरतेंगे तो वे प्रत्येक चीज व प्रत्येक व्यक्ति को अपने विरुद्ध कर लेगे एव अन्त मे वे अपने आपको लुटा हुआ पाऐंगे।"[8]

गाँधीजी के उपरोक्त वक्तव्य से तेजावत के आन्दोलन को क्षति पहुँचने की सम्भावना उत्पन्न हो गई थी। भूलवश गाँधीजी ने एक पक्षीय वृतान्त के आधार पर अपना वक्तव्य दे डाला था। अत मोतीलाल तेजावत ने गाँधीजी को अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए एक पत्र लिखा कि मैंने भीलों मे सत्याग्रह आरम्भ किया था एव इससे राज्यो के अधिकारी अप्रसन्न हो गए थे ना तो इन राज्यों ने व न ही अग्रेज अधिकारियों ने उनकी विनती पर कोई ध्यान दिया।[9] गाँधीजी ने तेजावत के पत्र के पश्चात् इस मामले में जाच हेतु मणिलाल कोठारी को सिरोही भेजा। उसके जाँच प्रतिवेदन के पश्चात् गाँधीजी ने स्वय लिखा कि "इस मामले की जानकारी हेतु मेरे निवेदन पर मणिलाल कोठारी सिरोही व अन्य स्थानों पर गए। उससे प्राप्त प्रतिवेदन से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि श्री मोतीलाल तेजावत ने भीलों को शराब न पीने व मास भक्षण छोड़ने हेतु प्रेरित करने के लिए कार्य किया है। यह सन्देह के परे है कि उसकी गतिविधियों ने भीलों मे एक जागृति लाने का कार्य किया है। इनकी आलोचना का कोई आधार नहीं बनता। यदि वह अपने साथ

एक झुँड लेकर जगह–जगह घूमने के स्थान पर एक जगह रहे, वहाँ उससे भील मिल सकते हैं।"[18] गाँधीजी ने इस आन्दोलन के प्रति अपने सोच मे परिवर्तन अवश्य किया किन्तु प्रश्न यह उठता है कि जब उन्होने इसे सच्चा आन्दोलन माना तो इसका समर्थन क्यो नही किया? दूसरा जो गाँधीजी ने तेजावत को सलाह दी थी वह भी अधिक उपयुक्त नहीं थी क्योकि पूरी दुनिया मे ऐसा कोई समाज व धर्म सुधारक अथवा राजनीतिक नेता नही हुआ जो अपने कार्यक्रम को लेकर जनता के बीच जगह–जगह न घूमा हो।

सम्पूर्ण प्रकरण पर गाँधीजी के वक्तव्यो व विचारो के अवलोकन से यह बात स्पष्ट होती है कि गाँधीजी भीलों मे समाज सुधार के पक्षधर तो थे किन्तु वे उनके राजनैतिक आर्थिक सघर्ष की ना तो अनुशषा करते थे, न ही अनुमोदन अथवा समर्थन करते थे। काफी जद्धोजहद के बाद भी गाँधीजी ने इस आन्दोलन का समर्थन नही किया। इस प्रकार रमाकान्त मालवीय काफी सीमा तक अपने कुत्सित कार्य मे सफल रहा। दूसरी ओर तेजावत गाँधीजी व भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का समर्थन जुटाने में असफल रहा।

सिरोही मे आदिवासी आन्दोलन का दमन :

महात्मा गाँधी ने मणि लाल कोठारी को तेजावत के पास यह समझाने भेजा कि वह हिसात्मक आन्दोलन को वापस ले।[19] ये सभी प्रयास विफल गए क्योकि भील एव गिरासियो को कुछ छूट दिए बिना उनको सन्तुष्ट करना सम्भव नहीं था। अग्रेजो की सलाह पर राज्यो ने इस आन्दोलन को सैनिक शक्ति से कुचलने का निर्णय लिया। 7 मार्च 1922 को ईडर राज्य के अन्तर्गत पोल की सैनिक कार्यवाही इस दिशा मे पहला दमनात्मक कदम था। असल मे 11 फरवरी, 1922 को काग्रेस ने असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया था तथा ब्रिटिश अधिकारियो ने सम्पूर्ण भारत में किसान व आदिवासी आन्दोलना को शक्तिपूर्वक कुचलने की नीति बनाई। वैसे ये आन्दोलन काग्रेस ने आरम्भ नहीं किए थे, किन्तु ये असहयोग आन्दोलन के प्रभाव मे खडे हुए थे। असहयोग आन्दोलन को वापस लेने के पश्चात् दलित जनता के आन्दोलन नैतिक समर्थन खो चुके थे। रमाकान्त मालवीय ने गाँधी, पथिक व राजस्थान सेवा सघ के नेताओ की सहायता से सिरोही के आदिवासी आन्दोलन को समाप्त करने के प्रयास किए थे, किन्तु अपने प्रयासों की असफलता से झुझलाकर गिरासियों के मुख्य गाँवो सियावा मे कर वसूली के लिए सेना भेजने का निर्णय लिया।[20] राज्य व अग्रेजों की सेना ने इस गाँव पर 12 अप्रेल, 1922 को आक्रमण कर दिया। इस सैनिक कार्यवाही मे अनेक गिरासियों की जानें गई तथा फौज ने उनके घर, अनाज व पशु जलाकर उनको भारी नुकसान पहुँचाया।[21] इसके पश्चात् भी सैनिक अभियान जारी रहा। 5 मई 1922 को सेना ने बलोरिया गाव पर आक्रमण किया तथा इस गाव का बहुत बड़ा भाग जला दिया व इसमें 11 आदिवासियों की जानें गयीं।[22] 6 मई को भूला एव नवावास नामक गाव को सैनिक आक्रमणों का शिकार होना पड़ा तथा इन गावों की अधिकाश झोंपड़ियो को जलाकर राख कर दिया गया था।[23]

उपरोक्त सैनिक कार्यवाहियों से स्पष्ट होता है कि आदिवासियों को आतकित करने के ध्येय से सैनिक आक्रमणों की शृखला आरम्भ की गई थी। राजस्थान सेवा सघ ने इन घटनाओं पर एक गम्भीर रुख अपनाया तथा रामनारायण चौधरी एव सत्य भक्त को इन घटनाओं की जाँच हेतु नियुक्त किया गया।[24] माणिक लाल वर्मा भी इनकी सहायता कर रहे थे। राजस्थान सेवा सघ ने इस घटना को प्रचारित किया तथा रामनारायण चौधरी और सत्य भक्त द्वारा तैयार किए प्रतिवेदन को समाचार पत्रों में छपवाया। इस सम्पूर्ण घटना पर प्रकाश डालते हुए रामनारायण चौधरी ने लिखा है[25] –

"इस बीच में भीलों का मामला बहुत गम्भीर हो चुका था। महामना मदनमोहन मालवीय जी के सुपुत्र प0 रमाकान्त मालवीय सिरोही के दीवान थे। तेजावत जी के बुलावे पर मालवीय जी के साथ पथिक जी भील क्षेत्र में हो आए थे। वहाँ उनका फौजी और शाही ढग से स्वागत हुआ। लेकिन उनके लौट आने के बाद स्थिति बिगड़ गई। रियासतें कुछ असली चीज देना नहीं चाहती थी। राजपूताना एजेन्सी का रुख कड़ा था। भील भूखे और भड़के हुए थे। कार्यकर्ता थोड़े थे। नेताओं का निकट सम्पर्क नहीं था। हालत न सम्भलने पाई। सिरोही में दो तीन जगह गोलिया चल गई। माणिक्यलाल जी तो भीलों को आश्वासन और मार्गदर्शन के लिए पहले ही भेज दिए गए थे। अब मुझे और सत्यभक्त जी को जाच और राहत कार्य के लिए नियुक्त किया गया। इस अवसर पर राजपूताना की अग्रेज एजेन्सी ने बड़ी बेरहमी और झूठ से काम लिया। एक तरफ उसके अफसरों की मातहती में सेना ने नृशस अत्याचार किए तो दूसरी तरफ कष्ट निवारण के काम की भी मनाई कर दी गई। दलील यह दी गई कि यह काम रियासत की तरफ से हो रहा है और कष्ट पीड़ित जनता बाहर वालों की मदद नहीं चाहती। इसके विरुद्ध हमारे पास तारों पत्रों और सन्देश वाहकों के द्वारा सहायता की माग आ रही थी इसलिए हम दोनों पिडवाडा स्टेशन पर उतर कर वहाँ के सहृदय स्टेशन मास्टर की मदद से रातों रात माणिक्य लाल जी के पास पहुँच गए। सलाह मशविरे के बाद सुबह होते ही दो मार्गदर्शकों को साथ ले उन स्थानों पर पहुँचे जहाँ फौजी कार्यवाही की गई थी। इस हत्याकाड का कोप भूला और वालोलिया नामक गावों पर खास तौर पर हुआ था। पचासों भील मशीनगन के शिकार हुए थे। सैंकड़ों घर जला कर खाक कर दिए गए थे और दरिद्रता के साक्षात अवतारों का क्षुद्र अन्न भडार या तो लूट लिया गया था या आग के हवाले कर दिया गया था। हम लोग हत्याकाड के चौथे पाचवे दिन मौके पर पहुँचे थे मगर अनाज की कोठिया अभी तक जल रही थी।

भील गिरासियों का कसूर यही था कि उन्होंने शराब छोड दी थी और राज्य व साहूकारों के अत्याचारों से राहत पाने की कोशिश की थी। उनकी मुख्य माँग इतनी सी थी कि बढा हुआ लगान घटाकर पहले की तरह हल्का कर दिया जाए बैगार और लाग बन्द कर दी जाए और बोहरों के कर्ज से राहत दी जाए। हम दोनो शाम तक कोई बीस मील धूप में भूखे प्यासे तपते हुए पहाड़ों में भटके होगे परन्तु हमे यह कष्ट कुछ भी नहीं

अखरा, क्योकि हमे यह सन्तोष था कि हम अपने पीडित और नि सहाय भाइयो को कुछ आश्वासन दे सकेगे और उन पर गुजरे हुए जुल्मो को दुनिया भर मे प्रकट करके भविष्य के लिए उनकी कुछ रोक कर सकेगे। आतक तो काफी छाया हुआ था। फिर भी सैंकडो स्त्री–पुरुष हम से मिले ओर हम काफी सामग्री इकट्ठी करने मे सफल हुए। आधी रात तक हमने पीडितो के बयान लिए और फिर बाटिया व बकरी का दूध खाकर रोहीडा स्टेशन पर आ सोऐ। दूसरे दिन अजमेर पहुँचे। जब हमारा बयान अखबारो मे निकला तो नौकरशाही के कान खडे हो गए। उन्हे गुस्सा भी आया और ताज्जुब भी हुआ कि उनके कड़े घेरे को भेद कर हम घटनास्थल पर कैसे पहुँच गए और आतकपूर्ण वातावरण म भी उनकी दृष्टि से खतरनाक सामग्री जुटा लाए। जब हमारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई तो सरकार और रियासत भी भिन्नाई।"

उपरोक्त वृतान्त सिरोही राज्य व अग्रेजो द्वारा निर्दोष आदिवासियो के दमन की जीवन्त कहानी कहता है। राजस्थान सेवा सघ के प्रयासो से यह मामला ब्रिटिश ससद तक मे उठा किन्तु भीलो की राहत हेतु उसने भी कुछ नही किया। सिरोही राज्य व अग्रेजी सेना की सयुक्त कार्यवाहियो ने भीलो व गिरासियो का मनोबल तोड दिया था। ऐसी स्थिति में भूला नयावास, वलोरिया व अन्य प्रभावित गावो के आदिवासी मुखिया सिरोही के दीवान व पॉलिटिकल ऑफिसर से 11 व 12 मई 1922 को मिले एव एकी की शपथ तोड़ने हेतु सहमति व्यक्त की। इन अधिकारियो के समक्ष आदिवासी मुखियाओं ने एकी आन्दोलन की निन्दा करते हुए इससे अपने आपको अलग घोषित किया।" इस प्रकार सिरोही के आदिवासी आन्दोलन को सत्ता पक्ष द्वारा कुचल दिया गया। अधिकारियों की मान्यता थी कि आदिवासियो ने एकी आन्दोलन को किसी राजनीति के तहत स्थगित कर दिया है एव इस आन्दोलन के पुर्नजीवित होने की पूर्ण सम्भावना है। अत दीवान व अधिकारियों ने सिरोही के शासक को सुझाव दिया कि आदिवासियों को कुछ छूट व सहूलियत देकर ही पूर्णत शान्ति स्थापित की जा सकती है। 23 मई, 1922 को सिरोही के शासक ने निम्नलिखित छूटों की घोषणा की" –

1 आन्दोलनकारियों को आम माफी प्रदान की गई।
2 जिन लोगों के घर जल गए थे, उन्हे तात्कालिक फसल पर राजकीय कर से मुक्ति प्रदान की गई तथा खरीफ की फसल की बकाया अल्प राशि को भी छोड़ दिया गया।
3 अपनी झोंपडियाँ पुन बनाने के लिए जगल से घास और लकड़ी लाने की अनुमति प्रदान की गई।
4 भूला व नवावास आदि गावो के मामले में राज के राजस्व को फसल के 1/6 भाग के स्थान पर 8 रुपए प्रति हल के रूप में परिवर्तित कर दिया गया तथा वलोरिया आदि गावो का राजस्व फसल के 1/7 हिस्से के स्थान पर 7 रुपए प्रति हल कर दिया गया।

5 सैनिक कार्यवाही में मारे गए लोगो के अल्प वयस्क पुत्रों से खरीफ की फसल पर राजस्व न वसूल करने का निर्णय हुआ। यह राजस्व मुक्ति तब तक रहेगी जब तक ये अल्प वयस्क बच्चे बडे होकर स्वय खेती करना आरम्भ न कर दे।
6 वृद्ध विधवाएँ जिनके पास गुजारे की पर्याप्त व्यवस्था न हो व वे अन्य लोगों से सहायता माग कर भूमि के छोटे टुकड़े पर खेती करती हों उनको राजस्व के भुगतान से मुक्त कर दिया गया।
7 जो किसान किराए पर हल लेते हों वे आधी दर पर राजस्व देगे।
8 खरीफ की फसल पर पृथक से ली जाने वाली सुखड़ी लाग समाप्त कर दी गई।
9 दशहरा लाग के रुप मे गावों द्वारा दिए जाने वाले बकरे की अनिवार्यता समाप्त कर इसे स्वैच्छिक कर दिया गया।
10 राजस्व के नकदी मे परिवर्तित हो जाने के कारण इन गावों मे पटवारी का पद समाप्त कर दिया गया।
11 अपने गावों की सीमा के बाहर से सिर पर लकडी लाने पर कर समाप्त कर दिया गया।
12 हल बनाने के लिए जगल से लकडी लाने पर प्रतिबन्ध हटा दिया गया।
13 किसानों को अब तक की रवि की फसल पर राज्य का हिस्सा देने की अनुमति प्रदान की गई तथा इसी प्रकार खरीफ की फसल पर भी राज्य का हिस्सा अदा करने की अनुमति भी दी गई।
14 पशु चोरी के मामलों की जाच हेतु चार सदस्यीय समिति के गठन का प्रावधान रखा गया जिसमे एक भील एक गिरासिया एक महाजन व एक ब्राह्मण को रखे जाना तय किया गया।
15 किसानों के झूठे आरोपो पर आधारित उत्पीड़न को रोकने के उद्देश्य से निर्धारित प्रपत्रो में लिखित रिकार्ड रखने व तहसीलदार द्वारा इसके नियमित जाँच की विशेष प्रक्रिया आरम्भ की गई।

सेना प्रभावित क्षेत्रो मे दी गई उपरोक्त छूटे सिरोही राज्य के अन्य क्षेत्रो तक जहाँ अधिक सख्या में आदिवासी रहते थे भी पहुँचाई गई। वैसे दी गई इन रियायतो का महत्त्व तो अधिक नहीं था क्योंकि इनमें बेगार लाग–बाग व जगल कानून को छुआ तक नहीं था।[28] किन्तु यह टूटे हुए आदिवासियों की मजबूरी थी कि उन्हें ये अल्प छूटें स्वीकार करनी पड़ी। मोतीलाल तेजावत ने 1923 के आरम्भ में पुन एकी आन्दोलन आरम्भ करने का प्रयास किया, किन्तु उन्हे सफलता नहीं मिली। फिर भी सिरोही राज्य मे भाखर साथपुर, पिन्डवाडा आदि परगनों मे अशान्ति बनी रही। सन् 1927 मे जाकर आदिवासी पचों ने सिरोही राज्य के अधिकारियों के साथ समझौता किया। तत्पश्चात् इन परगनों में शान्ति स्थापित की जा सकी। मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में आरम्भ हुआ सिरोही का आदिवासी आन्दोलन सही अर्थों में 1929 में तेजावत की गिरफ्तारी के पश्चात् ही समाप्त हुआ।

उदयपुर व सिरोही राज्यो के भील व गिरासिया 1921–29 के मध्य मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व मे अशान्त बने रहे। राज्यो जागीरदारो व अग्रेजो ने अशिक्षित व भोले आदिवासियो पर सभी प्रकार के अत्याचार किए। इसी क्रम में सैनिक कार्यवाहियो की एक श्रृंखला आरम्भ की गई थी जिसने आदिवासियों का मनोबल तोड़ दिया था। जनवरी, 1924 के पश्चात् तेजावत भूमिगत हो गए थे क्योकि उनकी गिरफ्तारी पर उदयपुर, सिरोही व ईडर राज्यो ने पुरस्कार घोषित कर दिए। अधिकारियो की यह स्पष्ट मान्यता थी कि जब तक तेजावत को नही पेश जाएगा तब तक आदिवासी आन्दोलन शान्त नहीं हो सकता। 3 जून 1929 को ईडर राज्य की पुलिस ने खेडब्रह्म नामक गाव मे तेजावत को गिरफ्तार कर लिया।[29] ईडर पुलिस ने उसे उदयपुर राज्य को सौप दिया जहाँ उनके विरुद्ध अपराधिक मुकदमा चलाया गया। सन् 1936 तक इसमे कोई अन्तिम निर्णय नहीं हुआ तथा तेजावत को जेल में ही रखा गया। उसे 3 अप्रेल 1936 को जेल से इस शर्त पर रिहा किया गया कि वह कोई आन्दोलनात्मक कार्य नहीं करेगा तथा उदयपुर राज्य की अनुमति के बिना उदयपुर शहर से बाहर नहीं निकलेगा।[30] उदयपुर राज्य ने उसके गुजारे के लिए 30 रुपए प्रतिमाह का भत्ता स्वीकृत किया।[31] पुन उसे जनवरी, 1945 में बन्दी बना लिया गया था, जब उसने भौमट क्षेत्र मे प्रवेश करने की कोशिश की तथा उसे फरवरी, 1947 मे जेल से रिहा किया गया।

मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व मे आदिवासी आन्दोलन ने प्रमुखता प्राप्त की जो इसके क्रान्तिकारी स्वरूप का परिणाम थी। यह आन्दोलन असहयोग आन्दोलन के प्रभाव मे खडा हुआ था, किन्तु यह उसकी तुलना में अत्यधिक उग्र आन्दोलन सिद्ध हुआ। अपने वर्गीय चरित्र के कारण अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस आन्दोलन को नहीं अपनाया। यह आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन में समाहित नहीं हो सका, किन्तु इसने राष्ट्रीय उद्देश्य को शक्तिशाली बनाया। इस आन्दोलन ने अशिक्षित व अन्धकार में डूबे आदिवासियो को चेतन किया जिससे वे युगो पुराने बन्धनों को तोड़ सके। इन आन्दोलनों के माध्यम से आदिवासी समाज अपने आपको आधुनिक युग की रोशनी में आने मे सफल रहा। ये आन्दोलन राजस्थान की सामन्ती व्यवस्था पर गहरा प्रहार कर सके तथा सामाजिक विकास का आधार बने। इन्होने राजस्थान में स्वतत्रता आन्दोलन का आधार तैयार कर इसका मार्ग प्रशस्त किया। जब 1938 के पश्चात् प्रजामण्डल आन्दोलन अस्तित्व में आया तो जागरूक आदिवासी इन सगठनों में सम्मिलित हुए तथा प्रजामण्डल अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने में सफल रहे।

संदर्भ

1 राजस्थान राज्य अभिलेखागार उदयपुर रेजीडेन्सी रिकार्ड फाइल न० 19 बस्ता न० 60 1917
2 राष्ट्रीय अभिलेखागार फौरन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमैन्ट फाइल न० 428 पी (सीक्रेट) 1923
3 राजस्थान राज्य अभिलेखागार उदयपुर रेजीडेन्सी (जागीर रिकॉर्ड्स) फाइल न० 91 बस्ता न० 65

4 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 428 पी (सीक्रेट) 1923
5 राजस्थान राज्य अभिलेखागार उदयपुर रेजीडेन्सी (जागीर रिकार्डस) फाइल न0 91 बस्ता न0 65
6 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 428 पी0 (सीक्रेट) 1923
7 वही
8 राजस्थान राज्य अभिलेखागार उदयपुर रेजीडेन्सी (जागीर रिकार्डस) फाइल न0 87 बस्ता न0 65
9 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 428 पी0 (सीक्रेट) 1923
10 राजस्थान राज्य अभिलेखागार उदयपुर रेजीडेन्सी (जागीर रिकार्डस) फाइल न0 87 बस्ता न0 65 1921–22
11 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 428 पी0 (सीक्रेट) 1923
12 शकर सहाय सक्सैना एव पद्मजा शर्मा पूर्वोक्त पृ0 199–200
13 कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी जिल्द 23 पृ0 471
14 वही जिल्द 21 पृ0 444
15 वही
16 यग इण्डिया 2 फरवरी, 1922
17 कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी जिल्द 22 पृ0 477
18 वही पृ0 476
19 शकर सहाय सक्सैना एव पद्मजा शर्मा पूर्वोक्त पृ0 199–200
20 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 428 पी0 (सीक्रेट) 1923
21 रामनारायण चौधरी आधुनिक राजस्थान का उत्थान अजमेर 1974 पृ0 71–72
22 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 428 पी0 (सीक्रेट) 1923
23 वही
24 रामनारायण चौधरी आधुनिक राजस्थान का उत्थान पृ0 71–73
25 रामनारायण चौधरी बीसवीं सदी का राजस्थान कृष्णा ब्रदर्स अजमेर पृ0 74–75
26 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 428 पी0 (सीक्रेट) 1923
27 वही
28 आदिवासियों के मूल मुद्दे अनिर्णित ही रहे। सन् 1938 मे मेवाड़ प्रजामण्डल ने इन मुद्दों को प्रमुख स्थान दिया। सन् 1939 में सिरोही राज्य प्रजामण्डल की स्थापना के आरम्भ से ही बेगार लाग–बाग आदिवासियों के जगल अधिकार व अवैध करों का मुद्दा प्रमुखता से उठाया गया था। अत इन मुद्दों के कारण आदिवासी प्रजामण्डल आन्दोलनों के समर्थन में बडे उत्साहपूर्वक आए थे
29 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 428 पी0 (सीक्रेट) 1923
30 राजस्थान राज्य अभिलेखागार उदयपुर कान्फिडेशियल रिकार्डस फाइल न0 40 बस्ता न0 4
31 वही

अध्याय–5

मारवाड़ के किसान आन्दोलन

मारवाड राजस्थान का सबसे बडा राज्य था जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण राजस्थान का 26 प्रतिशत भू–भाग था। मारवाड राज्य की राजधानी जोधपुर शहर थी इसलिए इसे जोधपुर के नाम से भी जाना जाता था। इस राज्य मे सामन्तवाद अत्यधिक मजबूत था जैसा कि जोधपुर राज्य का 87 प्रतिशत भाग जागीरो के अन्तर्गत था। केवल मात्र 13 प्रतिशत भाग ही राज्य के सीधे नियं , मे था। जहा भू–राजस्व प्रशासन के कुछ नियम अस्तित्व मे थे। जैसा कि सर्वविदित है कि जागीर क्षेत्रो म सभी मामलों में जागीरदार की इच्छा ही सर्वोपरि होती थी। अत जागीर क्षेत्रों मे किसानो की स्थिति जागीरदार की इच्छा पर निर्भर किराएदार से अधिक नहीं थी। जागीरदारो के हाथो किसानों का गाढा शोषण व उत्पीड़न होता था तथा इनसे न्याय पाना भी आसान नहीं था क्योंकि जोधपुर राज्य के अधिकाश जागीरदारों को न्यायिक शक्तिया प्राप्त थी। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय एव स्थानीय घटनाओं के प्रभाव में मारवाड के किसान 1922 में सामन्ती शोषण के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे। इन घटनाओं मे मुख्य तौर पर प्रथम विश्व युद्ध, रूस की बोलशेविक क्रान्ति, असहयोग एव खिलाफत आन्दोलन, बिजौलिया किसान आन्दोलन, मोती लाल तेजावत के नेतृत्व में मेवाड़ व सिरोही के आदिवासी आन्दोलन इत्यादि सम्मिलित थे, जिनके प्रभाव में मारवाड के किसान उठ खड़े हुए थे। किसानों की दशाएँ अत्यधिक दयनीय थी एव उन स्थितियों से उभरने का कोई रास्ता नही मिल रहा था। वे सामन्तवादी व साम्राज्यवादी भार को अपना भाग्य समझकर ढो रहे थे। किसान क्रमश अग्रेज, महाराजा व जागीरदारों के तिहरे शोषण का शिकार थे। जब जोधपुर के किसानों में जागृति उत्पन्न हुई तो वहाँ के किसानों ने विभिन्न सगठनो के माध्यम से व व्यक्तिगत तौर पर अधिकारियों के समक्ष भारी सख्या में शिकायतें और माँगें प्रस्तुत की। उनकी मुख्य समस्याएँ अन्य राज्यों की तरह भारी भू–राजस्व भूमि अधिकारों की अनिश्चितता भारी सख्या में लाग–बाग, पशु कर, बेगार सीमा शुल्क इत्यादि से सबधित थी।

मारवाड में जन चेतना का इतिहास 1915 से आरम्भ होता है। जब यहा मरुधर मित्र हितकारिणी सभा नामक प्रथम राजनीतिक सगठन की स्थापना हुई थी। इस सगठन का उद्देश्य मारवाड़ की जनता के सामाजिक व आर्थिक हितो की सुरक्षा करना था। यह सगठन अधिक प्रभावी नहीं हो सका क्योंकि इसकी गतिविधियाँ मुख्य रूप से जोधपुर शहर तक ही सीमित थी किन्तु फिर भी जनचेतना के मामले में इस सगठन का महत्व कम करके नहीं आका जा सकता क्योंकि एक घोर सामन्ती राज्य में ऐसा सगठन बनना ही

अपने आप में महत्वपूर्ण था। इसके पश्चात 1921 मे मारवाड सेवा सघ नामक दूसरा राजनीतिक सगठन स्थापित हुआ जिसका कार्यक्षेत्र अधिक विस्तृत था। यह सगठन 1920 में स्थापित राजस्थान सेवा सघ की तर्ज पर स्थापित हुआ था। मारवाड सेवा सघ का उद्देश्य कुशासन, भ्रष्ट नौकरशाही एव अराजकता का विरोध करना तथा मारवाड के सभी समुदाय के लोगों में चेतना जागृत करना था। इसी समय बिजौलिया का किसान आन्दोलन अपनी प्रगति की चरम सीमा पर था एव राजस्थान के पडौसी सभी राज्य इस प्रकार के आन्दोलनों पर नियत्रण रखने की दिशा में जागरुक थे। इस समय असहयोग आन्दोलन के फैलने का भय भी स्वाभाविक था एव मारवाड सेवा सघ को भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की एक शाखा माना जा रहा था। अत इस नवीन सगठन ने जोधपुर पुलिस को चौकन्ना कर दिया था। राज्य पुलिस के महानिरीक्षक ने इस सगठन की गतिविधियों को कुचलने की अनुशसा की तथा इसके नेता जयनारायण व्यास के विरुद्ध राजद्रोह अधिनियम के तहत मुकदमा दर्ज किया।[1] पुलिस के इन प्रयासो ने इस सगठन को अप्रभावी बना दिया था। यह सगठन भी अधिक लोगों को आकर्षित कर सदस्य बनाने में असफल रहा, क्योंकि प्रारम्भ में यह सगठन शहर तक ही सीमित था एव जब इसका विस्तार सम्पूर्ण राज्य मे किए जाने का अवसर आया तो इस पर पुलिस पाबन्दिया लगा दी गई थी, किन्तु इन प्रारम्भिक गतिविधियो ने जनजागृति की दिशा में कुछ सीमा तक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इन्हीं से राज्य में राजनीतिक चेतना का वातावरण बनने लगा था। प्रारम्भिक गतिविधियो का नेतृत्व शहरी जागरूक मध्यम वर्ग के नेताओं के हाथ में था। प्रारम्भिक नेताओ को यह अनुभव हो गया था कि वे अपने सामजिक आधार को विस्तृत किए बिना अपने उद्देश्य की प्राप्ति नहीं कर सकते। प्रारम्भिक असफलताओ से नेतृत्व में निराशा भाव नहीं था एव इनका विस्तृत सामाजिक आधार वाले राजनीतिक सगठन की स्थापना हेतु प्रयास जारी रहा।

सन् 1922 में आदिवासी आन्दोलन के साथ मारवाड के जन आन्दोलन के क्षेत्र में नया अध्याय आरम्भ हुआ। मारवाड के आदिवासियों ने भी मोती लाल तेजावत द्वारा छेडे गए एकी आन्दोलन में भाग लिया था। मारवाड राज्य के बाली एव गोडवाड निजामतों के भील और गिरासियों ने 1922 में समाज सुधार गतिविधियों के साथ–साथ राज्य को राजस्व अदा न करने हेतु आन्दोलन किया।[2] राज्य के अशान्त क्षेत्रों में आन्दोलन के दमन हेतु सेना नियुक्त की। इन सैनिक प्रयासों से स्थिति नियत्रण मे आ सकी। भील एव गिरासिया एकी आन्दोलन से पृथक हो गए तथा उपयुक्त कर देने पर सहमत हो गए। आदिवासी पचों ने इस आशय का एक इकरारनामा भी किया।[3] इस आन्दोलन को विशेष महत्त्व दिया जाता है क्योंकि समाज का एक शोषित हिस्सा पहली बार राज्य शक्ति के साथ सीधे सघर्ष में उतरा था। इस आन्दोलन ने जोधपुर राज्य के किसानों में राज्य के विरुद्ध लड़ने का विचार उत्पन्न किया। अत इस आन्दोलन को सामन्तवाद के विरुद्ध सघर्ष का अगुवा कहा जा सकता है, जिसने जोधपुर राज्य मे दासता से मुक्ति की ज्योति जलाई।

सन् 1920—22 के दौरान राजनीतिक—सामाजिक हलचल ने शोषित वर्गो को न्याय दिलाने की दिशा मे उपयुक्त राजनीतिक स्थितिया उत्पन्न करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। जोधपुर राज्य के प्रमुख राजनीतिज्ञ जयनारायण व्यास ने शक्तिशाली जन आन्दोलन के निर्माण हेतु अपने प्रयास जारी रखे। मारवाड सेवा सघ की गतिविधियों व इसके विकास को राज्य ने अवैध तरीको से अवरुद्ध कर दिया था। इसलिए यह सगठन अधिक गतिमान नही हो पाया। सन् 1923 मे मारवाड हितकारिणी सभा की स्थापना के पश्चात् मारवाड सेवा सघ स्वत ही अप्रभावी हो गया था। वास्तव मे मारवाड सेवा सघ का परिवर्तित रूप ही मारवाड हितकारिणी सभा था क्योकि सेवा सघ पर राज्य द्वारा अनेक प्रतिबन्ध थोप दिए गए थे।[a]

मारवाड़ हितकारिणी सभा के अन्तर्गत आन्दोलन :

मारवाड हितकारिणी सभा मूल रूप से एक राजनीतिक सगठन था जबकि इसके नाम से ऐसा लगता है कि यह कोई समाज सेवा से सम्बन्धित सगठन रहा होगा। वस्तुस्थिति यह है कि एक सामन्ती राज्य मे राजनीतिक कार्य को सगठित रूप प्रदान करना इतना आसान कार्य नही था जहाँ समाचार पत्रो पर अनेक प्रतिबन्ध थे एवं जहाँ राजद्रोह अधिनियम जैसे कानून अस्तित्व म हों। अब तक के अनुभवो से नेतृत्व यह बात समझ चुका था कि वे अपने राजनीतिक उद्देश्य की प्राप्ति जनसमर्थन के द्वारा ही कर सकते है। अत अपने राजनीतिक कार्यक्रमो को गति प्रदान करने के ध्येय से मारवाड़ के राजनीतिक कार्यकर्त्ताओ ने मारवाड हितकारिणी सभा की स्थापना की। इस सगठन की स्थापना के साथ ही सन् 1923 में एक आम मुद्दे पर इसे राजनीतिक कार्य करने का अवसर प्राप्त हो गया। 29 अक्टूबर, 1923 को जोधपुर राज्य की कौन्सिल ने राज्य के राजस्व में वृद्धि के ध्येय से राज्य के बाहर पशुधन निर्यात करने का आदेश प्रसारित किया।[b] मारवाड की जनता ने सामाजिक, धार्मिक एव आर्थिक आधारों पर राज्य के इन आदेशो का खुला विरोध किया। इस आदेश के परिणामस्वरूप अजमेर, नसीराबाद, पालनपुर, इत्यादि सैनिक छावनियों व बम्बई तथा अहमदाबाद के बूचड़खानों में हजारों हजार पशु भेजे गए।[c] इसकी सूचना ने लोगों को धार्मिक आधारों पर भी आन्दोलित कर दिया था क्योकि इस मुहिम के अन्तर्गत भारी सख्या में गाये भी निर्यात की गई थी। इस नीति का दुष्परिणाम अर्थव्यवस्था को भी भोगना पड़ रहा था। जोधपुर राज्य में पशु पालन कृषि कार्य के समान ही महत्त्वपूर्ण था। रेगिस्तानी प्रदेश में किसान मुख्यत पशुपालन पर निर्भर करते थे। मुख्य रूप से मादा पशुओ के अधिक निर्यात का भविष्य के पशु धन विकास पर विपरीत प्रभाव पडना एक स्वाभाविक बात थी। जिससे जोधपुर राज्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के तहस—नहस का खतरा उपस्थित हो गया था। अत मारवाड हितकारिणी सभा ने इस जन असन्तोष को राजनीतिक रूप में परिवर्तित कर इस जन मुद्दे पर सघर्ष आरम्भ करने का निर्णय लिया।

पशु निर्यात नीति के अनेक दुष्प्रभाव दिखाई देने लगे थे। अनेक बार सूदखोर व जागीरदार ऋण व राजस्व की अदायगी न करने की स्थिति में उसके बदले किसानों के

पशु अधिग्रहीत कर लेते थे। जागीरदार व सूदखोर अधिग्रहीत पशुओ को या तो स्थानीय बाजार मे बेच देते थे अथवा वापस किसानो को बटाईदारी पर दे देते थे। पशुधन के निर्यात पर प्रतिबन्ध होने के कारण इस प्रवृत्ति पर अकुश लगा हुआ था किन्तु निर्यात नीति ने जागीरदारो व साहूकारो द्वारा किसानो से पशु धन का अधिग्रहण करना बढा दिया था। अत और भी अनेक कारणो से पशु धन निर्यात नीति महत्त्वपूर्ण जनमुद्दा बन चुकी थी तथा मारवाड हितकारिणी सभा ने समयानुकूल निर्णय लेकर इसके विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया। सभा के नेता जयनारायण व्यास ने पशु निर्यात नीति को रद्द करने सम्बन्धि प्रतिवेदन महाराजा के समक्ष प्रस्तुत किया। यह माग बहुत अधिक तर्कपूर्ण थी किन्तु राज्य ने इसे अस्वीकार कर दिया क्योकि सयुक्त और सगठित प्रयास राज्यों को स्वीकार्य व सहनीय नहीं थे। इसके विरोध में सभा के नेतृत्व मे 15 जुलाई 1924 को जोधपुर शहर मे जनसभा का आयोजन हुआ जिससे अपनी माग मनवाने के लिए राज्य पर दबाव बनाया जा सका।[7] इस सभा को भारी सफलता व जनसमर्थन मिला जिससे प्रभावित होकर अनेक सभाओं का आयोजन हुआ। इन जन सभाओ के माध्यम से मारवाड हितकारिणी सभा ने पशु निर्यात मुद्दे के विरोध को लोकप्रिय बनाने मे सफलता प्राप्त की एव जनसभाएँ विरोध का कारगर तरीका सिद्ध हो रही थी। जनता में आतक फैलाने के उद्देश्य से जनसभाओ में राज्य के आदेश से भारी पुलिस बल उपस्थिति रहने लगा। बिना किसी आरोप व लिखित आदेश के प्रमुख नेताओं व कार्यकर्त्ताओं को पुलिस थानों मे बुलाया जाने लगा। नेताओं के साथ बुरा बर्ताव किया गया। जन प्रतिनिधियो के साथ अपमानजनक व्यवहार करने के पीछे एक मात्र उद्देश्य उनमे निराशा भाव जागृत करना था जिससे वे निराश होकर अपने आन्दोलन को स्थगित कर दे, किन्तु दमनात्मक उपायों ने आन्दोलन को और अधिक लोकप्रिय बना दिया था जिससे आन्दोलन का सामाजिक आधार विस्तृत होता जा रहा था। बढते हुए जन दबाव को देखते हुए राज्य ने 15 अगस्त 1924 को इनकी माग स्वीकार कर ली।[8]

इस सफलता ने मारवाड़ हितकारिणी सभा की लोकप्रियता को काफी बढा दिया था। इसके पूर्व के सगठनो मरुधर मित्र हितकारिणी सभा एव मारवाड सेवा सघ जोधपुर शहर तक सीमित थे तथा उनका सामाजिक आधार नवोदित मध्यम वर्ग तक सीमित था जो सख्या मे लगभग नगण्य था। किन्तु मारवाड हितकारिणी सभा ने अपने आधार को ग्रामीण क्षेत्रो तक विस्तृत करते हुए किसानों को सगठित करने में सफलता प्राप्त की। राजस्थान के अन्य राज्यो के किसान आन्दोलन स्वस्फूर्त थे तथा एक समय पश्चात् उन्होने सगठित राजनीतिक स्वरुप प्राप्त कर लिया था जबकि जोधपुर राज्य में किसान आन्दोलन राजनीतिक सगठनो के जागरूक प्रयासो का परिणाम था। पशु निर्यात नीति के विरुद्ध आन्दोलन की सफलता ने किसानों को सामाजिक व आर्थिक आजादी प्राप्ति हेतु लडने के लिए प्रेरित किया तथा इसने किसानो मे आत्मविश्वास और साहस का सचार किया।

सरकार मारवाड हितकारिणी सभा की बढ़ती हुई लोकप्रियता से चिंतित थी। अत

इस सगठन को कुचलने के लिए सरकार ने अनेक हथकडे अपनाए। राज्य के समर्थन से राजभक्त देश हितकारिणी सभा नामक सगठन स्थापित हुआ जिसका मुख्य कार्य मारवाड हितकारिणी सभा के कार्यक्रमो की खिलाफत करना था। यह सगठन नवम्बर 1924 में स्थापित हुआ था।[9] इस सगठन का अन्य कोई सामाजिक व आर्थिक कार्यक्रम नहीं था तथा इसने राज्य का अन्धा समर्थन किया एव मारवाड हितकारिणी सभा के नेताओ को बदनाम करने के लिए इन पर जनता से धन इकट्ठा कर इसके दुरुपयोग के झूठे आरोप लगाए। राजभक्त देश हितकारिणी सभा जनसमर्थन जुटाने मे असफल रही क्योकि जनता के समक्ष यह स्पष्ट हो गया था कि यह अवसरवादियों का एक जमावड़ा था एव अपने निजी निहित स्वार्थों की पूर्ति ही इनका प्रमुख उद्देश्य था। अत इस सगठन के माध्यम से मारवाड़ हितकारिणी सभा के महत्व को कम करने के सरकारी प्रयास सफल नहीं हुए।

19 मार्च, 1925 को जोधपुर राज्य कौंसिल ने मारवाड़ हितकारिणी सभा के प्रमुख नेताओं को इस आधार पर राज्य से निष्कासित करने के आदेश प्रसारित किए कि राज्य में उनकी उपस्थिति जनहित मे नही थी। कुछ नेताओ को पुलिस निगरानी में रखा गया तथा उन्हें पुलिस थाने मे रोजाना उपस्थिति दर्ज कराने के आदेश दिए गए थे।[10] इस समय तक सगठन विकासशील दशा मे होने के कारण अधिक शक्तिशाली नहीं था इसलिए इसके नेता सरकार के साथ मुकाबला नहीं करना चाहते थे। इसलिए मारवाड़ हितकारिणी सभा ने इन आदेशो का विरोध नहीं किया। इसके प्रमुख नेता जयनारायण व्यास को पुलिस निगरानी में रखा गया था। उसकी गतिविधियों पर पूर्ण नियत्रण स्थापित कर दिया था। इसलिए उसने स्वय ही जोधपुर छोड़ दिया। इसे दूसरे अर्थों मे राज्य से आत्म निष्कासन माना जा सकता है। इस दौरान जयनारायण व्यास मुख्य रूप से ब्यावर व अजमेर रहे एव वहा से मारवाड़ की जनता को जगाते रहे। यहाँ उसने अपने आपको राजस्थान सेवा सघ की गतिविधियो से जोड़ लिया था एव सघ द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक पत्र तरूण राजस्थान के सम्पादक का कार्यभार सम्भाला। प्रमुख नेताओ की अनुपस्थिति से मारवाड़ हितकारिणी सभा के कार्यकर्ता व द्वितीय स्तर के नेताओं में निराशा व्याप्त नहीं हुई एव वे अपने तरीको से सक्रिय रहे। वे खाद्यान्न व आवश्यक उपभोग की वस्तुओं की मूल्य--वृद्धि के विरुद्ध बोलते रहे। अक्टूबर, 1928 मे मारवाड़ हितकारिणी सभा का एक प्रतिनिधि मण्डल जोधपुर राज्य कौंसिल के अध्यक्ष से मिला तथा खाद्यान्नों के निर्यात पर रोक लगाने का निवेदन किया। इसके प्रयासों को सफलता मिली तथा खाद्यान्नों के निर्यात पर रोक लगा दी गई थी।[11] जयनारायण व्यास ने यग राजस्थान में प्रेजेन्ट डे मारवाड़ शीर्षक से लिखकर निरन्तर अपना अभियान जारी रखा।

सरकार की मारवाड़ हितकारिणी सभा की गतिविधियों को नियत्रित करने के प्रयासों ने इसके सामाजिक आधार को और भी अधिक बढा दिया था। 1929 के आरम्भ में सभा अधिक सक्रिय हो गई थी एव इसने किसानों का एक आन्दोलन आरम्भ करने की योजना बनाई क्योकि यही एक ऐसा वर्ग था जिसे राजनीतिक शक्ति का रूप प्रदान किया

जा सकता था। जयनारायण व्यास ने जोधपुर राज्य के किसानो की दुर्दशा को अपने लेखन के माध्यम से जनता में प्रचारित किया।[12] 12 मई 1929 को मारवाड हितकारिणी सभा की एक बैठक में नौ सदस्यीय समिति का गठन किया तथा इसे बेगार लाग–बाग उच्च भू–राजस्व की दरों एव अन्य शिकायतों के विरुद्ध ग्रामीण जनता मे चेतना उत्पन्न करने का कार्य सौंपा।[13] जयनारायण व्यास ने किसानों को जागीरदारों के अत्याचारो के विरुद्ध अहिंसात्मक आन्दोलन आरम्भ करने का आग्रह किया।[14] यह आग्रह अपने आप में जोधपुर राज्य के जागीर क्षेत्रों मे आन्दोलन की औपचारिक घोषणा था। मारवाड हितकारिणी सभा की यह दृढ मान्यता थी कि खालसा क्षेत्रों की तुलना मे जागीर क्षेत्रों के किसानों की दशा अधिक दयनीय थी। इसलिए सभी जागीर क्षेत्र के किसानो की समस्याओं पर विशेष ध्यान दे रही थी। किसानों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से सभा ने दो पुस्तिकाऐं क्रमश "पोपा बाई की पोल" एव "मारवाड की अवस्था" प्रकाशित की। मारवाड़ हितकारिणी सभा की बढती हुई गतिविधियों से राज्य के अधिकारी चिंतित थे एव उन्होने इस पर नियत्रण स्थापित करने के प्रयास भी तेज कर दिए थे। सभा ने प्रारम्भिक तौर पर रायपुर बागड़ी एव बलूदा जागीरों में किसान आन्दोलन आरम्भ किया था। इन जागीरो के किसानों ने सभा के निर्देशों का पालन करते हुए जागीरदारों की सत्ता को चुनौती दी। यह आन्दोलन तीव्र गति नहीं पकड पा रहा था। आन्दोलन में अनेक कमजोरी व्याप्त थी जिसके कई कारण थे। एक तो मारवाड हितकारिणी सभा पूरी तरह किसान सगठन नहीं थी। यह तो सच है कि किसानों में भारी असतोष व्याप्त था किन्तु किसानों की ओर से स्वय सघर्ष करने की पहल नही थी। जोधपुर राज्य मे अनेक भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक सास्कृतिक इत्यादि विभिन्नताएँ व्याप्त थी जिनके कारण किसानों के सगठन सहजता से नहीं बन पा रहे थे। सभा के नेता मुख्यत शहरी लोग थे जो ग्रामीण क्षेत्रो से भली–भाति परिचित भी नहीं थे। शहरी सास्कृतिक पृष्ठभूमि के लोगों व ग्रामीण जनों के मध्य सहज समरसता स्थापित होना सम्भव नहीं था। इतना ही नहीं बल्कि सभा के अधिकाश नेता उच्च जातियों के थे जिनका दलित किसानों के साथ नया सम्बन्ध स्थापित हुआ था किन्तु यह सहयोग सरलता से गतिमान नहीं हो पा रहा था। इन कमजोरियों के उपरान्त भी सरकार इसे शक्तिशाली आन्दोलन मानती थी। जोधपुर के पुलिस महानिरीक्षक ने सरकार को सूचित करते हुए लिखा था कि जयनारायण व्यास, आनन्द राज सुराणा एव भवर लाल सर्राफ एक प्रकार के बोल्शेविक आन्दोलनकर्त्ता हैं एव सरकार को इनके विरुद्ध गम्भीर उपाए करने चाहिए।[15]

मारवाड हितकारिणी सभा ने 11 एव 12 अक्टूबर 1929 को जोधपुर मे मारवाड स्टेट्स पीपुल कान्फ्रेन्स का प्रथम अधिवेशन आयोजित करने का निर्णय लिया। ग्रामीण जनता को प्रेरित करने लिए भारी सख्या मे ग्रामीण प्रतिनिधियों को नि शुल्क सम्मिलित होने की अनुमति प्रदान की गई।[16] सम्मेलन की सभी तैयारियाँ पूरी हो चुकी थी, किन्तु सरकार ने अचानक ही इस सम्मेलन के आयोजन पर रोक लगा दी थी।[17] सभा ने सरकारी आदेशो का जमकर विरोध किया। सरकार ने यह भापते हुए कि स्थिति अधिक बिगड

सकती है, सभा के नेताओं जयनारायण व्यास, आनन्दराज सुराणा एवं भवर लाल सर्राफ को गिरफ्तार कर लिया। 23 सितम्बर, 1929 को ये नेता गिरफ्तार किए गए थे तथा इन पर एक विशेष न्यायालय में मुकदमा चलाया गया था। 20 जनवरी, 1930 को इस न्यायालय ने अपना फैसला सुनाया जिसके अनुसार जयनारायण व्यास को 5 वर्ष का कठोर कारावास व 1000 रुपए का जुर्माना अथवा भुगतान न करने की स्थिति में एक वर्ष का अतिरिक्त कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। भवर लाल सर्राफ एवं आनन्दराज सुराणा को चार वर्ष का कठोर कारावास व 1000 रुपये का जुर्माना अथवा एक वर्ष के अतिरिक्त कठोर कारावास की सजा दी गई।[28] मार्च, 1931 में ब्रिटिश भारत के राजनीतिक बन्दियों को रिहा किया गया था। जोधपुर राज्य ने भी गाँधी इरविन समझौते के अनुसार 9 मार्च, 1931 को इन नेताओं को रिहा कर दिया था। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि मारवाड़ हितकारिणी सभा द्वारा 1929 में आरम्भ किया गया किसान आन्दोलन गतिशील नहीं हो पाया। फिर भी सभा द्वारा आरम्भ किए गए आन्दोलन ने ग्रामीण चेतना को बढाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

स्वस्फूर्त किसान आन्दोलन :

जोधपुर राज्य में अनेक संगठनों की राजनीतिक गतिविधियों ने राज्य की दोषपूर्ण व अन्यायपूर्ण नीतियों के विरुद्ध संघर्ष का मार्ग खोला। सन् 1930 के विश्वव्यापी आर्थिक संकट ने सर्वाधिक गरीब कृषक जनता को प्रभावित किया था। 1930–31 का वर्ष जोधपुर राज्य में सूखे का वर्ष था जिसने किसानों की दशा को और भी दयनीय बना दिया था। वर्ष 1928 में खालसा क्षेत्रों में भू–राजस्व की नई दरें लागू हुई थी, जिसके अन्तर्गत किसानों पर भू–राजस्व का भार अत्यधिक बढ गया था। असल में 1921–26 के दौरान खालसा भूमि के बन्दोबस्त के पश्चात् भू–राजस्व की नकदी भुगतान की व्यवस्था की गई थी जिसे बीघोड़ी के नाम से जाना जाता था।[29] इस पद्धति के अन्तर्गत निर्धारित राजस्व की दरें निश्चित रूप से लटाई पद्धति से भी अधिक थी। 8 जुलाई, 1931 को माली जाति के किसानों ने मन्डोर के समीप चीना का बड़िया नामक स्थान पर एक सभा में यह निर्णय लिया कि नकदी राजस्व पद्धति के अन्तर्गत 50 प्रतिशत छूट के लिए सरकार से निवेदन करेंगे। किसानों ने 14 से 18 जुलाई, 1931 के दौरान राजस्व अधिकारियों के पास विनती पत्र भेजे किन्तु उन पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।[30] तत्पश्चात् किसानों ने विभिन्न गावों में सभाए करके यह निर्णय किया कि यदि कोई राज्य को राजस्व देगा तो उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जाएगा।[31] इस प्रकार मन्डोर व इसके आसपास के माली किसानों ने अघोषित कर बन्दी आन्दोलन आरम्भ कर दिया था। जैसा राजनीतिक माहौल सम्पूर्ण देश में व्याप्त था उससे चिंतित होकर राज्य ने शीघ्र कदम उठाए। अतः समय की नजाकत को देखते हुए राज्य ने मन्डोर, चैनपुरा, गवान, बेगान आदि गावों के कुल राजस्व 2597 रुपये की छूट प्रदान कर दी।[32] इस निर्णय ने किसानों को पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं किया था क्योंकि उनकी माग बीघोड़ी पद्धति के अन्तर्गत निर्धारित राजस्व में आधी छूट प्राप्त करना था। किन्तु किसानों की सीमित शक्ति के कारण यह आन्दोलन आगे जारी नहीं रह सका।

राज्य द्वारा दी गई छूट को इस आन्दोलन की आशिक सफलता कहा जा सकता है। इस सब के उपरान्त साराशत यह कहा जा सकता है कि बीघोडी पद्धति के मुददे ने जोधपुर राज्य के राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं व किसानों का ध्यान आकर्षित अवश्य किया था।

मारवाड स्टेट पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स के अन्तर्गत आन्दोलन 1931·

मारवाड स्टेट पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स के गठन ने जोधपुर राज्य मे किसान आन्दोलन के नए युग का शुभारम्भ किया। इस कॉंफ्रेन्स के प्रथम सम्मेलन 24–25 नवम्बर 1931 को चादकरण शारदा की अध्यक्षता में अजमेर के निकट पुष्कर में आयोजित किया गया।[23] यह सगठन प्रजामण्डल का ही प्रारम्भिक रूप था। इसी सभा के आयोजन के सम्बन्ध में 1929 में जयनारायण व्यास आनन्दराज सुराणा, भवर लाल सर्राफ गिरफ्तार किए गए थे। उन्हें 9 मार्च, 1931 को जेल से मुक्त कर दिया था किन्तु अभी भी इस कॉन्फ्रेन्स के आयोजन पर राज्य की ओर से पाबन्दी थी। यास्तव में इसका आयोजन अक्टूबर, 1929 में जोधपुर में होने वाला था जिस पर राज्य ने प्रतिबन्ध लगा दिया था। अभी भी राज्य की ओर से इसकी राह मे अनेक अवरोध उत्पन्न किए जाने की सम्भावना थी तथा इससे बचने के लिए राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं ने पुष्कर को ही उपयुक्त स्थान माना। अध्यक्ष चादकरण शारदा ने अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में जोधपुर महाराजा से बेगार, लाग–बाग व समाचार पत्रों पर रोक समाप्त करने हेतु निवेदन किया। उसने प्रशासनिक सुधारों की भी माग की।[24] इस सम्मेलन में किसानो से सम्बन्धित निम्नलिखित प्रस्ताव पास किए गए थे[25]—

1 बेगार प्रथा तुरन्त समाप्त की जाए।
2 किसानों के कल्याण हेतु एक समिति गठित की जाए।
3 सभी जागीरदारों को उनकी न्यायिक शक्तियो से वचित किया जाए।
4 गावों में अनिवार्य तौर पर पचायतों का गठन किया जाना चाहिए।
5 बीघोडी पद्धति के अन्तर्गत बढे हुए राजस्व को अविलम्ब कम किया जाए।
6 किसानों को भू–स्वामित्व प्रदान किया जाए।

मारवाड स्टेट पीपुल्स कॉन्फ्रेन्स द्वारा अनुमोदित उपरोक्त प्रस्तावों को कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी मारवाड़ हितकारिणी सभा ने ली। दिसम्बर 1931 के प्रथम सप्ताह मे भारी सख्या में किसान मारवाड हितकारिणी सभा के नेतृत्त्व में जोधपुर मे एकत्रित हुए। सभा के निर्देशन मे विभिन्न जिलों से आए हुए किसानो ने राजस्व अधिकारियों को अपनी माँगों के सन्दर्भ मे माँग पत्र प्रस्तुत किए।[26] इस अभियान में किसानों की सहभागिता उत्साहजनक थी एव किसानों ने अग्रिम पक्ति में रहकर अपनी भूमिका निभाई। 1931 में मारवाड यूथ लीग नामक सगठन स्थापित हुआ। इसने भी किसानो के इस अभियान मे पूर्ण सहभागिता निभाई। किसानों ने पुन 9 फरवरी से 2 मार्च 1932 के दौरान माँग पत्र प्रस्तुत किए। इनमे प्रमुख माँगे लाग–बाग समाप्त करने तथा बीघोडी पद्धति के अन्तर्गत राजस्व की राशि कम करने से सम्बन्धित थी।[27] इस किसान आन्दोलन के विस्तार को रोकने के लिए सरकार ने कठोरता बरतना आरम्भ कर दिया था। 5 मार्च 1932 को

सरकार ने मारवाड हितकारिणी सभा एवं मारवाड यूथ लीग को गैर कानूनी सगठन करार दे दिया था।[25] इस प्रकार पुष्कर सम्मेलन से उपजे किसान आन्दोलन को सरकार ने कुचल दिया। इससे मारवाड़ हितकारिणी सभा को भारी धक्का लगा।

मारवाड लोक परिषद के नेतृत्व में आन्दोलन :

सन् 1932 के पश्चात् जोधपुर राज्य में किसान आन्दोलन लम्बे समय तक सरकारी दमन के कारण नियत्रित रहे। वैसे 1932–34 के मध्य नागौर परगने के कुछ क्षेत्रों में छिटपुट आन्दोलन हुए। इस समय के आन्दोलन कोई खास महत्त्व नहीं रखते क्योंकि ये किसानो की समस्याओ के समाधान में सफल नहीं हो सके थे। वास्तव मे इन दो वर्षों के दौरान राज्य की दमनात्मक नीति के कारण राजनीतिक गतिविधियो मे ठहराव आ गया था। सन् 1934 में जोधपुर प्रजामण्डल व 1936 में सिविल लिबर्टीज यूनियन नामक सगठन अस्तित्व मे आए। इनकी गतिविधिया भी शहरी क्षेत्रो तक ही सीमित रही। सन् 1937 मे राज्य ने इन दोनो सगठनों को भी गैर कानूनी घोषित कर दिया। मई, 1938 में मारवाड़ लोक परिषद नामक नए सगठन की स्थापना हुई। यह सगठन अनुकूल राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति के अन्तर्गत स्थापित हुआ था। सन् 1938 के पूर्व अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस देशी रियासतों में किसी भी प्रकार के आन्दोलन के पक्ष में नहीं थी, किन्तु 1938 से कांग्रेस की नीति में परिवर्तन आया। कांग्रेस के समर्थन के बिना भी भारत की देशी रियासतों में जन आन्दोलन चल रहे थे। राजस्थान मे देशी रियासतों के जन आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर थे। मेवाड़ मे बिजौलिया किसान आन्दोलन राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। असहयोग आन्दोलन के दौरान मेवाड़ एव सिरोही के किसान एव आदिवासी आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर थे। इसके पश्चात् जयपुर राज्य के शेखावाटी क्षेत्र में किसान आन्दोलन 1936 तक काफी लोकप्रिय हो चुके थे जिनकी गूज ब्रिटिश ससद तक मे सुनाई पड़ी थी। सन् 1931 के पश्चात् जहाँ लगभग एक दशाब्दी तक ब्रिटिश भारत में कोई आन्दोलन दिखाई नहीं देता, वहीं राजस्थान इस समय सामन्त व साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलनों का केन्द्र बना हुआ था। सन् 1934 में शेखावाटी का किसान आन्दोलन अपने पूर्ण वेग के साथ आरम्भ हुआ था। अनेक स्थानों पर हिंसात्मक वारदाते हुई जिनमें प्रमुख तौर पर जागीरदारों व उनके भाड़े के लोगों के अतिरिक्त राज्य पुलिस व सेना का हाथ रहा। इसी प्रकार की घटनाएँ अलवर, अजमेर आदि स्थानों पर भी घटित हुई। कांग्रेस अभी तक देशी रियासतों के मामलों में अहस्तक्षेप की नीति अपनाएँ हुए थी। सन 1936 में जवाहरलाल नेहरू ने अखिल भारतीय राज्य प्रजा परिषद् के पाचवे सत्र (सम्मेलन) को सम्बोधित किया जिसे कांग्रेस की नीति में परिवर्तन का आरम्भ कहा जा सकता है। नेहरू ने अपने सम्बोधन में मात्र याचनाओं के स्थान पर जनसम्पर्क पर बल दिया। इसी का परिणाम था कि पहली बार इस सत्र में कृषकों के सम्बन्ध में एक कार्यक्रम तैयार करते हुए भू–राजस्व में एक तिहाई की कमी, ऋणों को कम करने तथा कश्मीर, अलवर, सीकर एव लोहारू की घटनाओं के सन्दर्भ में किसानों की समस्याओं के सन्दर्भ में जाँच करने की माग की।[26] सन् 1937–39 के मध्य किसान

श्रमिक एव अन्य जन आन्दोलनों ने भी काग्रेस को अपनी नीति मे परिवर्तन के लिए बाध्य कर दिया था। फरवरी 1938 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने हरिपुरा सत्र में देशी रियासतों के आन्दोलनों का समर्थन करने का निर्णय लिया। जोधपुर में मारवाड लोक परिषद् की स्थापना उपरोक्त राजनीतिक विकास से प्रेरित व उत्साहित थी।

वर्ष 1938–39 के दौरान जोधपुर राज्य में भयकर सूखा व अकाल पड़ा था। इससे किसान सर्वाधिक प्रभावित थे। राज्य की ओर से अकाल राहत कार्य अपर्याप्त व अनुपयुक्त थे। मारवाड़ लोक परिषद् ने अपनी स्थापना के आरम्भ से ही अकाल पीडित किसानो की सेवा का कार्य आरम्भ कर दिया था जिससे शीघ्र ही यह सस्था ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक लोकप्रिय हो गई थी। जयनारायण व्यास जो जोधपुर में राजनीतिक चेतना के जनक थे, अभी तक राज्य से निर्वासित थे। परिषद् की कार्यकारिणी ने अपने नेता के निर्वासन आदेश वापस लेने के लिए राज्य से माँग की। फरवरी 1939 मे राज्य ने जयनारायण व्यास के जोधपुर प्रदेश पर प्रतिबन्ध समाप्त कर दिया था।[30] इसी के साथ परिषद काफी सक्रिय हो गई थी। परिषद ने जुलाई–अगस्त 1939 के मध्य नागरिक अधिकारों 1923 के समाचार पत्र अधिनियम मे सुधार अनिवार्य शिक्षा इत्यादि विषयक 28 प्रस्ताव पास किए। सर्वाधिक प्रस्ताव जयनारायण व्यास ने ही रखे थे। उसने गावो मे भारी सुधारों के सन्दर्भ मे विस्तृत योजना भी प्रस्तुत की थी।[31] मारवाड लोक परिषद् ने सितम्बर से दिसम्बर, 1939 के मध्य मुख्य रूप से तीन मुद्दो पर आधारित एक शक्तिशाली जनान्दोलन तैयार करने का प्रयास किया। पहला मुद्दा अकाल की स्थिति एव अकाल–राहत नीति से जुड़ा हुआ था। परिषद के कार्यकर्ताओ ने प्रचारित किया कि अकाल का मुकाबला करने में किसान की असमर्थता उसकी दरिद्र आर्थिक दशाओं के कारण थी जो राज्य एव जागीरदारों द्वारा किसानों के निर्दयी शोषण का परिणाम था। 1939 का अकाल अत्यधिक भयानक था, जो कई दशाब्दियों बाद किसानों व ग्रामीण जनता ने अनुभव किया था। इस समय जोधपुर राज्य के गावों में खाद्यान्नो चारे व पीने के पानी का भारी अभाव था। राज्य की ओर से कुछ राहत कार्य अवश्य आरम्भ किए गऐ थे किन्तु वे माग के अनुरूप न होकर अपर्याप्त थे। जोधपुर राज्य के बहुत बडे भू–भाग जो जागीरदारो के अधिकार क्षेत्र मे थे में तो राहत कार्यों का नितान्त अभाव था। इसके अतिरिक्त भ्रष्ट व अकुशल प्रशासनिक व्यवस्था के कारण जो कुछ राहत व्यवस्था उपलब्ध थी वह अकाल पीड़ित लोगो तक नही पहुँच पा रही थी। ऐसी स्थिति मे एक ओर मारवाड लोक परिषद ने राज्य की अकाल नीति की खुलकर आलोचना की वही दूसरी ओर पीडित जनता को सभी प्रकार की सहायता पहुँचाने का कार्य किया। अपने इन कार्यो से लोक परिषद की न केवल लोकप्रियता बढी बल्कि यह एक वास्तविक जन नेतृत्व के रूप में उभरी।

दूसरा, सितम्बर, 1939 मे द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हो गया था एव परिषद् ने राज्य द्वारा युद्ध की सहायता करने की नीति का भारी विरोध किया। राज्य सरकार ने न केवल सैनिक समर्थन दिया बल्कि अग्रेजों के युद्ध कोष में भारी धन अनुदान के तौर पर दिया था। परिषद् द्वारा इसके विरोध का उद्देश्य स्पष्ट था कि एक ओर राज्य में लोग

भुखमरी का शिकार थे वही दूसरी ओर भारी धन युद्ध जैसे विध्वन्सात्मक कार्यो में लगाया जा रहा था।

तीसरा, परिषद् ने जागीरदारो के विरुद्ध एक अभियान छेड़ा था जैसा कि विदित है कि जोधपुर राज्य का 87 प्रतिशत भाग जागीरदारो के अधीन था। जनसमर्थन जुटाने के उद्देश्य से परिषद् ने जागीरों मे रहने वाली जनता के मुद्दे उठाना आरम्भ किया। सन् 1936 में राज्य ने अनेक लाग-बागे समाप्त कर दी थी, किन्तु जागीरदार इन्हें अभी भी निरन्तर वसूल कर रहे थे। जागीर क्षेत्रों में भारी बेगार प्रथा प्रचलित थी। वहाँ भूमि कानूनों का सर्वथा अभाव था एव किसान जागीरदार की दया पर निर्भर थे। वे किसानों से मनमाना राजस्व वसूल करते थे तथा कोई भी बहाना बनाकर किसानों को उनकी जोतों से बेदखल कर देते थे। अत जागीरदारों की सत्ता व जुल्मों के विरुद्ध परिषद ने किसानों को सघर्ष के लिए प्रेरित किया।

जयनारायण व्यास को जोधपुर आगमन के पश्चात् राज्य ने परिषद के प्रतिनिधि के रूप में अनेक सरकारी समितियो मे सदस्य मनोनीत किया था। राज्य की जन विरोधी नीतियों के विरोध मे जयनारायण व्यास ने दिसम्बर, 1939 में सभी समितियो से त्याग पत्र दे दिया।[58] त्याग पत्र का उद्देश्य जनहित में इन समितियों की असलियत उजागर करना था। इन समितियों में सरकारी सदस्यों का बहुमत होने के कारण जयनारायण व्यास जनहित में निर्णय करवाने में असमर्थता महसूस कर रहे थे। अत व्यास के त्याग पत्र से लोक परिषद् की लोकप्रियता और अधिक बढ गई थी। सरकार परिषद की बढ़ती हुई गतिविधियो से भयभीत थी तथा राज्य के प्रधानमत्री ने परिषद् के सदस्यों के विरुद्ध भारत रक्षा अधिनियम के अन्तर्गत कार्यवाही करने की धमकी दी थी। अन्त में राज्य सरकार ने 28 मार्च 1940 को मारवाड़ लोक परिषद को गैर कानूनी सगठन घोषित कर दिया था।[59] इसी दिन राज्य पुलिस ने परिषद् के विभिन्न नेताओं को बन्दी बना लिया था। इन्हें राज्य के विभिन्न किलों में बन्दी रखा गया था। उन्हें एक वर्ष तक बगैर किसी मुकदमा चलाए बन्दी रखा गया।

मारवाड़ लोक परिषद् के विरुद्ध राज्य की दमनात्मक नीति का कारण परिषद् की ग्रामीण क्षेत्रो मे पैठ थी। परिषद् ने पहले से ही किसानों को जागीरदारों के विरुद्ध क्रान्ति के लिए आह्वान किया हुआ था। जोधपुर के प्रधानमत्री कर्नल डी एम फील्ड ने मार्च, 1940 को राज्य के सभी जागीरदारों व जिला अधिकारियों को एक परिपत्र जारी किया। इसमें सम्पूर्ण मामले में राज्य का मत उजागर होता है। उसने लिखा था कि "महाराजा की सरकार आपको सूचित करना चाहती है कि जोधपुर में लोक परिषद् नामक राजनीतिक सगठन के सदस्य क्रान्तिकारी विचारो का प्रचार कर रहे हैं एव वे मारवाड़ के विभिन्न ठिकानों व जिलो में अपने सगठन की शाखाएँ स्थापित करने मे व्यस्त हैं। वे अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न जागीर कस्बे व गावों का भ्रमण कर रहे हैं जिससे कि जागीरदारों व जनता के मध्य अशान्ति उत्पन्न की जा सके। इसलिए आपको सलाह देता हूँ कि आप अपने अधिकारी व कर्मचारियों को लोक परिषद् के सदस्यों की गतिविधियों की कड़ी

निगरानी रखने का निर्देश दें एव इस आशय की टिप्पणी तैयार करें कि वे जनसभा आदि में क्या करते हैं व क्या कहते हैं। अपने जागीर के गावों मे लोक परिषद् के सदस्यो की गतिविधियों व भाषणों की विस्तृत रिपोर्ट मुझे प्रेषित करे।"

उपरोक्त परिपत्र से स्पष्ट होता है कि सरकार परिषद् की जागीरदार विरोधी नीतियों व गतिविधियों से भयभीत थी। हाल मे चल रही परिषद् की जागीरदार विरोधी एव युद्ध विरोधी गतिविधियो की गम्भीरता को देखते हुए स्वय महाराजा सरकार की नीति को न्यायोचित ठहराने के लिए आगे आया। महाराजा ने एक वक्तव्य जारी करते हुए स्पष्ट किया कि "मैं ब्रिटिश सरकार के वफादार सहयोगी के रूप में इसे अपने कर्त्तव्य के अनुकूल नहीं मानता कि युद्ध के समय अपने राज्य में आधारहीन राजनीतिक आन्दोलन को उत्पन्न होने दूँ व फैलने दूँ न ही मैं अपने किसानों को क्रान्ति के लिए उत्साहित करने व अपने युवाओं को भ्रष्ट करने वाले विद्रोही आन्दोलन के खुले अभियान को लम्बे समय तक चलने देने के पक्ष में हूँ।" महाराजा के इस वक्तव्य से परिषद् की बढती हुई राजनीतिक गतिविधियो का क्रान्तिकारी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस समय तक मारवाड लोक परिषद् एक मजबूत सगठन के रूप में प्रगट हो गई थी। राज्य द्वारा दमनात्मक कदम उठाने के पश्चात् भी परिषद् का अभियाने निरन्तर चलता रहा। अपने नेताओं की अनुपस्थिति में परिषद् के कार्यकर्त्ताओ ने राज्य को अपने सगठन से प्रतिबन्ध हटाने व नेताओं को मुक्त करने के लिए मजबूर कर दिया था। राज्य सरकार ने जून, 1940 मे सभी नेताओं को रिहा कर दिया था एव लोक परिषद् को मान्यता प्रदान कर दी थी। इस प्रकार मारवाड लोक परिषद् ने जागीरदार विरोधी कृषक अभियान छेडकर अपने राजनीतिक उद्देश्य में सफलता प्राप्त की।

फरवरी, 1941 में मारवाड लोक परिषद् ने लाग–बाग बेगार एव भू–राजस्व के सम्बन्ध में जाच हेतु एक जागीर कमेटी गठित की। इस कमेटी ने इन मुद्दों की विस्तृत जाँच की। इसकी स्पष्ट मान्यता थी कि भू–राजस्व निर्धारण व सग्रह की पद्धति अत्यधिक दोषपूर्ण थी। अत्यधिक प्रचलित पद्धति लटाई थी। इस पद्धति के अन्तर्गत जागीर के कर्मचारियो द्वारा खडी फसल के उत्पादन का आकलन किया जाता था एव एक मोटे अनुमान के द्वारा जागीर का भाग तय किया जाता था। वास्तव में यह बटाईदारी व्यवस्था थी जिसके अन्तर्गत किसान को भू–स्वामित्व के कोई अधिकार प्राप्त नही थे। इस व्यवस्था के अन्तर्गत किसान की स्थिति जागीरदार की इच्छा पर निर्भर किराएदार से अधिक कुछ नहीं थी। लटाई पद्धति के अन्तर्गत भू–राजस्व के अतिरिक्त किसानो से भारी सख्या में लाग–बाग ली जाती थी। कभी–कभी इन लाग–बागों की राशि भू–राजस्व की राशि से भी दुगनी होती थी। अकाल के दौरान भी राजस्व से मुक्ति नहीं मिलती थी तथा सूखा व अकाल के दौरान का शेष राजस्व भुगतान सामान्य वर्षों मे वसूल कर लिया जाता था। भू–राजस्व अदा न करने की स्थिति में किसानों के गहने बर्तन बैल गाय कृषि उपकरण इत्यादि जब्त कर नीलाम कर दिए जाते थे। इन सबके अतिरिक्त अमानवीय मूल्यों पर आधारित बेगार प्रथा का प्रचलन था। यह दासता से कम नहीं थी।

मारवाड़ लोक परिषद् द्वारा गठित उपरोक्त जागीर कमेटी की जाँच ने जागीरों के मुद्दे को एक सार्वजनिक मुद्दा बना दिया था। 1941–42 के दौरान परिषद् जागीर मुद्दे पर ही केन्द्रित रही मार्च, 1941 मे परिषद् ने जागीरदार विरोधी अभियान छेड़ा। परिषद के कार्यकर्ता सभी जागीर गावों मे फैल गए थे जिन्होने जगह–जगह सभाएँ सगठित कर किसानो को लाग–बाग न देने व बेगार न करने के लिए तैयार किया। इसके साथ–साथ किसानों ने अपनी जोतों पर स्थाई स्वामित्व के अधिकार देने की भी माँग की। किसानो के उत्साह व नैतिक बल को ऊँचा उठाने के लिए मारवाड़ लोक परिषद् के कार्यकर्त्ताओं ने जागीर मुख्यालयों पर प्रभात फेरियो का आयोजन किया। आन्दोलनकारियो द्वारा उन्हीं लाग–बागो का मुद्दा हाथ मे लिया था जो राज्य द्वारा पहले से ही प्रतिबन्धित थी जबकि जागीरदार उनकी वसूली लगातार कर रहे थे। उदाहरणार्थ किसान के घर कोई जीमण (दावत) होता था तो जागीरदार किसान से कासा लाग लेता था। यह लाग 17 मार्च, 1938 को मुख्य न्यायालय ने एक फैसले के द्वारा गैर कानूनी करार दे दी थी किन्तु जागीरदार यह लाग निरन्तर रूप से ले रहे थे। जयनारायण व्यास ने "गैर कानूनी लागें" शीर्षक से दो भागो मे एक पुस्तिका प्रकाशित की। इस पुस्तिका के आरम्भ में उन्होंने लिखा कि ऐसी अनेक लागें है जो मारवाड़ मे प्रतिबन्धित है किन्तु कुछ लागें न्यायालयों द्वारा गैर कानूनी करार दी गई हैं किन्तु वे अभी भी अनेक जागीरदारो द्वारा उसी तरीके से वसूल की जा रही हैं जैसे कि वे कानूनी हों। जब तक उन जागीरदारों को जो लागे वसूल कर रहे हैं कानूनी कार्यवाही द्वारा दण्डित नहीं किया जाता तब तक प्रतिबन्धित व गैर कानूनी लागों के मुद्दे पर सरकार के आदेशो को लागू करना असम्भव है। उसने शिक्षित युवाओं का जोरदार आह्वान किया कि वे गैर कानूनी लागों के भुगतान न करने के लिए भोले ग्रामीणों को जागृत करें।[31]

मारवाड़ लोक परिषद् द्वारा छेड़ा गया लाग विरोधी आन्दोलन जोधपुर राज्य के सभी जागीर गावों में फैल गया था। लोक परिषद् ने जागीर प्रथा का सीधे तौर पर कोई विरोध नहीं किया था। अर्थात् जागीरदारी व्यवस्था को समाप्त करने की न तो सरकार से माँग की एवं न ही जनता को जागीरदारी व्यवस्था को समाप्त करने के लिए सघर्ष हेतु उकसाया। 6 जून, 1941 को मारवाड लोक परिषद् के अध्यक्ष मथुरादास माथुर ने जोधपुर महाराजा के कौनसलर (वकील / सलाहकार) को एक पत्र लिखते हुए परिषद् की नीति का खुलासा किया। उसने लिखा "लोक परिषद् ने कभी भी जागीरदारी की समाप्ति को अपनी नीति घोषित नहीं किया एवं न ही जागीरदारों व उनकी जनता के मध्य खाई पैदा करने की कोशिश की है। परिषद् का स्पष्ट पक्ष यह रहा है कि जागीरों में रहने वाले गरीब किसानों व जनता का गैर कानूनी तरीके से शोषण नहीं किया जाए।"[32]

उपरोक्त आन्दोलन का विस्तार तीव्र गति से हो रहा था। आन्दोलन की बढ़ती लोकप्रियता व इसके विस्तार से जागीरदारों को भयभीत कर दिया था। यह तथ्य एक दम सही है कि मारवाड़ लोक परिषद् ने जागीर व्यवस्था की समाप्ति की माँग तो कभी नहीं की किन्तु उसका यह आन्दोलन जागीरदारी व्यवस्था की जड़ों पर भारी प्रहार साबित हो

रहा था। चाहे सीधे तौर पर परिषद् जागीरों का विरोध नहीं कर रही थी किन्तु जनता के सामन्ती शोषण की सार्वजनिक आलोचना की जा रही थी जो अपने आपमें जागीर व्यवस्था की समाप्ति का अभियान बन गया था। जागीरदारों ने भयभीत होकर 15 अप्रेल 1941 को एक गुप्त सभा कर लोक परिषद् के विरुद्ध एक सगठन बनाने का निर्णय किया।[39] इस निर्णय के अनुसार जागीरदार सभा नामक सगठन अस्तित्व में आया।[40] सन् 1935 में स्थापित राजपूत सभा नामक जातीय सगठन भी जागीरदारों के बचाव मे आया क्योंकि लगभग सभी जागीरदार इसी जाति से सम्बन्धित थे। दोनो सगठनो ने लोक परिषद् के विरुद्ध मोर्चा कायम कर लोक परिषद् विरोधी अभियान आरम्भ किया। इन सगठनों ने परिषद् के विरुद्ध सभी प्रकार का अभियान चलाया जिसमें मार–पीट व अन्य शारीरिक यत्रणा भी सम्मिलित थी। इन्होंने केवल परिषद् के कार्यकर्ताओं पर ही नहीं बल्कि किसानों पर भी अनेक जुल्म ढाए। कुल मिलाकर आतक का माहौल बनाने का प्रयास किया गया था। उन्होंने लोक परिषद् के जयनारायण व्यास व मथुरादास माथुर जैसे नेताओ को गम्भीर परिणाम भुगतने की धमकी दी यदि उनके अनुयायी जागीर व गावो मे प्रवेश करेगे। राजपूतों व जागीरदारों के दोनों सगठन राज्य के निर्देशन व सहायता से कार्यरत थे। इसके उपरान्त भी ये सगठन लोक परिषद् के आन्दोलन का मुकाबला करने मे असफल रहे क्योंकि इन्हे कतई जनसमर्थन प्राप्त नही था। इस स्थिति में जागीरदारों में भारी झुझलाहट व्याप्त थी। अत जागीरदारो ने उत्तेजित होकर लटाई (राजस्व निर्धारण) रोक दी एव यह स्पष्ट रूप से घोषित किया कि बिना लटाई के वे किसानो को उनकी पैदावार घर नहीं ले जाने देंगे। यह निर्णय जागीरदारो ने मार्च 1941 में कर लिया था।[41] जागीरदारों के इस निर्णय ने भारी गतिरोध उत्पन्न कर दिया था। किसान बुरी स्थिति में फस गए थे क्योंकि किसानो को फसल के तुरन्त पश्चात् खाद्यानो व आर्थिक आवश्यकताओं हेतु उत्पादन घर ले जाना जरूरी था किन्तु जागीरदारो द्वारा राजस्व का आकलन न करने एव राजस्व अदा किए बिना किसानो को फसल घर ले जाने की रोक ने उन्हें बुरी तरह प्रभावित किया। अभी भी जागीरदार लाग–बागों सहित राजस्व वसूल करना चाहते थे, जबकि किसान लाग–बाग नही देना चाहते थे। किसानों की कठिनाई को देखते हुए लोक परिषद् ने राज्य सरकार को जागीरदारो की शिकायत की। जोधपुर राज्य ने किसानो व लोक परिषद् की शिकायतों के आधार पर 20 मई 1941 को आदेश प्रसारित किया कि जागीरदार 15 दिन के अन्तर्गत लटाई कार्य पूर्ण कर लें वरना सम्बन्धित परगने का हाकिम लटाई करके किसानो को उनका हिस्सा दे देगा।[42] जागीरदारों को यह आशका उत्पन्न हो गई कि यदि वे लटाई नहीं करेगे तो उन्हें युगो पुराने अधिकारों से वन्चित कर दिया जाएगा।

राजपूत सभा एव जागीरदार सभा से 6 जून 1941 को सयुक्त अधिवेशन में एक समिति गठित की जिसका कार्य लोक परिषद् की गतिविधियो का सामूहिक विरोध करना था। उन्होंने व्यक्तिगत जागीरदारों को लाग–बाग भुगतान से आम इन्कारी के विरुद्ध सहायता देने का भी वचन दिया।[43] जागीरदारों ने 8 जून 1941 को सरकार के समक्ष

ज्ञापन प्रस्तुत किया कि आन्दोलनकारी जो बाहरी तत्व थे वे हमारे प्रति जिम्मेदार नहीं थे उन्होंने जनता की अज्ञानता का शोषण करते हुए करबन्दी अभियान इस आशय से आरम्भ किया था कि वे आन्दोलन के दौरान किसानो का नेतृत्व प्राप्त कर हमेशा के लिए अपना प्रभाव स्थापित कर सकें।[4] लटाई के सन्दर्भ मे 1941 के राज्य आदेशों को 30 जून 1941 को सरकार ने वापस ले लिया, क्योंकि सरकार की ऐसी मान्यता बनी कि इन आदेशों ने जागीरदारों की भावनाओं को ठेस पहुँचाई हैं।[5] इसके पश्चात् जागीरदारों ने बलपूर्वक किसानों से लाग–बागो सहित भू–राजस्व वसूल किया। अनेक स्थानों पर किसानों व जागीरदारों के मध्य हिंसात्मक घटनाएँ घटीं। वास्तव में जागीरदार सरकार को यह जताना चाहते थे कि यदि राज्य उन्हें समर्थन प्रदान करे तो वे इस किसान स्थिति का मुकाबला करने में सक्षम हैं।

जोधपुर सरकार किसान आन्दोलन को नियन्त्रित करने की भरपूर कोशिश कर रही थी। सरकार ने एक ओर जागीरदारो को किसानो के दमन की पूरी छूट प्रदान की तथा दूसरी ओर मामले को शान्तिपूर्ण समझौते द्वारा सुलझाने का प्रयास किया। महाराजा के कॉन्सलर (वकील/सलाहकार) ने मारवाड़ लोक परिषद, राजपूत सभा एवं जागीरदार सभा के प्रतिनिधियों के साथ साक्षात्कार कर मामले को निपटाने के लिए केन्द्रीय व जिला समझौता बोर्डों के गठन का प्रस्ताव रखा। जिला बोर्डों को जागीरदारों व किसानों के मध्य मुद्दों को निपटाने हेतु अधिकृत किया गया। केन्द्रीय बोर्ड को जिला बोर्डों द्वारा नहीं निपटाये जा सकने वाले मामलों का निरीक्षण कर निर्णय देने का अधिकार दिया गया तथा जिला बोर्डों द्वारा निपटाए गए मामलों में असन्तुष्ट पक्ष की अपील सुनने का अधिकार केन्द्रीय समझौता बोर्ड सरकार ने इस प्रस्ताव को राहगति देते हुए 30 जून, 1941 को समझौता बोर्डों की स्थापना के आदेश प्रसारित किए।[6] इन बोर्डों के स्थापना के पीछे राज्य का वास्तविक उद्देश्य जागीरदारो की मदद करना व किसानो को झूठी राहत प्रदान करना था। इसका उद्देश्य किसान आन्दोलन को अप्रभावी करते हुए मारवाड़ लोक परिषद के किसान आधार को तोड़ना था। प्रत्येक समझौता बोर्ड का गठन 5 सदस्यों के द्वारा किया गया था। प्रत्येक बोर्ड में निम्नलिखित व्यक्तियों को रखा गया –

अ अध्यक्ष के रूप मे परगने (जिले) का हाकिम।

ब सम्बन्धित परगने के दो जागीरदार जिनका चयन जागीरदार सभा द्वारा एवं अनुमोदन सरकार द्वारा किया गया हो।

स विवाद ग्रस्त गावों से परगने के दो अच्छी हैसियत के किसान। हाकिम को इन किसानों के चयन का अधिकार दिया गया।

उपरोक्त बोर्डो के गठन से यह स्पष्ट होता है कि इनकी स्थापना जागीरदारों को बल प्रदान करने के लिए की गई थी। मारवाड़ लोक परिषद् जो किसान आन्दोलन की जननी थी व किसानों के हितों की रक्षक थी को सरकार ने इन बोर्डों से दूर रखते हुए पूर्ण उपेक्षा की थी। यह भी तर्कपूर्ण था कि लोक परिषद् की उपेक्षा कर इस आन्दोलन के मामले में कोई स्थाई स्वरूप का निर्णय लिया जाना सम्भव नहीं था। सरकार व

जागीरदारो के अनेक प्रयासों के उपरान्त भी अनेक कारणो से समझौता बोर्ड समस्या के समाधान में सफलता प्राप्त नही कर सके। पहला इनमे सरकार व जागीरदार समर्थक सदस्यों की सख्या अधिक थी तथा वे किसी भी प्रकार के भूमि व कृषि सुधार के पक्ष मे न होकर यथास्थिति बनाए रखने के पक्षधर थे। दूसरा विवादों की सख्या इतनी अधिक थी कि जिनका निपटारा इन बोर्डों के द्वारा एक या दो दशाब्दियों की अवधि मे भी किया जाना सम्भव नहीं था। तीसरा, इन बोर्डों के निर्णय मारवाड लोक परिषद् के सम्मिलित हुए बिना किसानों को सामूहिक रूप से स्वीकार्य नही थे क्योकि उनका अधिक भरोसा और विश्वास इन बोर्डों के स्थान पर लोक परिषद् मे अधिक था। वैसे तो ये बोर्ड अर्थहीन हो गए थे किन्तु वे किसानो में भ्रान्ति उत्पन्न करने में सफल रहे तथा कुछ माह के लिए किसान आन्दोलन कमजोर हो गया था। किसानो का यह आम सोच बन गया था कि इन तथाकथित समझौता बोर्डों के गठन के माध्यम से सरकार व जागीरदारो ने उन्हे धोखा दिया है। अत किसानों ने अपने आन्दोलन को पुन सगठित कर और अधिक शक्ति के साथ आन्दोलन आरम्भ करने का निर्णय लिया। जब यह आन्दोलन पुर्नसगठित होकर आरम्भ हुआ तो यह अधिक तीव्र व कड़ा साबित हुआ।

किसानो के उद्देश्य को हानि पहुँचाने की दिशा में सरकार का दूसरा शरारतपूर्ण कदम था मारवाड़ किसान सभा की स्थापना को प्रोत्साहित करना। सरकार लोक परिषद् के किसान आधार को कम करना चाहती थी। अत किसानों मे लोक परिषद् की स्थिति को नगण्य बनाने के ध्येय से ही राज्य ने मारवाड़ किसान सभा की स्थापना को प्रोत्साहित किया था जो 22 मार्च, 1941 को अस्तित्व में आई।[47] इसका प्रमुख सगठनकर्त्ता व संरक्षक बलदेव राम मिर्धा था जो जोधपुर राज्य की पुलिस में अधीक्षक था तथा जाट समुदाय का था। वह राज्य का विनम्र व विश्वसनीय सेवक था जो एक क्लर्क की स्थिति से उठकर 1943 में जोधपुर राज्य के पुलिस महानिरीक्षक के पद तक पहुँचा था।[48] किसानो मे जाट समुदाय की सख्या सर्वाधिक थी एव मिर्धा ने उनका शोषण अपने व्यक्तिगत लाभ मे किया। वह इस सकट की घड़ी में वफादार सेवक की तरह अपने स्वामी की रक्षा मे उपस्थित हुआ। किसान सभा का प्रथम अध्यक्ष मगल सिह कछावा को बनाया गया था जो व्यवसाय से ठेकेदार था।[49] मारवाड किसान सभा भी लाग–बाग बेगार एव लटाई पद्धति के विरुद्ध थी किन्तु इसने मारवाड़ लोक परिषद् की कार्य शैली का विरोध किया। किसान सभा ने किसानों को लोक परिषद् के आन्दोलनकारियों से दूर रहने की सलाह भी दी।[50] किसान सभा के नेताओं ने खुलकर यह दुष्प्रचार किया कि लोक परिषद् उच्च जाति का एक सगठन है तथा इसका किसान जातियो से कुछ लेना–देना नही है। यदि वे तथाकथित "जिम्मेदार सरकार" प्राप्त करने में सफल होते हैं तो राजनीतिक सत्ता पर उनका एकाधिपत्य होगा एव वे किसानो व दलित जातियो की उपेक्षा करेंगे। समझौता बोर्डों की स्थापना समस्या का समाधान नहीं कर सकी। सितम्बर 1941 में जागीरदारों द्वारा किसानों के उत्पीड़न की अनेक घटनाऐं घटीं।[51] जागीरदारो के अमानवीय व गैर कानूनी कार्य निरन्तर रूप से जारी रहे। उन्होने भू–राजस्व वसूली के अन्तर्गत किसानों

के पशु, बरतन इत्यादि जब्त कर नीलाम किए। उनके द्वारा उत्पादित अनाज को सील कर दिया गया तथा उन्हे भूमि जोतने से रोका गया। उनके घर लूटे गए तथा जलाकर राख कर दिए गए। जागीरदारो द्वारा दमन किसानो तक सीमित नही रहा बल्कि उन्होंने मारवाड लोक परिषद् के नेताओं व कार्यकर्त्ताओं का अपमान व दमन भी किया। परगना सोजत, बिलाड़ा एव जैतारण के जागीरदारो ने सामूहिक निर्णय लिया कि यदि लोक परिषद् का कोई सदस्य उनके गावों में आये तो उन्हें पीटकर गावो से बाहर फेंक दिया जाना चाहिए तथा उनकी सभा को तितर बितर कर दिया जाना चाहिए। कुछ नेता जैसे चौधरी रामाराम, छगनराज चौपासनी वाला, कन्हैया लाल वैद्य, इन्द्रमल, मोहन लाल जोशी एव स्वामी चैन दास को अनेक स्थानों पर अपमानित कर हमला किया गया।[52] इस प्रकार जागीर गावों मे आतक स्थापित हो गया था।

मारवाड़ किसान सभा ने भ्रान्ति उत्पन्न करने का पूर्ण प्रयास किया, किन्तु जनसमर्थन के अभाव में इसे कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। लोक परिषद् के कार्यकर्त्ता अत्याचारों का साहस से सामना कर रहे थे। कुछ क्षेत्रों में किसानों ने भी अपने आपको सगठित करना आरम्भ कर दिया था जागीर परगने के जाट किसान "जाट कृषक सुधारक सघ" के नेतृत्व में उठ खड़े हुए थे। यह सगठन 1938 मे स्थापित हुआ था।[53] वास्तव मे यह एक समाज सुधारक सगठन था जो जाट समुदाय में उनके उत्थान हेतु कार्य कर रहा था। जब जागीरदारों ने किसानों पर जुल्म करना आरम्भ किया तो जाट समुदाय के लोग सबसे अधिक पीड़ित थे। ऐसी स्थिति में जाट कृषक सुधारक सभा जाटों की रक्षा में आगे आई। यह राजनीतिक सगठन नहीं था एव स्वाभाविक तौर पर इसकी गतिविधियां लोक परिषद के विरुद्ध नहीं थी। 19 सितम्बर, 1941 को जाट कृषक सुधारक सभा ने एक किसान सभा का आयोजन कर जागीर क्षेत्रो मे भूमि बन्दोबस्त व किसानों को स्थाई भू स्वामित्व के अधिकार प्रदान करने की माँग की। इसके अतिरिक्त इसमें अधिक राजस्व को समाप्त करने लाग-बाग व बेगार समाप्त करने तथा जागीरदारों को उनकी निरकुश शक्तियों से वचित करने की मांग भी की गई।[54]

उपरोक्त गतिविधियों ने किसानों के पक्ष को मजबूत करते हुए पहले से ही छेड़े गए किसान आन्दोलन को बल प्रदान किया। अब बदलती हुई परिस्थिति में मारवाड़ लोक परिषद् व जाट कृषक सुधारक सघ (सभा) के साथ राजनीतिक व सामाजिक प्रतिस्पर्धा होने के कारण किसान सभा के लिए यह एक मजबूरी बन गई थी कि वह किसान हित के मुद्दों को अपने हाथ में ले। किसान सभा ने किसानों की उन माँगों के सन्दर्भ में अनेक बुलेटिन जारी की जिनके लिए लोक परिषद व जाट कृषक सुधारक सभा सघर्ष कर रहे थे। किसान सभा द्वारा जारी बुलेटिनों में मुख्य जोर लाग-बाग, बेगार व अधिक भू-राजस्व की समाप्ति पर दिया गया था।[55] जोधपुर सरकार ने किसानों में किसान सभा की लोकप्रियता बढ़ाने के उद्देश से 16 अक्टूबर, 1941 को एक विशेष भू-राजस्व एव लाग-बाग समिति नियुक्त की। इस समिति द्वारा बुलेटिनों के माध्यम से किसान सभा द्वारा प्रस्तुत की गई शिकायतों की जाँच करना शुरू हुआ।[56] इस समिति के

गठन के साथ ही राज्य के प्रत्येक कौने से किसानों ने भारी सख्या में अर्जिया प्रस्तुत की। यह समिति भी बेकार सिद्ध हुई क्योंकि इसने वास्तव में कोई सारगर्भित कार्य नहीं किया। वास्तव में इस नई समिति ने भ्रान्तिया उत्पन्न की तथा किसान आन्दोलन को कमजोर करने के लिए मामले को अनावश्यक रूप से लम्बा खीचा। जनवरी, 1942 के अन्त तक किसान सभा भी राज्य की ओर से पूरी तरह निराश हो चुकी थी एव ऐसी स्थिति में किसान सभा ने अवैध करो का मुकाबला करने के लिए किसानों का खुला आह्वान किया। जिस सगठन की स्थापना सत्ता की सेवा व समर्थन के लिए हुई थी वह अब वास्तविक जनसगठन के रूप में परिवर्तित हो रहा था। किसान सभा की ध्वनि परिवर्तन का कारण जागीरदारों की दमनात्मक नीतिया थी। जागीरदारो ने किसान सभा के नेताओ व कार्यकर्त्ताओ को भी नहीं छोडा तथा उन्हें जागीरदारों के गुण्डों ने निर्दयतापूर्वक पीटा एव उनके साथ अपमानजनक व्यवहार किया।

जागीरदारों ने राजपूतों को जातीय आधार पर सगठित कर किसानो पर जो मुख्यत जाट थे, खुले आक्रमण आरम्भ कर दिये। सन् 1942 में जाट राजपूत सघर्ष आरम्भ हो गए थे एव दोनों समुदायों के मध्य बड़े पैमाने पर दगे हुए। इन परिस्थितियों मे किसान सभा का चुप रहना सम्भव नहीं था। किसान सभा ने सरकार के समक्ष बुलेटिनो के माध्यम से किसानों का पक्ष रखते हुए जागीरदारो के अत्याचारो को उजागर किया। सन् 1942 की बुलेटिन सख्या 2 में नागौर परगने के अन्तर्गत गाज नामक जागीर के गाव के बारे मे इस प्रकार उल्लेख किया गया "इस गाव मे लगभग 30 या 40 किसान थे किन्तु भारी कर एव अन्य कारणों के कारण वहाँ केवल 18 किसान है। किन्तु खरदा लाग की राशि वही है जो 40 के स्थान पर 18 द्वारा दी जा रही है। कोर्ट ऑफ वार्डस एव हैसियत के अधिकारी सभी जागीरदार हैं, यू तो अच्छे पढे लिखे हैं किन्तु वे असहाय किसानो के कल्याण पर कोई ध्यान नहीं देते।"

बुलेटिन सख्या 4 में ठिकाना आसोप के बारे मे शिकायत की गई कि "इस वर्ष विभिन्न लागों की दो वर्षो की नगद राशि किसानो द्वारा निरन्तर अकालों एव परिवारो मे विवाहों के कारण जमा नहीं करायी जा सकी किन्तु ठिकाने के सशस्त्र दलों ने प्रमुख किसानो को बन्दी बनाया उन्हें आसोप के कोर्ट मे बन्दी रखा गया सख्ती बरतते हुए अगस्त 26, 1941 तक 500 रूपये ऐठे। यह राशि किसानों के 60 प्रतिशत उत्पादित अनाज की वसूली के अतिरिक्त थी। यह अगस्त में आसोप कोर्ट मे 200 जागीरदारों व राजपूतों की विशाल सभा का सीधा व तात्कालिक परिणाम था जहा आसोप के ठाकुर साहब को बल प्रयोग हेतु उकसाया गया था।"

किसान सभा ने जनवरी, 1942 के आगे भी अपने जागीरदार विरोधी अभियान को जारी रखा। किसान सभा ने लोक परिषद् को सहयोग नहीं किया किन्तु इसकी गतिविधियों से परिषद् को अप्रत्यक्ष रूप से लाभ मिला क्योकि दोनों के मुद्दे समान थे। कुल मिलाकर 1942 ने जोधपुर राज्य का किसान आन्दोलन एक नए युग में प्रवेश कर चुका था।[57] वैसे किसान आन्दोलन अगले कई वर्ष तक विभाजित ही रहा किन्तु किसानों

के समर्थको क्रमश लोक परिषद् व किसान सभा के मध्य कोई विरोध नही रह गया था।

मारवाड़ लोक परिषद एवं चन्द्रावल की दुःखद घटना 1942 :

मारवाड लोक परिषद जोधपुर राज्य में किसान आन्दोलन का सचालन करने वाली प्रमुख सस्था बनी रही। परिषद् का मुख्य उद्देश्य जोधपुर राज्य मे जिम्मेदार सरकार स्थापित करना था, किन्तु यह तभी सम्भव था जब उसे अधिक से अधिक जनसमर्थन प्राप्त हो। अत जनसमर्थन प्राप्त करने व राजनीतिक वर्चस्व स्थापित करने के ध्येय से लोक परिषद् किसान आन्दोलनों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों मे पूरा ध्यान केन्द्रित कर रही थी। 8 फरवरी, 1942 को मारवाड लोक परिषद का खुला अधिवेशन लाडनू में आयोजित हुआ जिसमे सभी भागो के राजनीतिक कार्यकर्ताओ व सगठनों ने भाग लिया। इस अधिवेशन मे जागीरो के किसानो की समस्याओ पर खुलकर चर्चा हुई तथा जागीर क्षेत्रो मे किसानों पर हो रहे अत्याचारो की कडी निन्दा की गई। लोक परिषद् ने विशेष भू–राजस्व एव लाग–बाग समिति द्वारा लागों व बेगार समाप्ति की दिशा में कुछ न करने के लिए भर्त्सना की एव इनकी तुरन्त समाप्ति की माँग की। परिषद् ने जोधपुर सरकार से माँग की कि इन जागीरी अत्याचारो का अन्त हो, गैर कानूनी लाग–बाग व बेगार पर रोक लगाई जाए तथा महाराजा की छत्रछाया मे राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना की दिशा में तुरन्त कारगर कदम उठाए जाएँ।[*] रणछोड़दास गट्टानी ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में समसामयिक स्थितियों का मूल्याकन व विश्लेषण किया। उसने टिप्पणी की कि बेरोजगारी निरन्तर बढती जा रही है तथा किसानों की आय बहुत थोड़ी है। आम जनता थानेदार हवलदार एव जागीरदारों के जुल्मों का शिकार है। उसने आगे जोर देकर कहा कि जब तक परिषद् उत्तरदायी शासन प्राप्त नहीं कर लेती है तब तक मन्त्री लोगों के प्रति उत्तरदायी नही होंगे तथा प्रशासन अपने आपको जनसेवक नहीं मानेगा, जब तक यह सम्भव नहीं होगा तब तक किसानों, मजदूरों व बेरोजगारों के दु ख समाप्त नहीं होंगे।[*] अधिवेशन की समाप्ति के पश्चात् लोक परिषद् के कार्यकर्ताओं ने मारवाड़ के ग्रामीण क्षेत्रों में पहुँचकर लोगों को प्रोत्साहित किया कि वे राज्य के अधिकारियों व जागीरदारों के अत्याचारों के विरुद्ध अहिंसात्मक ढग से सघर्ष के लिए तैयार रहें।

लाडनू अधिवेशन के पश्चात् किसानों के बीच परिषद् की गतिविधिया काफी तीव्र हो गई थीं जिससे विशेष रूप से जागीरदार बौखला गए थे। जागीरदारों ने खुलकर किसानों पर हिंसात्मक जुल्म ढाना आरम्भ कर दिया था। इस प्रकार मारवाड़ के जागीरदारों ने समय की माँग को ठुकराकर आतक व अत्याचार का रास्ता अपनाया। इस आतक व अत्याचार की चरम परिणिति चन्द्रावल की दु खद घटना के रूप में हुई। इस घटना के पूर्व रोडू व मीठड़ी ठिकानों में जागीरदारों के अत्याचारों की घटनाएँ घट चुकी थी। रोडू के जागीरदार द्वारा चौधरी उमाराम के घर को जला दिया गया था तथा मीठड़ी ठिकाने में मारवाड़ लोक परिषद् के कर्मठ नेता स्वामी चैनदास की पिटाई की। सबसे शर्मनाक घटना रोडू ठिकाने में घटी जब रोडू के जागीरदार के द्वारा उमाराम चौधरी के

घर के जलाने की घटना की जाँच करने हेतु लोक परिषद् का वरिष्ठ नेता छगनराज चौपासनी वाला रोड़ू ग्राम मे पहुँचा तो वहाँ के जागीरदार ने उसे औरतो द्वारा झाडुओ से पिटवा कर अपमानित किया।[70]

मारवाड़ लोक परिषद् व जागीरदारों के मध्य खुला सघर्ष आरम्भ हो गया था। परिषद् के लोकप्रिय नेता जयनारायण व्यास ने उग्र रूप धारण कर लिया था। राजशाही और सामन्तशाही का उन्होने खुलकर तीखा विरोध किया। सन् 1942 में सामन्तशाही की आलोचना करते हुए व्यास ने क्रान्तिकारी भावना से ओतप्रोत एक कविता लिखी, उसका एक अश यहा प्रस्तुत है –

"भूखे की सूखी हड्डी से, बज्र बनेगा महाभयकर।
ऋषि दधीचि को ईर्ष्या होगी नेत्र नया खोलेंगे शकर।
कल ही तुझ पर गाज गिरेगी तेरा सभी समाज गिरेगा।
तख्त गिरेगा ताज गिरेगा नहीं रहेगी सत्ता तेरी,
बस्ती तो आबाद रहेगी जालिम तेरे सब जुल्मों की
उसमें कायम याद रहेगी।"

व्यास की कविता व वाणी ओजस्वपूर्ण थी एव इसे लोक परिषद् की नीति माना जाता था। किसानों में चेतना उत्पन्न करने मे जयनारायण व्यास ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जोधपुर राज्य में 1942 का आन्दोलन एक अनूठा ही आन्दोलन था। न केवल राजपूताना की देशी रियासतों मे ही बल्कि सम्पूर्ण भारत में इस आन्दोलन का पृथक स्थान है। जहाँ अन्य क्षेत्रों मे 1942 मे अगस्त माह के दौरान भारत छोडो आन्दोलन के साथ अन्य जन आन्दोलन भी हुए थे वही जोधपुर राज्य में जन आन्दोलन 1942 के प्रारम्भ में ही अपनी चरम सीमा पर थे। जोधपुर राज्य मे जागीरदारो व राज प्रशासन के दमनात्मक प्रयासो व अत्याचारों के उपरान्त भी लोक परिषद् का जागीर विरोधी आन्दोलन तीव्र होता जा रहा था। लोक परिषद् के नेता कार्यकर्त्ता व अनुयायी सत्ता पक्ष के जुल्मो का साहसपूर्वक मुकाबला करते हुए आगे बढ रहे थे। मार्च 1942 मे लोक परिषद् ने आन्दोलन तेज कर दिया था।

28 मार्च, 1942 को मारवाड़ लोक परिषद् ने सम्पूर्ण जोधपुर राज्य मे उत्तरदायी सरकार दिवस मनाया।[71] लोक परिषद् के कार्यकर्त्ताओ ने बडे गाँवों व कस्बों मे प्रभात फेरियाँ निकाली सभाएँ आयोजित कीं तथा सत्ता विरोधी भाषण दिए। इसी शृखला में मारवाड लोक परिषद् की चण्डावल शाखा ने 28 मार्च, 1942 को उत्तरादायी सरकार दिवस मनाने की योजना बनाई। चन्डावल सोजत परगने के अन्तर्गत एक जागीर गाव था। सम्पूर्ण परगने से लोक परिषद् के कार्यकर्त्ताओं व नेताओं को इस दिवस के आयोजन में भाग लेने हेतु चण्डावल आमन्त्रित किया गया था। भारी सख्या मे कार्यकर्त्ता चन्डावल पहुँचे। इस आयोजन से चन्डावल का जागीरदार अत्यधिक बौखलाया हुआ था। क्रोधित जागीरदार ने अपनी पुलिस, नौकरों एव गुण्डों को मारवाड लोक परिषद् के कार्यकर्त्ताओं

पर हमला करने का आदेश दिया। ठिकाने के लोगो ने परिषद् के कार्यकर्त्ताओ पर लाठिया एव भालो से हमला कर दिया जिसमे परिषद् के 25 कार्यकर्त्ता बुरी तरह घायल हुए।[62] वास्तव मे लाडनू सम्मेलन के पश्चात् जागीरदार अत्यधिक क्रोधित हो गए थे एव 28 मार्च 1942 को निमाज, गुन्दोज, रोडू व धामली ठिकानो मे भी चन्डावल जैसी घटनाएँ घटी।

अप्रेल 1942 में उपरोक्त घटनाओ के विरोध में लोक परिषद् ने सत्याग्रह आरम्भ कर दिया था। इन घटनाओ की राष्ट्रीय स्तर पर आलोचना हुई। 10 मई 1942 के "हरिजन" मे महात्मा गाँधी ने जागीर क्षेत्रो मे घटी इन घटनाओ की निन्दा की थी चन्डावल मे 28 मार्च 1942 के पश्चात् लोक परिषद के नेता जयनारायण व्यास के चन्डावल प्रवेश पर धारा 144 के तहत निषेधाज्ञा लगा दी थी।[63] सरकार ने अपराधी जागीरदारों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नही की थी। मई 1942 मे परिषद के आन्दोलन ने नया स्वरूप धारण कर लिया था। अब आन्दोलन जोधपुर शहर मे केन्द्रित हो गया था। लोक परिषद् की प्रतिनिधि सभा के निर्णयानुसार 11 मई 1942 को जयनारायण व्यास को आन्दोलन सचालन हेतु डिक्टेटर नियुक्त किया गया था।[64] इस आन्दोलन को मारवाड़ में उत्तरदायी सरकार स्थापित करने के लिए आरम्भ किया गया था क्योंकि 28 मार्च, 1942 की घटनाओ ने यह स्पष्ट कर दिया था कि राज्य मे प्रशासनिक व्यवस्था थी ही नहीं। लोक परिषद् ने मई 1942 के आन्दोलन मे प्रमुख जोर मारवाड में उत्तरदायी शासन की स्थापना की माँग पर दिया। प्रशासन ने अपना दमनात्मक रवैया जारी रखा। मई, 1942 के अन्त तक परिषद के प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिए गए थे। तत्पश्चात् जोधपुर के बाहर जोधपुर के मूल निवासी राजनीतिक कार्यकर्त्ताओ ने भी जोधपुर पहुँचकर सत्याग्रह किया और गिरफ्तारियाँ दीं। इस आन्दोलन के दौरान लोक परिषद् की किसान समर्थन नीतिया प्रमुखता से प्रचारित हुई। गाँधीजी स्वय इस आन्दोलन के प्रति सजग रहे थे। महात्मागाँधी ने एक बार फिर अपने प्रतिनिधि श्री प्रकाश को जोधपुर भेजा। प्रथम बार उसे जोधपुर मे आन्दोलन के फलस्वरूप जो स्थिति बनी थी, उसका अध्ययन करने भेजा था। इस बार उसे जोधपुर सरकार और लोक परिषद् के बीच समझौते के लिए बातचीत करने का कार्य सौंपा था। गाँधीजी ने आन्दोलन आरम्भ होने के पूर्व अपने समाचार पत्र हरिजन मे लोक परिषद् की माँगों का उल्लेख किया था। वे इस प्रकार थी[65] –

1 सन् 1940 के लोक परिषद् और दरबार के बीच समझौते को फिर से दोहराना चाहिए।
2 जोधपुर राज्य मे और विशेषकर जागीर क्षेत्र में कानून का राज्य स्थापित हो जिससे नागरिक स्वतत्रता का उपभोग कर सकें।
3 सलाहकार सभा के रूप में जारी किए गए शासन सुधारों को रद्द किया जाए और उनके बदले में राज्य की कौंसिल ने जो वैधानिक सुधार स्वीकृत किए थे और उन्हें महाराजा के स्वीकार भी कर लिया था, उन्हें कार्यान्वित किया जाए।
4 सन् 1940 के म्युनिसिपल एक्ट को लागू किया जाए।
5 जागीरो में नियमित लटाई का कारगर और सन्तोषजनक प्रबन्ध किया जाए।

6 गैर कानूनी लाग–बाग बन्द हों। जागीर क्षेत्र के लिए एक आयोग की नियुक्ति हो यह आयोग करो की वसूली आदि के सम्बन्ध में सिफारिश करे।
7 जागीरदारों के हथियारो का नियमन करे। हथियारों का मनमाना उपयोग रोक जाए।
8 चन्डावल, लाडनू, रोडू आदि काड लाठी चार्ज और अन्य ज्यादतियो की जाँच करवाई जाए।

महात्मा गाँधी ने इन माँगों पर अपनी टिप्पणी करते हुए 3 अगस्त 1942 के हरिजन अक मे लिखा था–

"इन माँगो मे ऐसी कोई बात नहीं है जिस पर किसी को कोई एतराज हो सके इसमें कोई व्यर्थ की बात नहीं हैं। इसमें राजस्थान रियासतों की मर्यादा का ध्यान रखा गया है। इन्ही माँगों की पूर्ति के लिए जयनारायण व्यास और उसके साथी आज जेल के अन्दर हैं और श्री बालमुकुन्द बिस्सा को अपनी जान गुमानी पड़ी है। यही वजह है कि बहुत से जोधपुरियों, जिनमें स्त्रिया भी शामिल हैं सविनय अवज्ञा करने का निश्चय किया है, जोधपुर के लिए एक अनोखा दृश्य है। मैं आशा करता हूँ कि जोधपुर दरबार लोक परिषद् की इन मामूली माँगों को मजूर कर लेगें। मैं यह भी आशा करता हूँ कि जोधपुर की जिस प्रजा ने कष्ट सहन के द्वारा अपने ध्येय की प्राप्ति करने का निश्चय किया है वह उस वक्त तक दम नही लेगी जब तक अपने तात्कालिक ध्येय को सिद्ध न कर ले।"

लोक परिषद् द्वारा जागीरदार विरोधी आन्दोलन व्यवहारिक तौर पर मई 1942 मे समाप्त हो गया। तत्पश्चात् लोक परिषद् का आन्दोलन जोधपुर शहर तक सीमित रह गया था। अब इसकी माँगें नागरिक अधिकारो, राजनीतिक नेताओ को रिहा करने एव उत्तरदायी शासन की स्थापना रह गई थी। अपने प्रमुख नेताओं की अनुपस्थिति मे परिषद् के द्वितीय पक्ति के नेताओं ने आन्दोलन जारी रखा, क्योंकि सभी प्रमुख नेताओ को मई, 1942 के अन्त तक बन्दी बना लिया गया था। 8 अगस्त, 1942 को अखिल भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने भारत छोडो आन्दोलन छेड़ने का निर्णय लिया तथा 9 अगस्त को काग्रेस के प्रमुख नेताओं को बन्दी बना लिया गया। इसी के साथ भारत छोडो आन्दोलन का सूत्रपात हुआ, जिसके अनुकरण मे देशी रियासतों के राजनीतिक सगठन पीछे नहीं रहे थे। जोधपुर राज्य के आन्दोलन में मई 1942 के पश्चात् जो शिथिलता आई थी अब एक बार फिर तेजी का दौर आरम्भ हुआ। मई 1944 तक मारवाड लोक परिषद् का आन्दोलन निरन्तर चलता रहा तथा इसके नेताओं की रिहाई के बाद ही समाप्त हुआ। मई, 1942 से मई 1944 अर्थात 2 वर्ष तक मारवाड लोक परिषद् की गतिविधियाँ जोधपुर शहर तक ही सीमित रही, किन्तु इसने कभी भी किसान हितो को नहीं भुलाया।

मारवाड किसान सभा के नेतृत्व में किसान आन्दोलनः

मई 1942 के पश्चात् मारवाड़ किसान सभा काफी सक्रिय हो गई थी, क्योंकि इसके पश्चात् लोक परिषद् की गतिविधियाँ ग्रामीण क्षेत्रो मे कमजोर पड़ गई थी। अवसर

का लाभ उठाते हुए अपना राजनीतिक व सामाजिक आधार विस्तृत करने के उद्देश्य से किसान सभा ने ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी गतिविधिया बढ़ा दी थी। किसान सभा व जागीरदारों के मध्य भी भारी अर्न्तविरोध व्याप्त थे किन्तु कुछ कारणों से जोधपुर राज्य किसान सभा के प्रति अत्यधिक उदार था। प्रथम, राज्य किसान सभा के माध्यम से लोक परिषद् के राजनीतिक आधार को क्षीण करना चाहता था। दूसरा, किसान आन्दोलन ने जागीरदारों के अस्तित्व को गम्भीर चुनौती दी थी। निराशा के दौर में जागीरदार राज्य से मदद चाहते थे, जिससे लम्बे समय पश्चात् जागीरदारों पर राज्य का कड़ा नियंत्रण स्थापित हुआ था। अत जोधपुर राज्य किसान सभा द्वारा चलाई जा रही गतिविधियों का विरोधी नहीं था।

9 जून, 1942 को मारवाड़ किसान सभा ने बुलेटिन जारी करते हुए गैर कानूनी लाग–बागों की समाप्ति व किसानों को कर न देने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए किसान आन्दोलन छेड़ने के लिए धन्यवाद ज्ञापित किया, किन्तु दूसरी ओर किसान सभा ने उत्तरदायी शासन हेतु लोक परिषद् के आन्दोलन का विरोध भी किया। किसान सभा की मान्यता थी कि लोक परिषद् अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिए किसान हितों की अनदेखी कर रही है। किसान सभा के विचार में यह किसानों के हित में नहीं था। जबकि लोक परिषद् 1942 के आन्दोलन के दौरान इस बात का पूर्ण अनुभव कर चुकी थी कि जब तक उत्तरदायी शासन की स्थापना नहीं होती तब तक किसानों की समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं हैं। अत राज्य के प्रति किसान सभा व लोक परिषद् के बीच भारी मतभेद व्याप्त था। किसान सभा यह मानने के लिए तैयार ही नहीं थी कि मारवाड़ की तात्कालिक सरकार गैर जिम्मेदार सरकार है।[4] वास्तव मे किसान सभा लोक परिषद् के आन्दोलन का खुला विरोध करते हुए परिषद् पर राज्य के हमले से उत्पन्न स्थिति का लाभ उठा रही थी। इस कथित बुलेटिन के माध्यम से किसान सभा ने लम्बे समय से लम्बित माँगें पुन प्रस्तुत की। इसकी मुख्य माँगें निम्नानुसार थी –

1 जागीर गावों में अमर्यादित व अन्यायपूर्ण लाग–बागों को तुरन्त प्रभाव से समाप्त किया जाए।
2 किसानों व जागीरदारों के बीच सम्बन्धों व दोनों के अधिकार और विशेषाधिकार की व्याख्या करने के लिए एक काश्तकारी अधिनियम पारित किया जाए।
3 जागीरों में भूमि बन्दोबस्त किया जाना चाहिए।

सरकार ने इन माँगों के प्रति सहानुभूति पूर्ण रूख अपनाया था, किन्तु मारवाड़ राजपूत सभा व जागीरदार सभा के विरोध के कारण इनको माना नहीं जा सका। इसके उपरान्त भी किसान सभा के अथक प्रयासों ने सरकार को जागीरों में भूमि बन्दोबस्त हेतु आदेश पारित करने के लिए बाध्य कर दिया था। 2 दिसम्बर, 1943 को राजस्व मन्त्री ने जागीर गावों में भूमि बन्दोबस्त का कार्य आरम्भ करने के आदेश प्रसारित किए।[5]

जागीरदारों ने सरकार द्वारा जागीर बन्दोबस्त कार्य के बहिष्कार का निर्णय

लिया।[68] जागीरदारों ने अपने सगठनों के माध्यम से इसका विरोध करने का निर्णय लिया। उन्होंने बन्दोबस्त कार्य में अवरोध उत्पन्न कर यह स्थिति पैदा कर दी थी कि वर्ष 1945 के अन्त तक इस सम्बन्ध में कुछ नहीं किया जा सका। महाराजा के प्रति वफादार होने के कारण किसान सभा आन्दोलन को पूरी ताकत से आगे बढाने में असमर्थ थी। किसान सभा ने किसानो को न्याय दिलाने हेतु कुछ कानूनी प्रयास भी किए। किसान सभा द्वारा उठाए गए सभी कानूनी कदम किसानों को सामन्ती शोषण व दमन से निजाद दिलाने में असफल रहे। मारवाड़ किसान सभा ने 25 सितम्बर, 1945 को जोधपुर में किसान सम्मेलन का आयोजन किया। सभा ने भारत के अनेक प्रमुख्य किसान नेताओं को इस सम्मेलन में आमन्त्रित किया जो अधिकाश जाट थे। उस समय पजाब के चौधरी छोटूराम उत्तरी भारत के प्रमुख जाट नेता थे। उसने भी इस किसान सम्मेलन में भाग लिया। स्वय महाराजा ने अपने मन्त्रियों व अधिकारियों सहित इस सम्मेलन में भाग लिया था। जोधपुर राज्य के उपपुलिस महानिरीक्षक बलदेव राम मिर्धा के आमत्रण पर महाराजा इसमें सम्मिलित हुआ था, जैसा कि विदित है कि मिर्धा किसान सभा के प्रमुख सगठनकर्त्ता व इस सम्मेलन के आयोजक थे।[69] बलदेव राम मिर्धा ने अपने सदेश में किसानों को कहा कि "आपको किसी भी प्रकार का हिसात्मक आन्दोलन नहीं करना है। हम जागीरदारों के कत्तई खिलाफ नहीं है और पाप से घृणा करें, पापी से नहीं। हम जागीर व्यवस्था की बुराईयों के विरुद्ध हैं जो हमें मिटानी हैं। जागीर व्यवस्था की बुराइयाँ जो आपकी दुर्दशा के लिए जिम्मेदार हैं को न्यायालयों में लड़ा जाना चाहिए, आपको निश्चित्त रूप से न्याय मिलेगा।"[70]

किसान सभा का उपरोक्त सम्मेलन भी बेकार ही सिद्ध हुआ क्योंकि इसमें किसानों के हित में सघर्ष की कोई स्पष्ट भूमिका नहीं बनी थी। न्यायालयों मे किसान हित के मामले ले जाना भटकाव के अलावा कुछ नहीं था। तार्किक दृष्टि से भी सामन्ती कानून व्यवस्था के अन्तर्गत कानूनी रूप से सामन्तवाद के विरुद्ध लड़ना सम्भव नही था अर्थात् सामन्तवाद के शोषण व दमन के हथियार से उसे ही मारा जाना तर्कसगत नहीं जान पड़ता। प्रचलित कानून व न्याय व्यवस्था सत्ताधारियों के सुरक्षा कवच के रूप मे कार्य कर रही थी एव जागीरदार सत्ताधारियों मे प्रमुख घटक थे। उदाहरणार्थ 1936 में राज्य ने अनेक लागों को समाप्त कर दिया था, किन्तु जागीरदारों ने इस निर्णय की पालना नहीं की। पुन 1938 मे न्यायालयों ने भी अनेक लागों को गैर कानूनी करार दे दिया था। किन्तु 1945 तक जागीरदार लाग–बागों की वसूली निरन्तर रूप से करते रहे। इतना ही नहीं बल्कि 1945 में कुछ जागीरों में नई लाग–बागें आरम्भ की गई थी।

लोक परिषद् एवं किसान सभा का संयुक्त आन्दोलन एवं डाबरा काण्ड :

किसानों पर जागीरदारों का अत्याचार एव दमन दिनों–दिन बढता जा रहा था। किसान सभा के अनुयायी इसकी नीतियों से निराश होते जा रहे थे। प्रारम्भ में किसान सभा लोक परिषद् द्वारा उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु आन्दोलन चलाने के पक्ष में नहीं थी। जनवरी 1946 में किसान सभा की नीति में परिवर्तन आया। किसान सभा का

मत स्पष्ट हो गया था कि उत्तरदायी शासन की स्थापना के पश्चात् ही जागीरदारी प्रथा का उन्मूलन सम्भव हो सकेगा। ऐसी स्थिति मे किसान सभा लोक परिषद के उत्तरदायी शासन की स्थापना के ध्येय की समर्थक हो गई थी। अत जनवरी, 1946 में ही दोनों सगठनों ने उत्तरदायी सरकार की स्थापना हेतु सयुक्त आन्दोलन आरम्भ कर दिया। किसान सभा और लोक परिषद ने अपने सयुक्त आन्दोलन के अन्तर्गत जागीर प्रथा की समाप्ति हेतु सरकार के समक्ष माँग प्रस्तुत की। दोनों सगठनों के कार्यकर्त्ता ग्रामीण क्षेत्रों में पहुँचकर जनमानस तैयार कर रहे थे। जागीरदारो द्वारा किसानो पर किए जा रहे अत्याचारो की कोई सीमा नहीं रह गई थी। सयुक्त आन्दोलन ने जागीरदारों को चिंतित कर दिया था इसलिए वे और अधिक हिंसक वारदातो पर उतर आए थे। इस समय तक किसान सभा को प्राप्त राज्य का समर्थन व सहयोग समाप्त हो चुका था। अत सरकार स्वय भी किसान व राजनीतिक आन्दोलन का दमन करना चाहती थी। सरकार के मूक समर्थन से प्रोत्साहित होकर जागीरदार किसानों को भूमि से बेदखल कर उन पर मनमाने ढग से अत्याचार करने लगे। जागीर प्रथा की समाप्ति के उद्देश्य से चल रहे राजनीतिक आन्दोलन को कुचलने के लिए जागीरदारों ने अत्यधिक दमनात्मक हथकण्डे अपनाए। उन्होंने किसानों के बीच एक आतक का वातावरण उत्पन्न कर दिया था। न केवल साधारण किसानों बल्कि उनके नेताओं को भी आतक का शिकार बनाया जा रहा था। जागीरदारों व किसानों के मध्य गम्भीर टक्करें हो रही थी। जागीरदारों व परिषद् तथा किसान सभा के नेताओं के मध्य अर्न्तविरोध तीव्र हो गऐ थे। इनके मध्य सघर्ष अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। जागीरदारों द्वारा किसान नेताओं पर हो रहे हमलों की चरम परिणिति 13 मार्च, 1947 को डाबरा गाँव में हुई जहां जागीरदारों ने एक किसान सम्मेलन पर ही हमला बोल दिया था।

13 मार्च, 1947 को डीडवाना परगने के डाबरा नामक गाँव में मारवाड़ लोक परिषद् व मारवाड़ किसान सभा ने एक सयुक्त सम्मेलन आयोजित करने का निर्णय लिया।[7] इस सम्मेलन की घोषणा ने जागीरदारों को विचलित कर दिया था एवँ उन्होंने राजनीतिक आन्दोलनकर्त्ताओं को एक पाठ पढाने का निश्चय किया। 13 मार्च 1947 को प्रात 9 बजे जब सम्मेलन की कार्यवाही आरम्भ हुई तो जागीरदारों ने अपनी जाति के लोगों के साथ मिलकर इस सम्मेलन को घेर लिया। इस सम्मेलन के नेताओं व सहभागियों को लाठियों व घातक हथियारों से निर्दयतापूर्वक पीटा। गाव को जागीरदारों के गुण्डों ने घेर लिया तथा सम्मेलन के किसी भी सहभागी को बाहर नहीं निकलने दिया। इस गाव में किसानों के घरों को लूटकर जला दिया गया तथा अनेक महिलाओं के साथ बलात्कार तक किया गया। इस घटना में 12 लोग मारे गए तथा सैंकड़ों घायल हुए। नेताओं को बन्दी बनाकर रावले में ले जाया गया जहाँ उन्हें अपमानित किया तथा उन्हें मोलासर के सेठ डूगरजी के हस्तक्षेप के बाद मुक्त किया गया। इस घटना का विस्तार पूर्वक वर्णन डा रामप्रसाद व्यास ने इस प्रकार किया है जिसका यहाँ विवरण प्रासगिक रहेगा।

डा व्यास के अनुसार "सरकार की मूक साझेदारी से प्रोत्साहित होकर जागीरदार किसानो को भूमि विहीन करने लगे तथा मनमाने ढग से उन पर अत्याचार किए। हर रोज किसानो पर किए जा रहे अत्याचारो के समाचार लोक परिषद् के कार्यालय मे आने लगे। परिषद इन्हें अनदेखे नहीं कर सकती थी। उसने किसानो को सगठित करने के उद्देश्य से जगह-जगह गावों मे किसान सम्मेलनों का आयोजन किया। 13 मार्च 1947 ई को डाबरा (डीडवाना परगना) गाँव में किसान सभा और लोक परिषद् के तत्त्वाधान मे एक किसान सम्मेलन करने का निश्चय किया था। लोक परिषद् के नेता मथुरा दास माथुर द्वारकादास पुरोहित, राधाकृष्ण बोहरा किशन लाल शाह नरसिंह कछावाह बशीधर पुरोहित (ज्वाला) हरीन्द्र कुमार चौधरी सी आर चौपासनी वाला आदि सम्मेलन में भाग लेने डावरा पहुँचे और वे स्थानीय नेता मोती लाल चौधरी के घर पर ठहरे। जागीरदार इस किसान सम्मेलन को न होने देने के लिए कृत सकल्प थे। उन्होने इसकी तैयारी कर रखी थी। जागीरदारों के आह्वान पर सैकडो की सख्या मे राजपूत रावले में पहले से ही एकत्रित थे। जैसे ही लोक परिषद् के कार्यकर्त्ता व नेता वहाँ पहुँचे उन्होंने मोती लाल के घर पर लाठियों व तेज धार वाले हथियारों से धावा बोल दिया और नेताओं की नृशसतापूर्ण पिटाई की। मोती लाल की माता के पैर काट दिए। उसके पिता व भाई की हत्या कर दी। उसकी पत्नि के मुख को विरूप कर दिया सभी नेताओ को घायल की स्थिति मे रावले में ले जाया गया। जहाँ घुड़साल में डाल दिया गया। जागीरदारों की ओर से आए हुए गुण्डो ने गाव के घरो को आग लगा दी स्त्रियों के साथ अभद्र व्यवहार किया। गाव में सर्वत्र आतक छा गया।"[12]

उपरोक्त घटना ने सम्पूर्ण राज्य में विरोधी आन्दोलन को और अधिक तीव्र कर दिया था। जन सभाओ व समाचार पत्रों के माध्यम से सघर्ष जारी रहा। इस घटना के पश्चात् उत्तरदायी शासन की स्थापना का आन्दोलन नए युग में प्रवेश कर गया था। इस समय तक यह तो निश्चित हो गया था कि शीघ्र ही भारत को ब्रितानी दासता से मुक्ति मिल जाएगी। 18 जुलाई 1947 को ब्रिटिश ससद मे भारत स्वतत्रता अधिनियम पारित हो गया था जिसके अन्तर्गत 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतत्र हो गया था किन्तु देशी रियासतों का मामला उलझा हुआ ही छोड दिया गया। इन्हें यह विकल्प दिया गया कि वे चाहें तो भारत अथवा पाकिस्तान किसी के साथ मिल सकते हैं अथवा अपना स्वतत्र अस्तित्व रख सकते हैं। ऐसी स्थिति में 15 अगस्त 1947 के उपरान्त देश की बदलती हुई राजनीतिक स्थितियो मे देशी रियासतों के आन्दोलन और भी अधिक तीव्र हो गए थे। जोधपुर राज्य मे भी आन्दोलन तेज हो गया। महाराजा ने घोर प्रतिक्रियावादी सामन्ती व्यवस्था को पुर्नस्थापित कर अपनी स्थिति को मजबूत बनाने की नाकाम कोशिश की। उसने पाकिस्तान में जोधपुर राज्य को सम्मिलित करने का असफल प्रयास भी किया था। जोधपुर मे घट रही घटनाओ के मामले मे भारत सरकार असावधान नहीं थी। भारत सरकार के राज्य के सचिव वी पी मेनन 28 फरवरी 1948 को जोधपुर आए। उसने महाराजा व आन्दोलनकारियो के बीच मध्यस्थता कर महाराजा को उत्तरदायी सरकार

की स्थापना के लिए राजी कर लिया। इसके अनुसार 3 मार्च, 1948 को एक अन्तरिम सरकार का गठन जयनारायण व्यास के नेतृत्त्व में हुआ। जिसमें 3 मन्त्री सम्मिलित किए गए। पुन 17 जून, 1948 को अन्तरिम मन्त्रिमण्डल का गठन हुआ। जयनारायण व्यास प्रधानमंत्री तथा मारवाड किसान सभा के नाथूराम मिर्धा को कृषि मन्त्री बनाया गया।[7] जागीरदारों ने मनमाने तरीके से किसानों को उनकी जोतों से बेदखल करना आरम्भ कर दिया था। 22 जून, 1948 को प्रधानमंत्री ने एक अधिसूचना जारी की कि जागीरदारों द्वारा की गई मनमानी बेदखली को सही नहीं माना जाएगा।[8] 6 अप्रैल, 1949 को (जोधपुर राज्य के 30 मार्च, 1949 को राजस्थान मे विलय के पश्चात्) मारवाड़ टेनेन्सी एक्ट पारित हुआ इसके द्वारा किसानो को उनकी जोतों पर खातेदारी अधिकार प्रदान कर दिए गए। इस प्रकार लम्बा संघर्ष सफलता के साथ सम्पन्न हुआ।

संदर्भ

1. सौभागमल माथुर स्ट्रगल फॉर रिस्पान्सिबुल गवर्नमेन्ट इन मारवाड़, जोधपुर, 1982 पृ 14
2. राजस्थान राज्य अभिलेखागार जोधपुर कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड फाइल न 106–ए, पार्ट–प्रथम, 1922
3. वही एवं किशनपुरी मेमोरीज ऑफ मारवाड पुलिस जोधपुर 1936, पृ 142–43
4. राष्ट्रीय अभिलेखागार, फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट, फाइल न 158 पी, 1925
5. जोधपुर स्टेट्स कस्टम सर्क्यूलर न 8 29 अक्टूबर, 1923
6. पेमाराम एग्रेरियन मूवमेन्ट इन राजस्थान जयपुर 1986 पृ 207
7. सौभागमल माथुर पूर्वोक्त, पृ 16
8. रिपोर्ट ऑन दी एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ मारवाड 1923–24 एपेन्डिक्स 22 एवं प्रिन्सली इण्डिया 30 मई 1925 पृ 5
9. सुखवीर सिंह गहलोत का लेख "मारवाड़ पॉलिटिकल पार्टीज एण्ड दी इकनॉमिक अपलिफ्ट ऑफ कल्टीवेटर्स (1921–1949)"
10. सौभागमल माथुर पूर्वोक्त पृ 23–24
11. दी प्रिन्सली इण्डिया 19 अक्टूबर 1928
12. तरुण राजस्थान 25 मार्च, 1929
13. पेमाराम पूर्वोक्त पृ 209
14. वही
15. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, जोधपुर कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड, फाइल नं 3–एफ (ऐडमिनिस्ट्रेशन)
16. द हिन्दुस्तान टाइम्स, 29 सितम्बर, 1929
17. तरुण राजस्थान 18 सितम्बर, 1929
18. राजस्थान राज्य अभिलेखागार जोधपुर जागीर रिकार्ड (जोधपुर शाखा) फाइल नं सी 4/3 पार्ट द्वितीय 1932 (फैसले की प्रति) एवं दी बाम्बे क्रानीकल 23 जनवरी 1930
19. फाइनल रिपोर्ट ऑन दी सेटेलमेन्ट–ऑपरेशन्स ऑफ दी खालसा विलेजेज इन द मारवाड़ स्टेट 1921–26 पृ 20–24
20. अर्जुन 1 अगस्त 1931

21 पेमाराम, पूर्वोक्त पृ 211
22 राजस्थान राज्य अभिलेखागार (जोधपुर शाखा) हवाला रिकार्ड फाइल न सी–6/1 पार्ट–तृतीय 1931
23 दी हिन्दुस्तान टाइम्स 14 नवम्बर 1931
24 राजस्थान राज्य अभिलेखागार (जोधपुर शाखा) महकमा खास फाइल न 8–एच 1920–1931
25 वही
26 वही *जागीर रिकार्ड फाइल न 4/3 1932*
27 वही
[illegible] मारवाड़ गजट 7 मार्च 1932
[illegible] सुमित सरकार पूर्वोक्त पृ 341
30 सौभाग माथुर पूर्वोक्त पृ 63
31 वही पृ 66
32 दी बाम्बे क्रानिकल, 30 दिसम्बर 1939
[illegible] दी जोधपुर गवर्नमेन्ट गजेट (एक्स्ट्रा ऑर्डिनरी) 28 मार्च 1940
34 दी टाईम्स ऑफ इण्डिया 1 अप्रेल 1940
35 दी हिन्दुस्तान टाइम्स 27 जून 1940
36 जयनारायण व्यास, गैर कानूनी लागें पृ 7
[illegible] वही
38 घनश्याम लाल देवड़ा (सम्पादित) सोश्यो–इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ राजस्थान जोधपुर 1986 में प्रकाशित सुखवीर सिह गहलोत का लेख पृ 106–7
39 वीर अर्जुन 20 अप्रेल 1941
40 बृज किशोर शर्मा पीजेन्ट मूवमेन्टस इन राजस्थान पृ 155
41 मारवाड़ लोक परिषद बुलेटिन वर्ष 1 अक 4 मार्च 1941
[illegible] पेमाराम पूर्वोक्त पृ 219
[illegible] राजस्थान राज्य अभिलेखागार जोधपुर कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड फाइल न 79 बस्ता न 8
44 *सुखवीर सिह गहलोत का पूर्वलिखित लेख*
45 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जोधपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिकार्ड फाइल न सी–76 पार्ट–चतुर्थ 1941
[illegible] वही
47 बलदेव राम मिर्धा एक जीवनी जोधपुर 1971 पृ 43
[illegible] वही, पृ 15–19
[illegible] वही पृ 43 एव 49
50 मारवाड़ लोक परिषद बुलेटिन वर्ष 1 अक 8 जुलाई 1941
51 वही, अक 10 सितम्बर 1941
52 वही अक 8–9 1941
53 ठाकुर देशराज रियासती भारत के जाट जन सेवक पृ 170–196
54 वही, पृ 202–203
55 राजस्थान राज्य अभिलेखागार महकमाखास फाइल न 11 जनवरी 1942

56 वही जोधपुर एडमिनिस्ट्रेशन रिकार्ड फाइल न सी–76 पार्ट–पचम 1941
57 1942 में जयनारायण व्यास ने किसानों की ओर राज्य का ध्यानाकर्षण करते हुए "सुण" शीर्षक से एक कविता लिखी जो सामन्तवादी शोषण और किसानों की वेदना को प्रकट करती है
धान घणो उपजावे कुण
पेट नहीं भर पावै कुण
फिर नागी रह जावै कुण
सबने सुख पहुँचावे कुण
उण करसे री बाता सुण।
58 रामप्रसाद व्यास राजस्थान के लोक नायक जयनारायण व्यास जोधपुर 1998 पृ 72
59 सौभाग माथुर पूर्वोक्त पृ 100–101
60 रामप्रसाद व्यास पूर्वोक्त पृ 72
61 जोधपुर आन्दोलन की हकीकत जोधपुर सरकार द्वारा 1942 मे प्रकाशित पुस्तिका पृ 2–3
62 प्रजा सेवक 30 मार्च 1942
63 रामप्रसाद व्यास पूर्वोक्त पृ 73
64 वही पृ 74
65 वही पृ 83–84
66 मारवाड़ किसान सभा की बुलेटिन 9 जून 1942
67 जोधपुर गवर्नमेन्ट गजेट 11 दिसम्बर व 15 दिसम्बर 1943
68 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जोधपुर कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड फाइल न 76 पार्ट–B
69 बलदेव राम मिर्धा एक जीवनी पृ 49
70 वही पृ 51
71 प्रजा सेवक 15 मार्च 1947
72 रामप्रसाद व्यास पूर्वोक्त पृ 96
73 जोधपुर गवर्नमेन्ट गजट (एक्स्ट्रा ऑर्डिनरी) 19 जून 1948
74 वही 26 जून 1948

अध्याय – 6

जयपुर राज्य में किसान आन्दोलन

जयपुर राज्य में किसान आन्दोलन का सूत्रपात 1920 के पश्चात् हुआ। जयपुर राज्य के शेखावाटी क्षेत्र मे नेतृत्वकारी किसान आन्दोलन हुए। इस क्षेत्र का सम्पूर्ण भू-भाग बडे ठिकानो व छोटी जागीरो के नियत्रण में था। भू-अधिकारो की अनिश्चितता ने किसान असन्तोष को जन्म दिया। अन्य राज्यों के जागीर क्षेत्रों की तरह शेखावाटी के किसान घोर प्रतिक्रियावादी सामन्ती शोषण के शिकार थे। सामन्ती शोषण कोई नवीन बात नहीं थी, किन्तु अग्रेजी सरक्षण मे सामन्ती शोषण अत्यधिक बढ गया था तथा उसमें से मानवता व नैतिकता का तत्त्व समाप्त हो गया था। अनेक राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय व स्थानीय घटनाओ ने शेखावाटी में किसान आन्दोलनों को प्रोत्साहित किया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की घटनाओं में प्रथम विश्व युद्ध (1914–18) एव 1917 की रूस की क्रान्ति प्रमुख हैं। इसी प्रकार राष्ट्रीय घटनाओ में चम्पारण (बिहार) व खेड़ा (गुजरात) के किसान आन्दोलन तथा 1920 का असहयोग आन्दोलन प्रमुख घटनाएँ थी जिन्होंने शेखावाटी किसान आन्दोलन के उदय व विकास में योगदान दिया था। स्थानीय घटनाओ में बिजौलिया का किसान आन्दोलन प्रमुख था। बिजौलिया किसान आन्दोलन के एक प्रमुख नेता एव राजस्थान के पत्रकार राम नारायण चौधरी ने शेखावाटी के किसान जागरण का कार्य आरम्भ किया था।[1] "एजेन्ट टू गवर्नर जनरल इन राजपूताना" ने स्पष्ट रूप से लिखा था कि रामनारायण चौधरी ने सीकर के अशिक्षित किसानो मे इस उद्देश्य से कार्य आरम्भ किया जिससे यहाँ भी बिजौलिया जैसा किसान आन्दोलन खड़ा हो सके।[2]

शेखावाटी मे सगठित जनसघर्ष का आरम्भ 1921 मे हुआ। सर्वप्रथम "चिडावा सेवा समिति" नामक सगठन ने 1921 मे शेखावाटी मे जनसघर्ष अखिल भारतीय असहयोग आन्दोलन के राजनीतिक प्रभाव के अन्तर्गत आरम्भ किया था।[3] सितम्बर 1921 में चिडावा सेवा समिति ने स्वदेशी वस्त्र पहनने एव विदेशी का बहिष्कार करने शराब की दुकाने बन्द कराने तथा दरबार एव जागीरदारो के आदेशो की अवहेलना करने आदि कार्यक्रमों के आधार पर आन्दोलन आरम्भ किया था। खेतडी के राजा ने जनता के दिमाग पर आतक स्थापित करने एव चिडावा सेवा समिति के प्रभाव को समाप्त करने के उद्देश्य से इस आन्दोलन के खिलाफ दमनात्मक उपायो का सहारा लिया। समिति के 40 स्वय सेवको को गिरफ्तार कर उन्हें अमानवीय व गैर-कानूनी तरीकों से उत्पीडित किया गया। गिरफ्तार लोगो को बिना कोई आरोप लगाए एक

पखवाडे तक गैर-कानूनी रूप से जेल में बन्दी रखा गया। उनको "ऑल इण्डिया मारवाडी ट्रेडर्स एसोसियेशन" (मारवाडी व्यापारी सघ) कलकत्ता तथा बम्बई के हस्तक्षेप के उपरान्त ही रिहा किया गया था।[4] इस समय ताराचन्द डालमिया अखिल भारतीय मारवाड़ी व्यापारी सघ के अध्यक्ष थे एव चिड़ावा के मूल निवासी थे। इनके प्रयासों से गवर्नर जनरल के हस्तक्षेप के उपरान्त ही गिरफ्तार लोग रिहा हुए थे।

चिड़ावा सेवा समिति का आन्दोलन किसान आन्दोलन तो नहीं था, किन्तु इसे शेखावाटी के जनसघर्ष की प्रथम कड़ी कहा जा सकता है। यह प्रथम अवसर था जब जागीरदारों की निरकुश सत्ता को चुनौती दी गई। शेखावाटी के किसानो को इस आन्दोलन से भारी साहस एव उत्साह प्राप्त हुआ। शेखावाटी के किसान आन्दोलन को मुख्य तौर पर क्रमश तीन चरणों – प्रथम चरण (1922–1930), द्वितीय चरण (1931–1938) एव तृतीय चरण (1939–1947) में बाटा जा सकता है।

प्रथम चरण (1922–1930) :

प्रथम चरण मे किसान आन्दोलन की शुरूआत सीकर ठिकाने से आरम्भ हुई। 28 जून, 1922 को सीकर ठिकाने के राव राजा माधो सिह की मृत्यु के बाद उसका भतीजा ठाकुर कल्याण सिह 36 वर्ष की आयु मे सीकर के राव राजा पद पर आसीन हुआ था। नए राव राजा कल्याण सिह ने मृत राव राजा के मृत्यु सस्कार एव अपनी गद्दी नशीनी के समारोहों में अधिक राशि व्यय होने के बहाने से प्रचलित भू-राजस्व दर में सवाई अथवा ड्‌योढ गुनी वृद्धि कर दी थी। किसानों ने भू-राजस्व में वृद्धि का विरोध करते हुए भू-राजस्व न देने का निर्णय किया। इस पर किसानों को ठिकाने के दमनात्मक उपायों से मुकाबला करना पड़ रहा था। राव राजा कल्याण सिह अनुभवहीन व अकुशल प्रशासक था जिससे अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। निरन्तर दमन और उत्पीड़न , अराजकता, भू-राजस्व की वृद्धि एव अन्याय से दु खी किसान जनवरी 1925 से जयपुर दरबार एव अग्रेज रेजीडेन्ट के समक्ष अपना दु खड़ा सुनाने एव न्याय माँगने हेतु जाते रहे थे । इन किसानों की शिकायत थी कि "सीकर ठिकाने में कृषि भूमि के मापने के लिए कोई अधिकृत जरीब नहीं है, उपयुक्त भूमि दस्तावेज उपलब्ध नहीं है, भू-राजस्व की कोई निर्धारित दर नहीं है एव भू-राजस्व की माँग में निरन्तर वृद्धि होती रहती है तथा भू-राजस्व के अतिरिक्त उन्हें भारी सख्या मे अनाधिकृत लाग-बाग देने पर मजबूर किया जाता है एव भुगतान में असमर्थता व्यक्त करने पर उन्हें काठ में डाल दिया जाता है तथा अनेक तरीकों से उत्पीड़ित किया जाता है एव उन्हें बलात उनकी जोतों से बेदखल कर दिया जाता है। उनसे बेगार ली जाती है जो दरबार के द्वारा प्रतिबन्धित है। ठिकाने के राजस्व अधिकारी उनसे रिश्वत लेते हैं।[5] वर्ष 1923 में सीकर के किसानों के प्रतिनिधि मण्डल निरन्तर जयपुर पहुँचते रहे। किसानों की यह भी शिकायत थी कि जब ये जयपुर दरबार के समक्ष अपनी परेशानिया प्रस्तुत करने आयें तो उन्हें सीकर में अपने गावों मे लौटने पर गिरफ्तार किया गया एव बेरहमी से पीटा गया।[6] जयपुर दरबार ने

मजबूर होकर एक अंग्रेज अधिकारी को सीकर जाकर किसानो की शिकायतो की जाँच करने हेतु नियुक्त किया। इस अधिकारी ने जाँच मे किसानों की शिकायतों व आरोपों को सही पाया तथा किसानों को आश्वासन दिया कि 1922 में की गई राजस्व की वृद्धि समाप्त कर दी जाएगी एव भविष्य में भी भू-राजस्व मे वृद्धि नही की जाएगी। राव राजा ने इस अधिकारी के भू-राजस्व सम्बन्धी समझौते की स्वीकृति प्रदान कर दी।

उपरोक्त समझौता स्थाई नहीं हो सका एव जनवरी 1924 मे अंग्रेज अधिकारी की जयपुर वापसी के साथ ही रावराजा ने समझौते का उल्लघन आरम्भ कर दिया। कुल मिलाकर यह समझौता भग हो गया था। राजस्थान सेवा सघ के नेता राम नारायण चौधरी ने 1922 में बिजौलिया के समझौते के बाद सीकर को अपना कार्य क्षेत्र बना लिया था । चौधरी ने "तरूण राजस्थान" सभाचार पत्र में सीकर के किसानो के पक्ष मे प्रभावी वातावरण उत्पन्न किया। रामनारायण चौधरी का यह कार्य राजस्थान एव भारत तक ही सीमित नही था। उसने लदन से प्रकाशित होने वाले "डेली हेराल्ड" नामक पत्र में भी सीकर के किसानों की समस्याओ के सन्दर्भ में लेख लिखे एव इग्लैण्ड में भी सीकर के किसानो के समर्थन मे वातावरण तैयार करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।[8] इतना ही नहीं बल्कि उसके प्रयासों से मई 1925 मे इग्लैण्ड के हाऊस ऑफ कॉमन्स' मे सदस्य मि० पैट्रिक लारेन्स ने सीकर के किसानों के मामले में प्रश्न पूछा।[9] लदन स्थित भारत सचिव को मजबूर होकर भारत सरकार के राजनीतिक सचिव को जाँच पड़ताल के आदेश देने पडे। इस घटना ने सीकर के किसानों के हित मे प्रभावी माहौल उत्पन्न किया। इग्लैण्ड की ससद मे प्रश्न उठने के उपरान्त सीकर के रावराजा ने 1925 में ही किसानों की शिकायतों के एक जाँच आयोग के गठन का भी नाटक रचा । इस जाँच आयोग में सीकर ठिकाने के चार अधिकारी व आठ किसान मुखियाओ (चौधरी-पटेल) को सम्मिलित किया गया। इस आयोग ने एक ओर मुख्यालय पर किसानों से शिकायतें एव सुझाव आमत्रित किए वहीं दूसरी ओर सीकर के भू-भागों का दौरा भी किया।[10] इस आयोग से कुछ होने वाला तो नही था किन्तु किसानों में इसके गठन से भारी चेतना व उत्साह का सचार अवश्य हुआ ।

अक्टूबर 1925 में अखिल भारतीय जाट महासभा का अधिवेशन अजमेर के समीप पुष्कर में आयोजित हुआ था।[11] इस सम्मेलन मे शेखावाटी के जाट किसान भी भारी सख्या मे सम्मिलित हुए थे एव वहा से विशेष उत्साह लेकर लौटे थे। शेखावाटी मे भी जाट सभा का गठन किया गया।[12] इस प्रकार जातीय आधार पर शेखावाटी में किसान सगठन आरम्भ हुआ। सन् 1925 का वर्ष शेखावाटी के किसान आन्दोलन का महत्त्वपूर्ण वर्ष था। सीकर मे 1925 के जाँच आयोग के अनुसार भूमि की पैमाइश एव बन्दोबस्त का कार्य आरम्भ हो गया था। सीकर के किसानों की प्रारम्भिक सफलता से उत्साहित होकर दिसम्बर, 1925 में शेखावाटी के अन्य ठिकानों मुख्यत

मण्डावा, डूंडलोद, बिसाऊ एव नवलगढ के किसानो ने अधिक राजस्व लाग–बाग बेगार, कृषि विकास शिक्षा एव स्वास्थ्य सुविधाओ के सन्दर्भ मे ठिकानो व शेखावाटी के नाजिम के समक्ष अपनी माँगे रखना आरम्भ कर दिया।[13] इस अभियान ने जागीरदारों को भयभीत कर दिया था। मण्डावा के ठाकुर इन्द्र सिंह ने 10 दिसम्बर 1925 को राज्य कौन्सिल के अध्यक्ष को तार द्वारा स्थिति से अवगत कराया एव किसान असन्तोष को कुचलने के लिए जयपुर राज्य का समर्थन एव सहयोग माँगा था। यह तार इस प्रकार था 'सागासी का मुडिया एव बख्तावरपुरा का रामसी जाट नेता मेरी प्रजा मे गर्म उत्तेजना फैला रहे हैं एव लूना हमेरी गोपालपुरा एव जीसुख का बास गाव मे गम्भीर असन्तोष फैला रहे हैं। शान्ति एव व्यवस्था बनाए रखने के लिए इन आन्दोलनकारियो को कुचलना आवश्यक है इसलिए मेरे ठिकाने ने इनको रोकने के लिए आवश्यक कदम उठाए हैं एव मेरा पक्का विश्वास है कि आप इनको रोकने हेतु शीघ्र आदेश प्रदान करेगे।'[14] जयपुर कौन्सिल के अध्यक्ष एल०डब्ल्यू० रेयनॉल्ड्स ने इस तार पर आदेश करते हुए राज्य के राजस्व मन्त्री को लिखा 'कृपया नाजिम को शीघ्र रिपोर्ट हेतु टेलीग्राम दिया जाए एव पुलिस महानिरीक्षक से मिला जाए। या तो वह स्वय वहा जाए अथवा किसी विश्वसनीय अधिकारी को भेजें। मैं ठिकाने को तब तक सहायता पहुँचाने नहीं जा रहा जब तक कि मुझे विश्वास न हो जाए कि ठिकाना सही है।[15]

ठिकाना मण्डावा के तार पर जाँच की गई तो किसानो के पक्ष को सही माना गया तथा ठिकाने की शिकायत को अनुपयुक्त पाया गया।[16] किसान सघर्ष का विस्तार हो रहा था। कुछ ही समय उपरान्त 17 दिसम्बर, 1925 को डूडलोद के ठाकुर हरनाथ सिह ने भी मण्डावा के ठाकुर की तरह जयपुर राज्य कौन्सिल के अध्यक्ष को पत्र लिखा था एव जयपुर राज्य से सहायता एव समर्थन की माग की थी। राज्य की ओर से ठिकानों को सहायता एव समर्थन नहीं मिल रहा था। जयपुर राज्य कौन्सिल का अध्यक्ष मामले की पूरी जाँच किए बिना कुछ करना नहीं चाहता था।[17] अभी तक की जाँच ठिकानो के स्थान पर किसानों के पक्ष में थी। शेखावाटी के नाजिम ने बतौर सावधानी के कुछ कानूनी कदम अवश्य उठाए। 15 दिसम्बर 1925 को नाजिम ने शेखावाटी जाट सभा के अध्यक्ष रामसिह उपाध्यक्ष भूड़ा जाट एव सचिव रतनसिह को अपनी अदालत में तलब किया। इन्होने अपने बयान में कहा कि हम समाज सुधार के कार्य में लगे हैं एव हमने ठिकानों द्वारा किसानों के उत्पीडन के विरुद्ध राज्य की अदालत मे शिकायते की हैं। हमारा इरादा किसी को भड़काना एव उकसाना नहीं है। नाजिम ने उन्हें आदेश दिया कि यदि वे भविष्य मे किसी को भड़काएँगे तो कानूनी कार्यवाही की जाएगी। नाजिम ने अध्यक्ष एव उपाध्यक्ष से पाँच–पाँच सौ रुपए के मुचलके भी लिए।[18]

जयपुर राज्य कौन्सिल के अध्यक्ष ने जयपुर राज्य के पश्चिमी सम्भाग के दीवान[19] को शेखावाटी के किसानों की मौके पर जाकर जाँच करने हेतु 19 दिसम्बर

1925 को आदेश प्रदान किए। जाटों की मुख्य शिकायतें व माँगें निम्नानुसार थी[20] –

1 पहले भू–राजस्व की दर दो आना से आठ आना प्रति बीघा के मध्य थी किन्तु 25 वर्षो के दौरान ठिकानों चौधरियों के साथ मिली भगत से राजस्व की दर 2 रुपये 8 आना प्रति बीघा तक बिना भूमि की उत्पादकता को ध्यान मे रखे बढा दी है एव इसे बलपूर्वक वसूल किया जाता है।

2 यहाँ कोई निश्चित राजस्व की दर नही है एव ठिकाने स्वेच्छा से किसानों पर अपनी इच्छा से कर लाद देते हैं।

3 जाटों को अपनी जोतो पर किसी प्रकार के अधिकार नहीं हैं एव उन्हें उनकी जोतो से बेदखल कर दिया जाता है । ठिकाना कभी भी इन जमीनों को बेच सकता है व गिरवी रख सकता है तथा ठिकानो का प्राकृतिक उत्पादों व वृक्षों पर पूरा अधिकार रहता है।

4 ठिकाने राजस्व सम्बन्धी समझौते का पालन नही करते हैं यदि फसल अच्छी हो जाती है तो समझौते द्वारा पहले से निर्धारित राजस्व की राशि मे वृद्धि कर दी जाती है एव फसल बिगड़ जाने पर कोई छूट दिए बिना पूर्व समझौते के अन्तर्गत निर्धारित राजस्व की राशि वसूल कर ली जाती है ।

5 ठिकाने तीन रुपये आठ आना प्रति वर्ष खूँटा बन्दी एव छ आना पान चराई (प्रत्येक किसान से) राजस्व के अतिरिक्त वसूल करते हैं एव किसानों को उसके भुगतानों की कोई रसीद नही दी जाती है।

6 जाटों की माग थी कि ठिकानों द्वारा केवल वास्तविक राजस्व नकदी में लिया जाना चाहिए। राजस्व की दर दो आना से आठ आना के बीच भूमि के स्वरूप के आधार पर निर्धारित की जाए एव कोई अतिरिक्त लाग–बाग न ली जाए। उन्हे जोतों से बेदखल न किया जाए एव उन्हें भूमि का स्वामित्व प्रदान किया जाए।

उपरोक्त बिन्दुओ की जाँच किसानो के पक्ष मे थी। जयपुर राज्य कौन्सिल ने शेखावाटी के ठाकुरो को सलाह दी कि वे किसानो को सभी भुगतानो की नियमित रसीदे जारी करते रहें एव किसानो के प्रति अपने व्यवहार मे शालीनता बरते। उन्हें आगे सलाह दी गई कि वे अपने हित में किसानों की शिकायतों पर पूर्ण विचार कर उन्हें शीघ्र दूर करें एव भविष्य में कृषि की शर्तें मित्रतापूर्ण तरीके से निर्धारित करें।[21] इस सलाह पर खेतड़ी मण्डावा, डूडलोद, बिसाऊ आदि ठिकानों ने जून 1926 मे भू–राजस्व में वृद्धि न करने की घोषणा की।[22]

सीकर के किसानों के साथ 1925 मे हुए समझौते के अनुसार सीकर ठिकाने में भूमि की पैमाइश एव बन्दोबस्त कार्य चल रहा था सीकर ठिकाने का किसान संघर्ष सम्पूर्ण शेखावाटी के ठिकानो के किसान आन्दोलन का अगुवा था। शेखावाटी के अन्य ठिकानों के किसानों की उपलब्धिया 1926 तक सीकर के किसानो के समान ही थीं। कुछ ठाकुरों की घोषणा मात्र से इनका आन्दोलन स्थगित हो गया था। वे इस

बात के इंतजार मे थे कि सीकर के किसानों को 1925 के समझौते के अनुसार होने वाले भूमि बन्दोबस्त मे क्या मिलने वाला है?[23]

सीकर के राजस्व अधिकारियो ने 1925 से 1928 के मध्य भूमि बन्दोबस्त के नाटक के माध्यम से किसानों को शान्त रखने मे सफलता प्राप्त की। अप्रेल 1928 से सीकर के किसानों ने ठिकाने के खिलाफ जयपुर राज्य कौन्सिल के अध्यक्ष एवं अन्य अधिकारियो को पुन शिकायतें करना आरम्भ कर दिया था। किसानो की शिकायते थी कि भूमि बन्दोबस्त का कार्य ठीक प्रकार से नही हो रहा था तथा बन्दोबस्त कर्मचारियो का व्यवहार भी किसानो के साथ सम्मानजनक नही था। इतना ही नही बल्कि भू–राजस्व में वृद्धि भी कर दी गई थी।[24] इन शिकायतो के आधार पर जयपुर राज्य कौन्सिल का अध्यक्ष सीकर ठिकाने पर दबाव डाल रहा था कि किसानो की न्यायोचित माँगो को अविलम्ब मान लिया जाए। सीकर के सीनियर आफीसर ने इस सन्दर्भ में कुछ स्पष्टीकरण दिया जिससे जयपुर कौन्सिल का अध्यक्ष सन्तुष्ट नहीं था। वास्तविकता यह थी कि सीकर मे दो आना प्रति बीघा की दर से भू–राजस्व मे वृद्धि की गई थी जिसे ठिकाने द्वारा अस्थाई वृद्धि बताया जा रहा था जिसका कारण अच्छी फसल का होना था। किसान अपने पुराने अनुभवो के आधार पर आशंकित थे कि यह अस्थाई वृद्धि एक बहाना है जबकि ठिकाने की इच्छा प्रतिवर्ष भू–राजस्व में वृद्धि की है। 31 मई 1928 को जयपुर राज्य कौन्सिल के अध्यक्ष ने सीकर ठिकाने के सीनियर आफिसर को पत्र लिखा जो इस प्रकार था[25]–

"इन लोगो (किसानों) की निरन्तर शिकायतें इस मान्यता को आधार प्रदान करती हैं कि उनकी शिकायतें निराधार नहीं है, सीकर ठिकाने को अच्छी सलाह है कि वह इन शिकायतों से अविलम्ब निपटें। इन ग्रामीणों का कथन सही है कि भू–राजस्व की वृद्धि को चौधरियों ने स्वीकार किया है, जो ठिकाने से नियुक्ति पाते हैं भू–राजस्व की वृद्धि को इन ग्रामीणों के द्वारा स्वीकृत नहीं कहा जा सकता। भू–राजस्व की माँग मे मनमानी अस्थाई वृद्धि एक चालाकी है, जो नाम मात्र की है। स्वाभाविक तौर पर यह अत्यधिक अवांछनीय है।"

उपरोक्त पत्र के तुरन्त बाद भू–राजस्व की वृद्धि को समाप्त कर दिया गया किन्तु किसानों की भूमि बन्दोबस्त सम्बन्धी शिकायतों पर कोई विचार नहीं किया गया था। 1930 के अन्त तक सीकर का किसान संघर्ष सतत रूप से चलता रहा। सीकर के अतिरिक्त अन्य ठिकानों के किसान भी 1926 की मात्र घोषणाओं से संतुष्ट नहीं थे एवं उनका असन्तोष भी बढता जा रहा था। शेखावाटी के किसान आन्दोलन के प्रथम चरण (1922–30) का मूल्यांकन करें तो पाते हैं कि 1925–26 का वर्ष किसानों की भारी उपलब्धियों का वर्ष था। किन्तु, ये उपलब्धियां क्षणिक मात्र सिद्ध हुईं। ठिकानों द्वारा किसानों को दी गई राहतें ऊपर के दबाव या परिणाम थी एवं ठिकानों ने इन्हें मन से स्वीकार नहीं किया था। ठिकाने इतनी आसानी से अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने वाले नहीं थे। सदियों से चला आ रहा सामन्तवाद आसानी से पराजय

स्वीकार करने वाला नहीं था। किसानो व जागीरदारों के बीच व्याप्त अर्न्तविरोध मित्रतापूर्ण न होकर शत्रुतापूर्ण था जिसकी समाप्ति शान्ति के स्थान पर सघर्ष से ही सम्भव थी। प्रथम चरण इस सघर्ष का आरम्भ था जिसके दौरान किसान–सामन्त अर्न्तविरोध और तीव्र हो गए थे।

द्वितीय चरण (1931–1938) ·

सन् 1930 के पश्चात् भारत मे भारी राजनीतिक उथल–पुथल आरम्भ हुई जिसकी पृष्ठभूमि मे अनेक कारण थे। बदलते परिवेश में कांग्रेस की शिथिलता टूटी एव इसकी सक्रियता में भारी वृद्धि हुई। सन् 1923 के लाहौर सम्मेलन में कांग्रेस में भारी गरमा–गरमी थी। 26जनवरी, 1930 को अग्रेजो की खुली आलोचना का स्वर कांग्रेस के मच से गूजा। ब्रिटिश राज्य की आलोचना मे कहा गया कि इसने (अग्रेजी राज्य) भारत को आर्थिक, राजनीतिक, सास्कृतिक एव आध्यात्मिक रूप से कुचलकर बरबाद कर दिया है। अधिक समय तक ऐसे पापी राज्य के समक्ष आत्मसमर्पण मानव एव भगवान के विरुद्ध अपराध है। इस मच से करबदी आन्दोलन सहित सविनय अवज्ञा का आह्वान भी कर दिया गया। शेखावाटी का किसान आन्दोलन कांग्रेस से कोई सीधा सम्बध नहीं रखता था किन्तु कांग्रेस का देशव्यापी आन्दोलन यहाँ के किसानो की प्रेरणा का स्रोत अवश्य था। महात्मा गाँधी ने 12 मार्च 1930 को दाण्डी यात्रा द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन विधिवत रूप से आरम्भ किया। इस आन्दोलन ने भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग मे नई चेतना का सचार किया था। शेखावाटी के किसान जो सामन्तवाद के विरुद्ध सघर्ष छेड़ चुके थे, सन् 1930 के बाद अधिक साहस से उस सघर्ष का सचालन करने मे मानसिक रुप से सक्षम हो गए थे। यहा के किसानो पर रूस की समाजवादी क्रान्ति एव कांग्रेस की अहिसावादी नीति दोनो विचारधाराओं का प्रभाव समान रुप से पडा था। अत ये सक्रिय विरोध के साथ–साथ निष्क्रिय विरोध का सहारा समान रूप से लेते रहे।

शेखावाटी के अन्य ठिकानों की किसान गतिविधियों का केन्द्र मण्डावा ठिकाना बनता जा रहा था। इन ठिकानों के किसान कांग्रेस के आन्दोलन से प्रभावित होकर अपने नए आन्दोलन की भूमिका तैयार कर रहे थे व अप्रेल 1930 को मण्डावा के ठाकुर इन्द्रसिह ने जयपुर राज्य कौन्सिल के अध्यक्ष मि0 बी0जे0 ग्लान्सी को इस सन्दर्भ मे एक पत्र लिखा जिसमे उल्लेख किया गया कि आपको शायद पुराने दस्तावेजों से ज्ञात होगा कि 1925 में कुछ अशान्तिकारक तत्त्वो ने शेखावाटी मे एक आन्दोलन सचालित किया था जिसके पीछे शिकायतो का कोई उपयुक्त आधार नहीं था। उस समय मामले ने इतना गम्भीर मोड़ लिया था कि जनता की शान्ति एव व्यवस्था खतरे मे पड गई थी। ब्रिटिश भारत का वर्तमान राजनीतिक माहौल हम सब जानते हैं, जिसका प्रभाव शेखावाटी के किसानो पर दिख रहा है। पुराने अशान्तिकारक तत्त्वो ने पुन अपनी गतिविधिया आरम्भ कर दी हैं। ब्रिटिश भारत का रतन सिह

बी0ए0 वर्तमान में पिलानी में, खेतड़ी के बख्तावरपुर का रामसिंह वर्तमान मे जाट बोर्डिंग हाउस पिलानी, सागासी का भूड़ाराम एवं अन्य देवी बक्स सर्राफ के नेतृत्व में सम्पूर्ण शेखावाटी में राजनीतिक रोग फैला रहे हैं तथा ब्रिटिश भारत के आन्दोलनकारियों के तर्कों के आधार पर भोले किसानों को उत्तेजित कर रहे हैं। राज्य की सहायता के बिना अकेला ठिकाना इस आन्दोलन को दबाने के लिए कोई प्रभावी कदम उठाने में सक्षम नहीं होगा। अत इस खतरे को टालने की दृष्टि से आपकी सहायता की याचना करते हुए मैंने समय पर सूचित कर दिया है। क्या आप मुझे इससे अवगत करवाएँगे कि आपने इस मामले मे क्या कार्यवाही की है ?" जयपुर राज्य कौन्सिल के अध्यक्ष ने शेखावाटी के पुलिस अधीक्षक को इस पत्र के आधार पर स्थिति की जाच के आदेश दिए। पुलिस अधीक्षक की रिपोर्ट के अनुसार स्थिति अधिक गम्भीर नहीं थी। उसने अध्यक्ष को आश्वस्त किया कि वह शेखावाटी के किसानों पर निरन्तर नजर रखेगा एव यदि कोई शान्ति भग करने के प्रयास करेगा तो उसके विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जाएगी।"

सीकर के किसानो में असन्तोष बढता जा रहा था। 1925–28 के बीच सीकर के किसानो को जो कुछ राहत प्रदान की थी उसे पुन छीन लिया गया था। अक्टूबर, 1930 मे जयपुर का महाराजा मानसिंह इग्लैण्ड से लौट आया था एव उसे शीघ्र शासन के पूर्ण अधिकार दिए जाने की सम्भावना थी। सीकर ठिकाने की मान्यता थी कि अंग्रेजी शासन ने उसकी स्थिति अपमानजनक बना दी थी एव अब जयपुर महाराजा उसकी मान–प्रतिष्ठा पुन स्थापित करेंगे। किसान भी इस स्थिति से उत्साहित थे। अत किसानों ने दिसम्बर, 1930 के अन्तिम सप्ताह में जयपुर दरबार के समक्ष सत्याग्रह आरम्भ किया। 400 किसानों का जत्था जयपुर के अनेक अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत होकर अपनी समस्याओ के सम्बंध मे ज्ञापन दे चुका था। अन्त मे इस जत्थे ने जयपुर राज्य कौन्सिल के अध्यक्ष को ज्ञापन प्रस्तुत किया, जिसमे लिखा था कि अब वर्तमान रावराजा के समय बाला बक्स, स्योसिंह एव किशोर सिंह मुसाहिबा की इच्छा ही सीकर का शासन है। राव राजा इन्हीं व्यक्तियों के हाथों पूर्णत नियन्त्रित हैं एव वे सभी निष्ठुर व दुष्ट हैं। उनकी शिक्षाओं के दुष्परिणाम सीकर की जनता ढो रही है। इन लोगो ने जरीब 72 हाथ से केवल 50 हाथ सीमित कर दी है एव यहा कर वसूली की कोई निश्चित दर नहीं है। यह उनकी मधुर इच्छा से वसूल किया जाता है। अनेक मामलों में यह (राजस्व) दो रुपये बीघा की दर से वसूल की गई है। ठिकाना असहनीय बढ़ी हुई दरों पर करों की वसूली बलपूर्वक कर रहा है, जैसे वे हमें वृक्षों पर लटकाते हैं हमें पीटते हैं एव सभी प्रकार के अत्याचार करते हैं। इस दुर्व्यवहार से तग आकर हम (लगभग 400 किसान) सीकर से पिछली रात भाग आए हैं एव आपके समक्ष प्रतिनिधि मण्डल के रूप में अपनी शिकायतें पेश कर रहे हैं। हम आपसे सीकर में तुरन्त सामान्य स्थिति कायम करने की प्रार्थना करते हैं एव हमें हमारे वर्तमान घरों से उजड़ने से बचाएँ। लगभग 500 किसान पहले ही अपने घरों को वीरान कर बीकानेर एव जोधपुर राज्यों की ओर चले गए हैं।"

जयपुर राज्य कॉन्सिल के अध्यक्ष ने किसानों को उनकी मागों पर शीघ्र कार्यवाही का आश्वासन देकर सीकर लौटने की सलाह दी। किसानो को आशका थी कि लौटने पर उन्हें ठिकाना विभिन्न यातनाओ द्वारा तग करेगा। अत किसानों ने तब तक जयपुर से नहीं लौटने का निर्णय लिया जब तक कि दरबार द्वारा उनकी माँगो को स्वीकार करते हुए उनको सुरक्षा का आश्वासन न मिल जाए। किसानों ने महाराजा के रास्ते में लेटकर सत्याग्रह आरम्भ कर दिया था।[29] जयपुर सरकार ने 1 अप्रेल, 1931 को किसानों को आदेश दिया कि वे 24 घण्टे के अन्तर्गत जयपुर छोड़ दें वरना उन पर जयपुर पैनल कोड की धारा 177 के अन्तर्गत मुकदमा चलाया जायेगा।[30] दूसरी ओर किसानो की समस्याओ के सम्बध में जयपुर राज्य कॉन्सिल के राजस्व सदस्य मि० सी० एल० एलेक्जेण्डर से राय माँगी। उसने अपनी राय देते हुए स्पष्ट किया कि 'रावराजा ने प्रतिवर्ष राजस्व निर्धारित करने का एक मनमानी तरीका सृजित किया है और यह दिखाई देता है कि 287 गावों में से 220 गावों में राव राजा ने पिछले वर्षो के सामान्य राजस्व से अधिक राजस्व (रुपये पर दो आना या चार आना) इस वर्ष में प्रस्तावित किया है जब कम वर्षा तथा मूल्यों में गिरावट आई है तथा जयपुर राज्य एव अन्य सरकारे, सामान्य राजस्व वसूल करने में कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं'।[31] जयपुर राज्य की ओर से 13 अप्रेल 1931 को सीकर में एक भूमि बन्दोबस्त अधिकारी की नियुक्ति की गई। 16 अप्रेल, 1931 को सीकर का रावराजा जयपुर महाराजा से मिला।[32] महाराजा ने रावराजा को सलाह दी कि "किसानों को रुपये मे दो आना की छूट दी जाए, यह कि सीनियर आफिसर को राजस्व कार्य का भार सम्भालना चाहिए कुवर किशोर सिह इसका कार्यभार सीनियर ऑफिसर को सौप दे।"[33] सीकर के किसानो की यह पुन भारी विजय थी। उन्हें भू-राजस्व की दर मे तो छूट मिल गई थी किन्तु साथ ही सीकर के बदनाम राजस्व अधिकारी किशोर सिह को पद मुक्त करना बहुत बडी घटना थी क्योंकि वह सीकर के रावराजा का चचेरा भाई था। वास्तव मे यह किसानों की साकेतिक विजय ही साबित हुई क्योकि किशोर सिह को तो पद मुक्त कर दिया गया था किन्तु अन्य शिकायतो को दूर नहीं किया गया एव किसान लगातार जयपुर राज्य को अपनी अर्जिया समय-समय पर भेजते रहे। कुल मिलाकर यथास्थिति ही चल रही थी।

11-13 फरवरी 1932 में बसन्त पचमी के अवसर पर झुझुनू में आयोजित अखिल भारतीय जाट महासभा के तेइसवें अधिवेशन के आयोजन से शेखावाटी के किसान आन्दोलन के इतिहास में नए युग का आरम्भ हुआ। इस अधिवेशन में लगभग 60 हजार स्त्री पुरुषों ने भाग लिया था। इस सभा ने सामाजिक एव आर्थिक दोनो ही मुददो पर विचार करते हुए निम्नलिखित प्रस्ताव पास किए थे[34] -

1 इस क्षेत्र (शेखावाटी) के जाटों को स्नेह एव भाई चारे से सगठित हो जाना चाहिए।

2 जाटो को चाहिए कि वे अपने बच्चों को नियमित रूप से उच्च शिक्षा के लिए स्कूल भेजे।
3 सभी जाटों के अच्छे नाम रखे जाने चाहिए एव वे अपने नामों के पीछे सिह जोड़े।
4 सभी जाट बच्चों को यज्ञोपवीत पहनना चाहिए।
5 जाटों मे बाल विवाह पर रोक लगाई जाए।
6 शादी एव गहनो पर कम धन व्यय किया जाना चाहिए।

उपरोक्त सामाजिक प्रस्तावों के अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर निम्नलिखित प्रस्ताव भी पास हुए–

1 सभा महाराजा द्वारा राजस्व में दी गई छूट के लिए धन्यवाद ज्ञापित करती है।
2 सभा महाराज से निवेदन करती है कि वह अपने जागीरदारों को आदेश दे कि वे भू–राजस्व पुरानी दरों के आधार पर ही लें।
3 सभा ठिकानेदारो से आग्रह करती है कि वे प्रतिवर्ष अपने राजस्व की 5 प्रतिशत राशि शिक्षा एव स्वास्थ्य पर खर्च करें।
4 सभा जयपुर महाराजा से प्रार्थना करती है कि पिछले दो वर्षो से अकाल की मार एव अनाज के मूल्यों मे गिरावट को ध्यान में रखते हुए सभी दीवानी मुकदमों की कुर्की को समाप्त करें।
5 सभा आगे जयपुर महाराजा से सहकारी बैंकों की स्थापना का निवेदन करती है, जिससे किसान ब्याज की बरबाद करने वाली दरों से बच सकें।
6 जयपुर दरबार की भाषा उर्दू के स्थान पर हिन्दी को बनाया जाए।

सीकर के किसानों ने झुझुनू के जाट सम्मेलन से प्रेरणा लेकर पलथाना में सितम्बर, 1933 में जाट सभा का आयोजन किया था।[11] इस सभा में सीकर में जाट महायज्ञ आयोजित करने का फैसला किया गया। इस उद्देश्य हेतु सीकर में एक कार्यालय खोला गया एव ठिकाने की अनुमति के बिना महायज्ञ की तैयारिया आरम्भ की। जाटों की मान्यता थी कि यह शुद्ध रूप से एक सामाजिक आयोजन था तथा अनुमति की कोई आवश्यकता नहीं थी, किन्तु कुछ समय पश्चात् ठिकाने के अधिकारियों के प्रयासों से जाट महायज्ञ की अनुमति लेने पर सहमत हुए। सीकर में 20 से 26 जनवरी, 1934 को जाट महायज्ञ का आयोजन हुआ।[12] जाटों ने ठिकाने से अपने महायज्ञ के अध्यक्ष का हाथी पर जुलूस निकालने के लिए हाथी मागा।[13] ठिकाने ने हाथी देने से इकार कर दिया क्योंकि यह उस समय की परम्परा एव ठिकाने की नीति के विरुद्ध था। जाटों ने ठिकाने की मनाही को बड़ी गम्भीरता से लिया एव हाथी के मुद्दे पर इनके सम्बन्ध ठिकाने से काफी कटु हो गए थे। महायज्ञ के सहायक आयोजनों में ठिकाने के प्रति कटुता दिखाते हुए उत्तेजनापूर्ण भाषण दिए गए। समाज सुधार के घोष में वर्ग कटुता एव वर्ग घृणा को बढ़ावा मिला, जिससे किसान आन्दोलन के अधिक तीव्र एव तीखे होने की सम्भावना बनी। जाटों के उभार को

कुचलने के लिए 26 जनवरी 1934 को ठिकाने ने एक आदेश द्वारा महायज्ञ समिति के सचिव मास्टर चन्द्रभान सिंह को अपराध प्रक्रिया सहिता (सी0पी0सी0) की धारा 144 के तहत 16 घण्टे के अर्न्तगत सीकर छोड़ने का आदेश दिया। इन आदेशों की अवहेलना के अपराध मे मास्टर चन्द्रभान सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया एव जयपुर पैनल कोड की धारा 177 के तहत मुकदमा चलाकर उसे 6 सप्ताह की कैद एव 51 रुपए के जुर्माने से दण्डित किया गया।[28] जाट किसानो ने सीकर ठिकाने की इस कठोरता का बलपूर्वक विरोध किया एव इसके विरोध में करबन्दी अभियान आरम्भ कर दिया। इस प्रकार सीकर महायज्ञ के उपरान्त ही सीकर के किसानो के सघर्ष का नया अध्याय आरम्भ हुआ।

फरवरी 1934 के पहले सप्ताह में सैंकड़ों की सख्या मे सीकर के किसान जयपुर पहुँचे। लगभग 200 किसानो के शिष्टमण्डल ने 16 फरवरी 1934 को अपनी शिकायत एव माँग पत्र जयपुर राज्य कॉन्सिल के उपाध्यक्ष के समक्ष प्रस्तुत किया। यह माग पत्र निम्नानुसार था[29] –

1 भूमि की किस्म जलवायु आदि के आधार पर भू–राजस्व स्थाई रूप से निर्धारित किया जाए।
2 अकाल अथवा सूखा के कारण उत्पादन मे गिरावट या बाजार में कृषि उत्पादन के मूल्य मे गिरावट की स्थिति मे निर्धारित भू–राजस्व मे छूट का प्रावधान रखा जाए।
3 भू–राजस्व के अतिरिक्त सभी लाग बागों को अवैध घोषित किया जाए।
4 बेगार, जिसे सम्पूर्ण सभ्य ससार में बर्बर युग का चिन्ह माना जाता है को प्रचलित सभी रूपो मे समाप्त किया जाए।
5 काठ मे डालने की सजा जो सभ्य राष्ट्रो की दृष्टि में निन्दनीय है, को समाप्त किया जाए।
6 गाव के छोटे विवादो को निपटाने का न्यायिक अधिकार ग्राम पचायतों को सौंपा जाए।
7 ठिकाने की कुल आय का कम से कम आठवा भाग किसान पचायत के माध्यम से किसानों की शिक्षा पर व्यय किया जाए।
8 राज्य (जयपुर राज्य) के अतिरिक्त ठिकानो द्वारा ली जाने वाली कस्टम ड्यूटी (सीमा शुल्क या चुगी) समाप्त की जाए।
9 अन्य समुदायों की तुलना में जाटो के सामाजिक स्तर एव उनके हितों के विपरीत आदेशो तथा दुराग्रहपूर्ण आचरण को समाप्त किया जाए।
10 जाटो को वही सामाजिक स्तर एव अन्य विशेषाधिकार प्रदान किए जाएँ जो राजपूतो को प्राप्त हैं।
11 ठिकाने की नौकरियों मे जाटो को प्राथमिकता एव उत्साह प्रदान किया जाए।

12 यदि कार्यकारी शक्तियाँ ठिकाने के पास रहती है तो न्यायिक शक्तियाँ राज्य के सीधे नियत्रण मे रहनी चाहिए दोनो शक्तियो का एक ही व्यक्ति के हाथ में रहना न्याय एव तर्क के सिद्धान्त के खिलाफ है एव यह हमारे ठिकाने मे एक विसगति बन चुकी है।
13 यदि किसी कारणवश इन माँगो को मानना कठिन प्रतीत होता है तो नवगठित चुनी हुई पचायत जिसमे सीकर के निवासी सभी समुदायो की जनसख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व हो की सलाह पर ठिकाना इन पर विचार करे।
14 मास्टर चन्द्रभान सिह को बिना शर्त रिहा किया जाए।

किसानो ने जयपुर सरकार पर लगातार दबाव बनाए रखा जिससे मजबूर होकर सरकार ने सीकर के रावराजा को इनकी माँगों पर शीघ्र विचार करने का निर्देश दिया। इसके परिणामस्वरूप अगस्त, 1934 में सीकर ठिकाने ने निम्नलिखित सुधारो की घोषणा की[9] –

1 लाग–बाग समाप्ति-किसानों पर सभी लाग–बाग समाप्त की जाती है।
2 सीकर ठिकाने की खालसा भूमि पर जयपुर राज्य के कानून लागू होंगे।
3 हिन्दी–जनता एव प्रशासन के मध्य पत्र व्यवहार हिन्दी में होगे।
4 आन्तरिक चुगी भविष्य मे एक गाव से दूसरे गाव आने जाने वाली वस्तुओं पर कोई चुगी नही लगेगी।
5 लगान सवत 1991(1934 ई0) के बाद लगान की एक निश्चित समय के लिए दर निर्धारित कर दी जाएगी एव यह दर सीकर जाट पचायत के साथ बातचीत करके निर्धारित होगी। भूमि का वर्गीकरण जितनी जल्दी सम्भव हो सकेगा किया जायेगा एव इस वर्गीकरण का उल्लेख किसानों के पट्टे में किया जायेगा।
6 किसान हितों से सम्बन्धित मामलों पर सीनियर आफिसर को सलाह देने के लिए सीकर जाट पचायत प्रत्येक तहसील में दो या तीन किसान प्रतिनिधियों की समिति का गठन करें।
7 बेगार–सभी बेगार समाप्त की जाती है।
8 शिक्षा– यह स्पष्ट रूप से समझा जाए कि सीकर ठिकाने द्वारा सचालित एव सहायता प्राप्त विद्यालय तथा छात्रवृत्तिया बिना किसी जाति धर्म के भेदभाव के सभी को उपलब्ध होगी।
9 गौचारा भूमि–गौचारा भूमि का नि शुल्क उपयोग करने का अधिकार सभी को है।
10 यह अत्यधिक अवाछित है कि सीकर में भू–राजस्व की विभिन्न दरें हैं। यह भविष्य के लिए सूचित किया जाता है कि जागीरदार, भोमदार एव अन्य अपने किसानों से उससे अधिक दर पर पर भू–राजस्व वसूल नहीं कर सकते जो सीकर प्रशासन अपने किसानों से लेता है। किसानो, जागीरदारों, भोमदारों एव अन्य के बीच अगर विवाद होता है तो राजस्व न्यायालय ही उनका निपटारा करेगा।

यदि लगान वसूल करने में भू–स्वामी अथवा सीकर के कर्मचारी अवैध तरीकों (काठ में डालना पेडो पर लटकाना आदि) का सहारा लेगे तो उन्हें गम्भीर सजा दी जायेगी। इस स्थिति मे जागीरदारों एव अन्य भू–स्वामियो की जमीन भी जब्त की जा सकती है।

11 नजरें (भेंट या उपहार) यह आरोप लगाया गया है कि सीकर के अधिकारी एव भूमियाँ विभिन्न अवसरों पर नजर लेते है। यह पूर्णत प्रतिबन्धित है। जनता को इनके न देने हेतु निवेदन किया जाता है।

12 स्वास्थ्य–गाँवों में चिकित्सा एव स्वास्थ्य की सुविधायें अविलम्ब उपलब्ध करवायी जायेगी।

जाटों ने इन सुधारों को स्वीकार करने से इकार कर दिया किन्तु कुछ अतिरिक्त राजस्व की छूट एव सीनियर आफिसर के भारी प्रयासों के बाद किसानो ने अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी थी। इसे सीकर के किसान आन्दोलन का एक पडाव कहा जा सकता है।

शेखावाटी के अन्य ठिकानो खेतडी डूडलोद नवलगढ बिसाऊ सूरजगढ ईसमाइलपुर, दिरवा, जाखारा मडरेला खण्डेला मलसीसर, पाटन आदि मे भी किसान आन्दोलन चल रहे थे। सीकर के किसानो की तर्ज पर इन ठिकानों में मार्च 1934 में करबन्दी अभियान आरम्भ किया गया था। इन ठिकानो के किसानो को हतोत्साहित करने के ध्येय से गावो पर जागीरदारो ने आक्रमण आरम्भ कर दिए थे जिनका किसानों ने साहस के साथ मुकाबला किया।

सर्वप्रथम हिरवा ठिकाने का हनुमानपुरा गाव जागीरदारो के आक्रमण का शिकार हुआ था। 16 मई 1934 को सायकाल मे जब हनुमानपुरा गाव के अधिकाश पुरुष एक बारात में गए हुए थे तो हिरवा का ठाकुर कल्याण सिह ऊँटो पर सवार होकर अपने आदमियों सहित वहाँ पहुँचा एव चौधरी गोविन्द राम के नोहरे में आग लगा दी। गाव इस आग की चपेट में आ गया एव लगभग 33 घरो को जलाकर राख कर दिया गया। इस आग से हजारों रुपये की सम्पत्ति नष्ट हो गई अनेक बच्चे घायल हो गए, दो गायें जलकर मर गई एव चार हरे वृक्ष जलकर राख हो गए थे।[1]

हनुमानपुरा के समान घटना डूडलोद ठिकाने के जयसिह पुरा गाव में घटी। 21 जून 1934 को डूडलोद के ठाकुर हरनाथ सिह के भाई ईश्वर सिह ने अपने आदमियों के साथ जो लाठी भाले एव बन्दूकों से लैस थे जयसिहपुरा के किसानों पर आक्रमण कर दिया जब वे अपने खेतों पर टहल रहे थे। इस घटना में चार लोग (किसान) मारे गए एव 23 बुरी तरह घायल हुए।[2] ठिकानेदारों की बर्बरता एव आतक दिनोदिन बढता जा रहा था तथा किसान इसका साहस के साथ मुकाबला कर रहे थे। 15 सितम्बर, 1934 को शेखावाटी के जाट किसानों ने ढाणी खिचन की एक सभा में भू–राजस्व एव अन्य लाग–बागो के भुगतान न करने का निर्णय लेते हुए सभी

जाटो को आगाह किया कि यदि कोई भुगतान करेगा तो उसे जाति से बाहर कर दिया जाएगा।[43] इस नए आन्दोलन से पचपाना ठिकानों के जागीरदार चिंतित होकर 1 अक्टूबर, 1934 को जयपुर राज्य कॉन्सिल के उपाध्यक्ष से शिष्ट मण्डल के रूप मे मिले एव किसान आदोलन के दमन की माग की।[44] राज्य की ओर से कोई विशेष मदद मिलने के स्थान पर उन्हे समझाया गया कि किसानो के साथ मित्रतापूर्ण समझौता ही किसान आन्दोलन की समस्या का समाधान है।

पचपाना ठाकुरों के प्रतिनिधि मण्डल के पश्चात् 9 अक्टूबर, 1934 को शेखावाटी के किसानो का एक शिष्ट मण्डल जयपुर राज्य कौन्सिल के उपाध्यक्ष से मिला एव अपनी मागो व समस्याओ का ज्ञापन निम्नानुसार प्रस्तुत किया[45]–

1 ठिकाने साधारण सी गलती पर किसानो को जोत (भूमि) से बेदखल कर देते हैं।
2 ठिकाने लगातार भू–राजस्व में वृद्धि कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप पिछले 20 वर्षो मे भू–राजस्व की राशि मे 100 प्रतिशत या इससे भी अधिक वृद्धि हुई है।
3 भूमि की पैमाइश की नाप धीरे–धीरे घटती जा रही है एव जयपुर राज्य की 165 फीट लोहे की जरीब के स्थान पर यहाँ लगभग 82.50 फीट की सूती रस्सी है।
4 यद्यपि राज्य ने बेगार समाप्त कर दी है लेकिन यह अभी भी ठिकानो द्वारा किसी न किसी रूप में ली जाती है।
5 भू–राजस्व के अतिरिक्त किसानो को असख्य लाग–बागों का भुगतान करना पडता है जिनमे जागीरदारों की शादिया, मेहमान, यात्राएँ, पिकनिक एव शिकार आदि का खर्चा भी शामिल है।
6 फसल एव किसानो के हालातों के आधार पर भू–राजस्व में कोई छूट नहीं दी जाती है।
7 यदि किसान यह अदा करने में असफल रहते हैं तो उन्हे काठ मे डाल दिया जाता है एव उन्हे सभी प्रकार से उत्पीडित किया जाता है।
8 जकात या चुगी शुल्क सभी प्रकार के आयात एव निर्यातों पर लगता है एव इसमे वे मद भी शामिल है जिन पर राज्य की ओर से छूट है।
9 भू–राजस्व एव अन्य भुगतानो की कोई रसीदे नहीं दी जाती है।
10 पचपाना ठिकानों पर अदालत शुल्क माफ है एव उनके निजी वकील किसानों के खिलाफ मुकदमें चलाते रहते हैं।
11 मोहराना (पजीकरण शुल्क) अब किसानों से भी लिया जाता है, जो केवल महाजनों तक ही सीमित था।
12 ठिकानों के चहेते एक या दो व्यक्ति चारागाह भूमि पर अधिकार जमाए रहते हैं, जबकि अन्य किसानों के पास अपने पशुओं को चराने का कोई स्थान नहीं है। यहाँ तक कि बिना कुछ राशि दिए किसान अपने खेतों मे उगने वाले वृक्षों की पत्तियों का उपयोग भी नहीं कर सकते।

13 जागीरदार किसानों की शिक्षा एव स्वास्थ्य पर कुछ भी व्यय नहीं करते हैं एव यदि किसान आपसी सहयोग से विद्यालय आरम्भ करते हैं तो वे जागीरदारों द्वारा बन्द कर दिए जाते हैं।

इस ज्ञापन के अन्त मे प्रतिनिधि मण्डल ने सभी विवादों के निपटारे हेतु राज्य के हस्तक्षेप की माँग की। यह भी सुझाव दिया गया कि पूरा मामला पचायत बोर्ड को सौंपा जाए, जिसका गठन दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों के द्वारा हो। यह पचायत बोर्ड पूरे मामले की जाँच कर जयपुर राज्य कौन्सिल के अध्यक्ष को रिपोर्ट प्रस्तुत करे। जयपुर राज्य कौन्सिल के उपाध्यक्ष ने इस प्रतिनिधि मण्डल को सूचित किया कि दरबार ने किसानों की समस्या की जाँच हेतु सीकर के सीनियर आफिसर कैप्टन वैब को नियुक्त कर दिया है। इस अधिकारी की जाच रिपोर्ट के आधार पर ही किसानो की समस्याओं पर विचार किया जाएगा। जब तक जाँच पूरी न हो जाए तब तक किसानों को सभाएँ न करने साधारण भू–राजस्व का भुगतान करने एव बाह्य आन्दोलनकारियों के विचारों को न सुनने की चेतावनी दी।[4] किसान इस निर्णय से सतुष्ट नहीं थे। किसान राज्य के प्रति गहरे रोष की भावना लेकर लौटे एव उन्होंने लौटकर जागीरदारों के सभी भुगतानों को रोकने का निर्णय लिया। 9 अक्टूबर 1934 को जयपुर राज्य कौन्सिल के उपाध्यक्ष को ज्ञापन देने के पश्चात् ही शेखावाटी जाट किसान पचायत ने सघर्ष तीव्र करने के प्रयास आरम्भ कर दिए थे। इसके अन्तर्गत ठिकानों के कर्मचारियों को भू–राजस्व का आकलन तक करने में किसानों ने बाधा उत्पन्न की।

नवम्बर, 1934 तक यह आन्दोलन और तीव्र हो गया था। शेखावाटी में स्थिति दिनों दिन बिगड़ती जा रही थी। ठिकानों व किसानों के मध्य हिसक घटनाये बढ रही थी। राज्य की ओर से कोई कारगर कदम नहीं उठाए गए। पुलिस एव प्रशासनिक अधिकारी निरन्तर रूप से जयपुर राज्य को आगाह कर रहे थे कि यदि शीघ्र कदम नहीं उठाए गए तो शेखावाटी में गम्भीर अशान्ति फैल सकती है। मजबूर होकर जयपुर राज्य कौन्सिल ने 24 दिसम्बर 1934 को एक प्रस्ताव पास कर स्थिति से निपटने के लिए निम्नलिखित उपाय सुझाए–

1 (अ) "एक यूरोपीय अधिकारी एव राजस्व तथा बन्दोबस्त का अनुभव प्राप्त दो सदस्यों की समिति शेखावाटी का दौरा करे एव दोनों पक्षों में आपसी समझौते हेतु एक बन्दोबस्त का सुझाव दे तथा जिन मामलों में समझौता सम्भव न हो उनकी सूचना दे।

(ब) चार आना प्रति रुपए की छूट के बाद यदि कोई किसान भुगतान करने से इकार करता है तो राज्य के राजस्व अधिकारी राशि वसूल करें।

(स) सभी भुगतानों के बदले ठाकुर किसान को छपी रसीदें दें।

2 तहसील के माध्यम से वसूली पर 5 प्रतिशत कमीशन वर्तमान खरीफ पर माफ किया जाए।

3 राजस्व का भुगतान न करने हेतु उकसाने को रोकने के लिए बाह्य हस्तक्षेप के विरुद्ध निश्चित नियम बनाए जाये।"

राज्य सरकार ने उपरोक्त सुझाव प्रचारित कर किसानों को शान्तिपूर्ण तरीके से राजस्व जमा कराने के लिए प्रेरित किया। 24 दिसम्बर 1934 को दूसरी अधिसूचना उस समिति के गठन के बारे में जारी की गई जिसमे एक यूरोपीय अधिकारी एव दो सदस्यो को नियुक्त किया गया था। सरकार चाहती थी कि एक बार खरीफ के राजस्व का भुगतान हो जाए तभी यह समिति कार्य करे। इस हेतु जयपुर राज्य ने ठाकुरों एव किसान प्रतिनिधियों को बुलाकर विचार विमर्श किया। ठाकुर राजस्व में रुपए पर चार आना की छूट देने के लिए सहमत हो गए थे एव किसान प्रतिनिधियों ने इसे स्वीकार करते हुए जनवरी 1935 के अन्त तक राजस्व जमा कराने का वादा किया।[61]

उपरोक्त समझौते के उपरान्त भी राजस्व भुगतान के मामले में विशेष प्रगति नहीं हुई। इसका कारण ठिकानों द्वारा समझौते के अनुसार राजस्व की माँग का निर्धारण न करना था।[62] किसान चार आना प्रति रुपए की छूट के बाद केवल भू–राजस्व का ही भुगतान करना चाहते थे। वैसे भी किसान राजस्व का भुगतान निजामत के माध्यम से करना चाहते थे। ठाकुर इस स्थिति को अपने परम्परागत अधिकारो का हनन मानते थे। वास्तव में किसानों द्वारा निजामत कार्यालय में भू–राजस्व जमा कराना ठिकानों के परम्परागत अधिकारो को खुली चुनौती थी। अत शेखावाटी के अन्य ठिकानों मे पुन विवाद उत्पन्न होने की प्रबल सम्भावना थी। जयपुर राज्य कौन्सिल के उपाध्यक्ष ने 14 मार्च, 1935 को जाट नेताओं चिम्मनराम, देवाराम, नेतराम हरलाल एव पोचरराम की बैठक बुलाई जिसमें ठाकुरों को भी बुलाया गया था।[63] इस बैठक में दोनों पक्ष इस बात पर सहमत हो गए कि शेखावाटी में एक नियमित भू–सर्वेक्षण एव बन्दोबस्त करवाया जाए एव इस कार्य के लिए ब्रिटिश अधिकारी नियुक्त किया जाए। इस बन्दोबस्त के होने तक राजस्व के निर्धारण की अस्थाई व्यवस्था की जाए एव प्रत्येक फसल के राजस्व का निर्धारण राजस्व अधिकारियों की समिति द्वारा किया जाए। किसानों को उनकी समस्याओं के समाधान का आश्वासन देते हुए भविष्य में आन्दोलन न करने की चेतावनी दी गई।[64]

सीकर की घटनाएं (1935–38) :

सीकर के किसान आन्दोलन का अभी तक अन्त नहीं हुआ था। अगस्त 1934 में अनेक छूटों सम्बन्धी घोषणा तो कर दी गई थी, किन्तु उनका पूरी तरह पालन नहीं किया जा रहा था। ये छूटें सीकर के खालसा क्षेत्र के किसानों को ही दी गई

थी। अत किसानों ने भूमिया एव छोटे जागीरदारो के क्षेत्र में भी समाज सुविधाओं की माँग पर जोर दिया। किसानो ने जगह–जगह राजस्व अधिकारियों को अपमानित किया एव राजस्व की वसूली मे अनेक बाधाऐ उत्पन्न कर दी। दिनों दिन स्थिति गम्भीर होती जा रही थी। इस स्थिति से निपटने के लिए सीकर के सीनियर ऑफिसर के आग्रह पर जयपुर सशस्त्र पुलिस की एक टुकडी फरवरी 1935 मे सीकर पहुँची।[52] इस पुलिस बल के द्वारा किसानों का दमन आरम्भ कर दिया। दूसरी ओर जागीरदारों ने जातीय आधारो पर राजपूतो को सगठित कर उनके दिमागों मे यह बात भर दी थी कि जाट शक्ति का उदय राजपूतों की सामाजिक स्थिति को चुनौती है। जाट पहले से ही जातीय आधार पर सगठित थे। अत अब जाट राजपूतो के मध्य जातीय साम्प्रदायिकता बढ़ने लगी थी।

उपरोक्त जाट राजपूत साम्प्रदायिकता की चरम परिणिति 22 मार्च 1935 की खुड़ी गाव की एक हिसक घटना के रूप में हुई। 22 मार्च 1935 को खुड़ी नामक गाँव जो आधा जाट एव आधा राजपूतों से आबाद था मे जाटों की बारात दूल्हे को घोड़े पर बिठा कर निकासी कर रही थी। जब यह बारात गाव के राजपूत आबादी वाले हिस्से से गुजर रही थी तो राजपूतों ने जाटो की इस गतिविधि को परम्परा के विपरीत मानकर इसका कड़ा विरोध किया। इस घटना की दोनो ही जाति के लोगों को पूर्व आशका थी, अत पहले से ही इस गाव में भारी सख्या में जाट एव राजपूत पडौस के गाँवों से आकर एकत्रित हो गए थे। इस बारात की निकासी के समय दोनो जाति के लोगों के बीच सशस्त्र झगडा हुआ जिसमे एक जाट मारा गया।[53] सीकर का सीनियर ऑफिसर पुलिस बल सहित स्थिति को नियत्रण में लाने के उद्देश्य से खुडी पहुँचा एव पुलिस को जाटो पर लाठी चार्ज का आदेश दिया। इस पुलिस कार्यवाही मे 4 जाट मारे गए एव सैकड़ों की सख्या मे घायल हुए।[54] इस घटना ने जाट राजपूत सम्बन्धो को और अधिक तनाव पूर्ण व कटु बना दिया था। किसानों ने इस घटना से उपजे आक्रोश के अन्तर्गत एक करबन्दी आन्दोलन आरम्भ कर दिया था। सीकर ठिकाने के 15 गावों के किसानों ने एक शपथ ली कि यदि कोई जाट ठिकाने को राजस्व का भुगतान करेगा तो उसे जाति बाहर कर दिया जाएगा। साथ ही किसानों ने राजपूतों एव उनका समर्थन करने वाली जातियों के सामाजिक बहिष्कार की घोषणा भी की।[55] ठिकाने ने बलपूर्वक राजस्व वसूली का कार्यक्रम बनाया। ठिकाना पुलिस बल की सहायता से अनेक गावों से राजस्व वसूल करने में सफल रहा किन्तु कूदण गाव में ठिकाने को भारी विरोध का सामना करना पड रहा था।

सीकर ठिकाने से राजस्व अधिकारी एव कर्मचारी 25 अप्रेल 1935 को पुलिस बल सहित कूदण पहुँचे। किसानो ने इन पर धावा बोल दिया। दूसरी ओर पुलिस ने किसानो पर आक्रमण कर दिया जिसमे पुलिस के अनुसार चार किसान मारे गऐ चौदह घायल हुए एव 175 गिरफ्तार किए गए।[56] मामला यहाँ तक ही नही रुका बल्कि ठिकाने ने कूदण के आस–पास के गावो मे भी पुलिस बल के सहारे आतक कायम कर दिया था। अधिकारियो

ने आन्दोलन को कुचलने के लिए सभी दमनात्मक उपायों का सहारा लिया। सीकरवाटी जाट किसान पचायत एव जाट किसान सभा जो सीकर ठिकाने मे राजनीतिक सगठन के रूप में कार्य कर रही थी, को अवैधानिक सगठन घोषित कर दिया गया।[7] राजपूताना जाट सभा के अध्यक्ष एव मन्त्री को सीकर से बाहर निकल जाने का आदेश दिया गया। शेखावाटी शिक्षा मण्डल अथवा स्वय जाटों द्वारा सचालित सभी विद्यालयों को अनिवार्य रूप से बन्द कर दिया गया। इन विद्यालयों के प्रभारी अध्यापकों को अधिकतर मामलों में बन्दी बना लिया गया। इस अभियान में पलसाना गाव के विद्यालय भवन को पूर्णत मटियामेट ही कर दिया गया था। समूचे गाव के भू-राजस्व की बकाया राशि एक ही व्यक्ति से वसूल की गयी। किसानों की सम्पत्ति जब्त कर ली गई एव उन्हें उनकी वास्तविक कीमत के 25 या 30 प्रतिशत दामों पर नीलाम कर दिया गया था।[8]

कूदण की घटना के बाद किसानों के आन्दोलन एव ठिकानों के दमन दोनों में काफी तीव्रता आ गई थी। शेखावाटी के पूजीपतियों ने जो कलकत्ता में व्यापार करते थे ने किसानों को धन की सहायता देना आरम्भ कर दिया था। जयपुर राज्य कौसिल के उपाध्यक्ष ने जयपुर के पुलिस महानिरीक्षक मि एफ एस यग को 12 जून, 1935 के एक पत्र में सलाह दी थी कि वह सेठ राधाकिशन चमरिया से सम्पर्क स्थापित करें। उसका किसानों पर अच्छा प्रभाव है एव वह सीकर में शान्ति स्थापना में अवश्य सहायता करेगा।[9] सीकर एव जयपुर के अधिकारियों ने किसानों एव उनके सहयोगी व सहानुभूति रखने वालों को शान्तिपूर्ण समझौते के लिए फुसलाना आरम्भ किया, किन्तु किसान कूदण की घटना से अत्यधिक क्षुब्ध थे एव कूदण की घटना की जाच कर दोषी अधिकारियों की गिरफ्तारी की माग कर रहे थे। सीकर के किसानों ने 12 जुलाई, 1935 को जयपुर राज्य कौसिल के उपाध्यक्ष के समक्ष विशाल प्रदर्शन किया जिसमें भारी सख्या में स्त्रियों ने भी भाग लिया। पुलिस बल से इस प्रदर्शन को तितर-बितर कर दिया गया।[10] किसानों ने सीकर लौटकर अपनी आन्दोलनात्मक गतिविधियों को तीव्र कर दिया। जयपुर राज्य ने अब किसानों के प्रति सन्तुष्टिकरण की नीति का सहारा लिया। 29 जुलाई को जयपुर सरकार ने सभी जाट नेताओं के खिलाफ समय-समय पर जारी किए सभी गिरफ्तारी वारटों को निरस्त कर दिया एव कूदण की घटना तथा अन्य प्रदर्शनों के समय गिरफ्तार किए गए किसानों को रिहा कर दिया गया। किसान नेताओं से लिखित में वायदा करवाया कि वे भविष्य में इस प्रकार की गतिविधियों में भाग नहीं लेंगे।[11] इस प्रकार लम्बे समय से चला आ रहा सीकर का किसान सघर्ष कुछ समय के लिए रुका। दिसम्बर 1935 तक सीकर के खालसा क्षेत्र का भूमि बन्दोबस्त पूर्ण हो गया था एव भू-राजस्व की दरें कुल उत्पादन के 1/2 भाग के स्थान पर 2/5 भाग निर्धारित की गयी।[12] सन् 1938 के आरम्भ तक सीकर के किसानों में शान्ति बनी रही।

शेखावाटी के अन्य ठिकानों के किसान संघर्ष का घटनाक्रम (1935-36):

14 मार्च, 1935 के समझौते के बाद भी शेखावाटी के अन्य ठिकानों एव किसानों के मध्य चला आ रहा विवाद शान्त नहीं हुआ था। अप्रेल 1935 तक लगभग 70 प्रतिशत

किसानों ने राजस्व निजामत कार्यालय में जमा करा दिया था जिससे ठिकानों को सन्तुष्टि नही थी।[63] जो राजस्व निजामत में जमा कराया गया था उसका निर्धारण किसानों ने स्वय किया था। जागीरदारों की माँग थी कि जब तक प्रस्तावित भूमि बन्दोबस्त हो तब तक भू–राजस्व की पुरानी पद्धति को ही जारी रखा जाए।[64] किसानों को पुलिस के उत्पीडन का शिकार होना पड़ रहा था। ऐसी स्थिति में किसान नेताओं ने खुले सघर्ष के स्थान पर गुप्त रूप मे आन्दोलन का सचालन आरम्भ कर दिया था, क्योंकि खुला सघर्ष ठिकानों द्वारा पुलिस बल के माध्यम से कुचला जा सकता था। किसान नेता गुप्त रूप से किसानों मे व्याप्त निराशा को समाप्त कर सगठित करना चाहते थे। वर्ष 1934–35 के राजस्व का भुगतान तो किसानों ने स्वेच्छा से निजामत कार्यालय में कर दिया था, किन्तु वर्ष 1935–36 की राजस्व वसूली ठिकाने स्वय मनमाने तरीके से करने लगे। किसानों को विभिन्न तरीकों से डराया धमकाया जा रहा था। मार्च 1936 में शेखावाटी के अन्य ठिकानों का आन्दोलन पुन आरम्भ हो गया था। 22 मार्च, 1936 को पचनामा के गावो दलसर, पटूसरी कुम्भायास, घिघल एव सिसियान के किसानो ने जयपुर राज्य कॉन्सिल के उपाध्यक्ष के समक्ष एक ज्ञापन द्वारा अपनी समस्याओं को प्रस्तुत किया।[65] 1 अप्रेल 1936 को शेखावाटी जाट किसान पचायत के नेताओं हरलाल सिह (हनुमानपुरा) एव हरलाल सिह (मडासी) ने दो ज्ञापन क्रमश उपाध्यक्ष जयपुर राज्य कौन्सिल एव राजस्व सदस्य के समक्ष प्रस्तुत किए।[66] उपाध्यक्ष को दिए ज्ञापन में शेखावाटी में चल रहे भूमि बन्दोबस्त में बरती जा रही अनियमितताओं की ओर ध्यानाकर्षित किया गया था। उनका आरोप था कि ठिकानों द्वारा खेत विशेष पर अपना निजी स्वामित्व बताकर किसानो को उनके खेतों से वचित किया जा रहा था। जौहड़ जो गोचर भूमि के रूप में गावो की सयुक्त सम्पत्ति थी, ठिकाने अमीनों एव अन्य सहायक अधिकारियों को पटाकर जौहड़ों को अपनी निजी सम्पत्ति के रूप में दर्ज करवा रहे हैं। शेखावाटी के अधिकाश कुँओं में पानी अधिक नहीं है, किन्तु इनके आस पास की जमीन को बिना यह जाँच किए कि कुँओ से सिचाई सम्भव है अथवा नही सिचित भूमि की श्रेणी में दर्ज किया जा रहा है। आबादी क्षेत्र की आवासीय भूमि को भी ठिकानों की निजी सम्पत्ति के रूप में दर्ज किया जा रहा है। खेतो में उगे हुए वृक्षों का स्वामित्व भी ठिकानों का माना जा रहा है। खेतो की सख्या निश्चित करने में भारी चालाकी बरती जा रही है जिससे ठिकाने किसानो को आपस में लडाना चाहते हैं। राजस्व सदस्य को दिए गए ज्ञापन में 1935–1936 के राजस्व निर्धारण में बरती जा रही अनियमितताओं तथा ठिकानों द्वारा किसानों के साथ की जा रही कठोरताओं की ओर ध्यानाकर्षित किया था। किसान नेताओ की शिकायत थी कि ठिकाने किसानों पर अपना अनाधिकृत प्रभाव स्थापित करने के उद्देश्य से किसानों से एक मुद्रित पत्र भरवा रहे हैं। इस पत्र की भाषा इस प्रकार थी

"मैं निम्नाकित से सहमत हूँ –

अ मैं ठिकाने को अनाज, चारा एव सभी उपजों का आधा भाग दूँगा।

ब मैं लाग–बाग एव अन्य सभी बकाया राशि का भुगतान करूँगा।

स मैं सभी वृक्षों को सुरक्षित रखूगा एव ठिकाने की अनुमति के बिना किसी प्रकार का वृक्ष नहीं काटूगा तथा यदि वृक्ष कटता है अथवा किसी के द्वारा ले जाया जाता है तो मैं ठिकाने के प्रति जिम्मेदार हूगा।

द राजस्व की राशि बकाया रहने की स्थिति मे एक प्रतिशत प्रतिमाह की दर से सूद दूगा।

य ठिकाने को मुझे अपनी जोत से बेदखल करने का (नि शर्त) पूर्ण अधिकार है एव मुझे इस बेदखली के खिलाफ विरोध करने का कोई अधिकार नहीं होगा।"

उनका आगे आरोप था कि इन पत्रों पर कोई तारीख अंकित नहीं की जा रही थी। इसके पीछे ठिकाने का उद्देश्य यह सिद्ध करना था कि किसानो को लम्बे समय से किसी प्रकार के अधिकार नहीं थे। ठिकाने किसानों के विरुद्ध दमनात्मक कार्यवाही कर रहे थे। नेताओ का आरोप था कि उनके खिलाफ वृक्ष काटने के झूठे फौजदारी मुकदमो को वापस लेने का आश्वासन पूरा नहीं किया जा रहा है। अन्त में कहा कि ठिकानों ने झूठे बकाया राशि के मुकदमें अदालत में दायर कर दिए हैं, जिनका उद्देश्य किसानो को उत्पीड़ित करना है। इस वर्ष फसल की उपज रुपये में 8 आना होने के उपरान्त भी ठिकाने राजस्व की भारी राशि किसानों पर थोप रहे हैं। जयपुर राज्य कॉन्सिल के राजस्व सदस्य ने 15 अप्रेल, 1936 को शेखावाटी के नाजिम को किसानों की समस्याओ पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के आदेश जारी किए।[7] किसान नाजिम द्वारा ही भू-राजस्व का निर्धारण चाहते थे। राजस्व सदस्य ने नाजिम को राजस्व निर्धारण का अधिकार प्रदान कर दिया था। ठिकानो को नाजिम द्वारा भू-राजस्व का निर्धारण स्वीकार्य नहीं था। अत ठिकानों ने इसके विरुद्ध राजस्व विभाग में याचनाऐ प्रस्तुत की, किन्तु राजस्व सदस्य ने इन याचनाओं को निरस्त करते हुए आदेश दिया कि पूर्व निर्धारित मामलों पर कोई पुर्नविचार नहीं होगा एव किसानों से भू-राजस्व के अतिरिक्त ठिकाने कोई अन्यायपूर्ण लाग-बाग नहीं लेगें।[8] जयपुर सरकार ने शेखावाटी के ठिकानो के भूमि बन्दोबस्त को तेज कर दिया जिससे लम्बे समय से चले आ रहे किसान असन्तोष को शान्त किया जा सकता था। राजस्व सदस्य ने यह भी स्वीकार्य कर लिया था कि किसान इच्छानुसार ठिकाने अथवा निजामत में राजस्व जमा करा सकते थे। राजस्व सदस्य द्वारा दिए गए आदेश समझौते का ही रूप थे।

सन् 1936 के अन्त तक शेखावाटी के अन्य ठिकानों के किसान आन्दोलन सफलता के एक निश्चित सोपान पर पहुँच गए थे। किसान राजस्व सदस्य द्वारा घोषित नई व्यवस्था से सन्तुष्ट थे। भूमि बन्दोबस्त होने तक यह व्यवस्था निरन्तर रूप से जारी रखने का आश्वासन भी दिया गया था। यदि असन्तोष था तो ठिकानों में। ठिकाने निरन्तर उत्तेजित होते जा रहे थे एव अपने पुराने अधिकारों व शक्तियों को पुन प्राप्त करने के लिए प्रयासरत थे। सन् 1938 के आरम्भ तक शेखावाटी के ठिकानों के किसान शान्त बने रहे।

तृतीय चरण (1938–1947) :

शेखावाटी के किसान आन्दोलन का तीसरा चरण निर्णायक था, जिसमे किसानों ने सामन्ती एव औपनिवेशिक शोषण का जुआ उतार फेंका। इस चरण में किसान आन्दोलन का सामाजिक व राजनीतिक आधार काफी विस्तृत हो गया था। सन् 1938 के पूर्व तक जहाँ यह आन्दोलन अलग–थलग सा चला रहा था वहीं अब मुख्य राष्ट्रीय धारा से जुड़ गया था। अब तक किसान केवल आर्थिक एव सामाजिक मुद्दों को लेकर सघर्षरत थे किन्तु तीसरे चरण में राजनीतिक मुद्दे प्रमुख हो गए थे। इस समय जयपुर राज्य प्रजामण्डल ने किसानों को खुला समर्थन दिया। सन् 1938 के पूर्व अखिल भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का रुख राजस्थान के जन आन्दोलनो के प्रति उपेक्षापूर्ण ही था, किन्तु सन् 1938 में देशी राज्यों के जनआन्दोलनों के प्रति काग्रेस की नीति में परिवर्तन आया। सन् 1938 में ही अखिल भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के "हरिपुरा" अधिवेशन में देशी राज्यों के आन्दोलनों को काग्रेस के अग के रूप में स्वीकार कर लिया था। जवाहर लाल नेहरू को अखिल भारतीय प्रजा परिषद् अध्यक्ष एव जयनारायण व्यास को महामत्री नियुक्त किया गया था। इस अधिवेशन में देशी राज्यों के प्रतिनिधियों को अपने–अपने राज्यो में स्वतत्र सगठन बनाकर उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु जन आन्दोलनों के सचालन की सलाह दी थी।

जयपुर राज्य प्रजामण्डल की स्थापना तो 1931 में ही हो गई थी किन्तु अनेक अवरोधों के कारण यह आगे नहीं बढ सका। सन् 1938 में पुन जयपुर राज्य प्रजामण्डल की स्थापना हुई। इसने स्थापना के साथ ही शेखावाटी के किसान आन्दोलन का समर्थन व सहयोग करना आरम्भ कर दिया था। 8–9 मार्च 1938 को इसके प्रथम अधिवेशन में ठिकानों के सन्दर्भ मे प्रस्ताव पास कर किसानों की सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। यह प्रस्ताव इस प्रकार था

"जयपुर रियासत के अधिकाश ठिकानों में बसने वाली जनता के प्रति ठिकानेदारों का जो व्यवहार है वह अधिकाश में गैर–कानूनी कष्टदायक विकास अवरोधक तथा अशान्ति उत्पादक है। इससे न केवल जनता को बल्कि ठिकानो और ठिकानेदारों को भी अत्यन्त हानि है। जयपुर राज्य प्रजामण्डल की यह निश्चित राय है कि ठिकानों की जनता को वही कानूनी, आर्थिक, सामाजिक और व्यक्तिगत अधिकार व सुविधाऐ प्राप्त होनी चाहिए जो राज्य की जनता के लिए आकाक्षित है।"[89]

सन् 1936 के अन्त तक सीकर एव शेखावाटी के अन्य ठिकानों के किसान शान्त हो गए थे, किन्तु यह शान्ति टिकाऊ नहीं थी। ठिकानों की चालाकियों के कारण शेखावाटी में किसान असन्तोष बढ रहा था। इन आन्दोलनों के प्रमुख नेताओं ने प्रजामण्डल के पहले अधिवेशन में भाग लिया था। शेखावाटी के किसान नेताओं ने अपने सगठनों का विलय प्रजामण्डल में नहीं किया था। अब किसान नेता इस बात से सहमत थे कि व्यवस्था परिवर्तन के बिना किसानो की समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं था।

शेखावाटी के किसान आन्दोलन के मुद्दो को प्रजामण्डल के कार्यक्रम मे शामिल कर लिया गया था, फिर भी किसान अपने सगठनो के माध्यम से स्वतत्र रूप से भी सक्रिय रहे।

सीकर ठिकाने का आन्दोलन (1938–39)

प्रजामण्डल के समर्थन से किसान आन्दोलन मे नया उत्साह आया। अप्रेल 1938 मे सीकर के रावराजा एव जयपुर दरबार के मध्य विवाद उत्पन्न हो गया था। इस विवाद का कारण सीकर राव राजा के पुत्र हरदयाल सिह को शिक्षा प्राप्ति हेतु जयपुर महाराजा इग्लैण्ड भेजना चाहते थे जिसका रावराजा ने विरोध किया। इसके साथ ही जयपुर दरबार एव सीकर ठिकाने के बीच सशस्त्र सघर्ष आरम्भ हो गया था। राव राजा के समर्थन में सभी ठिकानो से राजपूत हजारो की सख्या मे सीकर मे एकत्रित हो गए थे। 26 अप्रेल 1938 को जयपुर दरबार ने सैनिक अभियान द्वारा राजपूतो के इस विद्रोह को दबा दिया तथा 29 अप्रेल को जयपुर रेजीडेन्ट रावराजा को अपने साथ जयपुर ले गया एव उसे देश निकाले का दण्ड देकर आबू भेज दिया गया।[10] राव राजा के समर्थको ने सीकर पब्लिक कमेटी नामक सगठन बनाकर राव राजा के पक्ष मे आन्दोलन आरम्भ कर दिया था।

सीकर के नए राजनीतिक माहौल मे जाट किसानो का महत्त्व अधिक बढ गया था। जयपुर दरबार का रुख किसानो के प्रति नरम हो गया था। राव राजा के निष्कासन के पश्चात् सीकर पर जयपुर दरबार का नियत्रण स्थापित हो गया था। पब्लिक कमेटी नई प्रशासनिक व्यवस्था का विरोध कर रही थी, किन्तु किसान इसे अपने हित मे देख रहे थे। किसान इस स्थिति का लाभ उठाते हुए अपनी समस्याओ के समाधान हेतु पुन सक्रिय हो गए थे। 1 मई 1938 को जाट पचायत सीकर के मन्त्री ने सार्वजनिक घोषणा की थी कि जाट किसानो का पब्लिक कमेटी द्वारा चलाए जा रहे आन्दोलन के साथ कोई सहयोग एव सहानुभूति नहीं है। उसने यह भी स्पष्ट किया कि इस कमेटी का नेतृत्त्व उन लोगों के हाथ में है जो लम्बे समय से किसानो के शोषण दमन एव उत्पीड़न में लगे हुए थे।[11] बदलती स्थितियों में सीकर जाट किसान पचायत ने 24 जून, 1938 को एक सभा का आयोजन किया। पचायत के अध्यक्ष चौधरी हरिसिह, पलथाना निवासी के सभापतित्व में 2000 जाट किसानों ने भाग लिया। इस सभा में सीकर पब्लिक कमेटी के आन्दोलन के साथ जाट किसानों द्वारा सहयोग न करने के लिए सार्वजनिक निर्णय लिया।[12] इस सभा के मुख्य वक्ता भरतपुर के जाट नेता कुवर रतन सिह ने पब्लिक कमेटी की मागों को स्वार्थपूर्ण बताते हुए कहा कि ये मागें नि सन्देह किसानों की बरबादी लाने वाली हैं। इस सन्दर्भ में जाटों का सर्वोच्चसत्ता (अग्रेजी सरकार) एव जयपुर सरकार से निवेदन था कि सीकर में जयपुर राज्य का प्रशासनिक नियत्रण जारी रखा जाए। कुल मिलाकर सम्पूर्ण प्रकरण में किसानों ने जयपुर राज्य का खुला समर्थन किया।

जुलाई, 1938 के अन्त तक सीकर पब्लिक कमेटी का आन्दोलन समाप्त हो गया था। यह सम्भावना प्रबल होती जा रही थी कि सीकर के किसानों के साथ जागीरदार एव ठिकानों द्वारा कठोरता बरती जायेगी। यह सम्भावना सीकर के बन्दोबस्त अधिकारी

मगलचन्द मेहता ने 25 जुलाई 1938 को जयपुर राज्य के प्रधानमन्त्री को लिखे पत्र मे व्यक्त की थी। इस अधिकारी ने यह भी स्पष्ट किया था कि ठिकाने के अधिकारी एव छोटे जागीरदार सीकर के भूमि बन्दोबस्त में आरम्भ से ही बाधा डाल रहे हैं। यदि बन्दोबस्त ठीक प्रकार से हो जाए तो सीकर के किसानों की समस्याओ का समाधान हो सकता है। वैसे किसानों के साथ सम्पर्क से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि उनके दिल काफी मजबूत हैं।[73]

सितम्बर, 1938 में सीकर के किसानों ने पुन सघर्ष आरम्भ कर दिया था। इस सघर्ष को आगे बढाने, जाटो मे एकता एव सघर्ष की भावना विकसित करने एव बाहर से जन समर्थन जुटाने के उद्देश्य से "जाट क्षत्रिय किसान पचायत" का वार्षिक जलसा 11–12 सितम्बर 1938 को गोठरा नामक गाव में आयोजित किया। इस जलसे में 10–11 हजार के मध्य जाटों, 500 स्त्रियो एव अन्य जाति के लोगों ने भाग लिया।[74] इस सम्मेलन में निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुए –

1 सन् 1934 में सीकर के जाट बोर्डिंग स्कूल हेतु भूमि देने के वायदे को पूरा किया जाए।
2 राज्य द्वारा जाट विद्यार्थियों को छात्रवृत्तिया स्वीकृत की जानी चाहिए।
3 अन्य जातियों की सख्या के समान शिक्षित जाटो को उच्च पद दिए जाने चाहिए।
4 पिलानी के बिडला कॉलेज का स्तर डिग्री कॉलेज तक बढाया जाना चाहिए।
5 गावो में विद्यालय एव औषधालय खोले जाने चाहिए।
6 सीकर एव जयपुर की अदालतो में बाहर के वकीलों को प्रस्तुत होने की अनुमति दी जानी चाहिए।
7 वर्तमान प्रशासन मे (सीकर के) कोई परिवर्तन नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि कैप्टन वेब के कार्यालय से किसान लाभान्वित हुए हैं। उसे बन्दोबस्त पूरा होने तक यहीं रखा जाए।
8 जाटों को राजनीतिक एव सामाजिक मामलों में अन्य जातियों के समान अधिकार दिए जायें।
9 सन् 1934 के समझौते के अनुसार बन्दोबस्त अधिकारी द्वारा राजस्व के निर्धारण तक वर्तमान राजस्व की राशि आधी की जाए।
10 हाल के सीकर विद्रोह के सम्बन्ध मे जाटो के साथ दुर्व्यवहार करने वाले व्यक्तियों को सजा दी जाए।
11 उन्हे वायदानुसार जमीन पर पैत्रिक अधिकार प्रदान किए जाये।
12 वायदानुसार सभी गैर कानूनी कर जैसे लाग–बाग समाप्त की जानी चाहिए।
13 उन किसानों से इस वर्ष लगान नही लिया जाए जिनकी फसलें नष्ट हो गई हैं।
14 प्रशासन द्वारा पशुओ के चारे की व्यवस्था की जाए।

15 सितम्बर, 1938 को एक प्रतिनिधि मण्डल ने उपरोक्त प्रस्तावों से युक्त ज्ञापन जयपुर राज्य के प्रधानमत्री के समक्ष प्रस्तुत किया। प्रधानमत्री ने किसानो को उनकी

समस्याओ के शीघ्र समाधान का आश्वासन देते हुए सूचित किया कि मि ब्राउन, आइ सी एस को बन्दोबस्त आयुक्त नियुक्त किया गया है। यह नया अधिकारी लम्बे समय से चले आ रहे भू-स्वामित्व के विवाद को शीघ्र सुलझायेगा ऐसी सम्भावना भी व्यक्त की।[75]

जयपुर राज्य प्रजामण्डल की स्थापना के बाद से ही जयपुर राज्य ने सम्पूर्ण राज्य के भूमि बन्दोबस्त कार्य मे तत्परता दिखाना आरम्भ कर दिया था। असन्तुष्ट किसानो को प्रजामण्डल सरलता से सगठित करता जा रहा था। जयपुर राज्य सभी प्रकार के राजनीतिक एव जन आन्दोलन का समाधान भूमि बन्दोबस्त में देख रहा था किन्तु किसान मात्र आश्वासनों से शान्त होने वाले नही थे। दिसम्बर, 1939 तक सीकर के खालसा क्षेत्रो का बन्दोबस्त पूरा हो गया था जिसमें किसानों को कुछ भू-स्वामित्व के अधिकार प्रदान कर दिए थे। अब सीकर के जागीर क्षेत्रो का मुद्दा किसान आन्दोलन का आधार बन गया था। फिर भी सीकर के किसानो की हलचल कुछ समय के लिए शान्त हो गई थी।

शेखावाटी के अन्य ठिकानों के किसानो ने जयपुर राज्य प्रजामण्डल के सहयोग से सितम्बर, 1938 मे आन्दोलन आरम्भ किया। इस आन्दोलन की माँगो में 1938-39 के राजस्व मे छूट अकाल राहत कार्य, लाग-बागों की समाप्ति इत्यादि सम्मिलित थी। माँगों को मनवाने के लिए सबसे प्रभावशाली आन्दोलन "करबन्दी आन्दोलन" आरम्भ कर दिया था। करबन्दी आन्दोलन तब तक चलाया जाना निश्चित किया गया था जब तक कि ठिकानो की ओर से राजस्व में उपयुक्त छूट की घोषणा न की जाए। नवम्बर, 1938 के प्रथम सप्ताह में यहाँ के किसान नेताओं ताडकेश्वर शर्मा, हरलाल सिह एव चौधरी लादूराम को गिरफ्तार कर लिया गया।[76] 9 दिसम्बर, 1938 को जयपुर राज्य कौंसिल ने यह प्रस्ताव पास किया कि "24 दिसम्बर, 1934 की अधिसूचना को एक वर्ष के लिए लागू किया जाए जिसके द्वारा भू-राजस्व न देने के लिए उकसाने वालो को सजा का प्रावधान रखा गया है।" शेखावाटी के किसानो को प्रजामण्डल की गतिविधियों से अलग रखने के उद्देश्य से यह कानून पुन लागू किया गया था। फिर भी राज्य शेखावाटी के किसानों को प्रजामण्डल आन्दोलन से अलग रखने में असफल ही रहा।

जयपुर सरकार ने 16 दिसम्बर 1938 को जयपुर राज्य प्रजामण्डल के अध्यक्ष सेठ जमनालाल बजाज के जयपुर प्रवेश पर रोक लगा दी थी। 1 फरवरी 1939 को जमना लाल बजाज के जयपुर पहुँचने पर उसे गिरफ्तार कर लिया गया था।[77] जमना लाल बजाज की गिरफ्तारी के साथ ही जयपुर राज्य प्रजामण्डल ने उसकी मुक्ति एव अपनी माँगो को मनवाने के लिए सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। सत्याग्रह जयपुर शहर में आरम्भ किया गया था किन्तु कुछ समय पश्चात् यह शेखावाटी में भी चलाया गया। शेखावाटी किसान जाट पचायत के उप मत्री चौधरी लादूराम ने 17 फरवरी, 1939 को एक जत्थे के साथ गिरफ्तारी दी। गिरफ्तारी के समय अपने सम्बोधन में चौधरी लादूराम ने इस सत्याग्रह के विषय में कहा कि "जयपुर सत्याग्रह कौंसिल ने यह तय किया है कि शेखावाटी में भी सत्याग्रह का एक केन्द्र बनाया जाए और मुझे बड़ी खुशी है कि उसके

आदेशानुसार मैं पहला जत्था लेकर झुन्झुनू में सत्याग्रह करने आया हूँ। वैसे तो अभी यह सत्याग्रह इसलिए शुरू किया गया है कि जयपुर राज्य में प्रजा को नागरिक अधिकार यानी लिखने बोलने, सभा करने, जुलूस निकालने और सस्था कायम करने की आजादी नहीं हैं, वह मिले परन्तु हम भूल नही सकते कि जयपुर राज्य में प्रजा को और खासकर किसान भाईयों को कई तरह के कष्ट और दुख हैं और राज्य के हाकिम उनको तरह–तरह से सताते भी हैं।"[8]

जयपुर राज्य प्रजामण्डल ने 1 मार्च, 1939 को किसान दिवस मनाया एव सम्पूर्ण राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में जयपुर राज्य की किसानों के प्रति नीति का विरोध किया गया। इस आयोजन ने विशेष रूप से शेखावाटी के किसान आन्दोलन को नैतिक मजबूती प्रदान की। सन् 1939 का वर्ष शेखावाटी में अकाल का वर्ष था। अकाल के कारण पशुधन भारी सख्या में मर रहा था। किसानों की आर्थिक बदहाली और अधिक बढ चुकी थी। इस सबके बाद भी शेखावाटी के ठिकाने अकाल राहत के कार्य करने के स्थान पर किसानों से लगान वसूली की योजना बना रहे थे। दूसरी ओर शेखावाटी के ठिकाने किसानों को डरा धमका कर अथवा फुसलाकर किसी भी प्रकार के आन्दोलन से अलग रखने के प्रयास कर रहे थे। शेखावाटी किसान जाट पचायत ने अपनी पत्रिका के माध्यम से किसानों को ठिकानेदारों को धोखे मे न आने एव सघर्ष को आगे बढाने का आह्वान किया।

जून, 1939 के "पचायत पत्रिका" के अक में पचायत ने शेखावाटी की ताजा स्थिति पर प्रकाश डालते हुए किसानों को अपने हितों के प्रति सचेत रहने की सलाह दी थी।"[9] इसी प्रकार जुलाई, 1939 के "पचायत पत्रिका" के अक में लाग–बागों का विरोध किया गया था। इसमें ठिकानों पर आरोप लगाया गया था कि जयपुर राज्य द्वारा लाग–बागों की समाप्ति के उपरान्त भी अनेक नए नामों से लाग–बाग किसानों पर थोपी जा रही थी। शेखावाटी किसान जाट पचायत के प्रधानमत्री ताड़केश्वर शर्मा ने किसानों से अपील की कि "लाग–बाग हमारे लिए एक तरह का अभिशाप और कलक है। इनमे से कई तो ऐसी हैं जिनका देना–लेना दोनों मनुष्यता से गिराता है। इसलिए लेना–देना दोनों ही पाप कार्य है।"[10] शेखावाटी किसान जाट पचायत ने पत्रिका एव परचों के माध्यम से अपना अभियान जारी रखा।

सरकार एव ठिकानों के दमन से बचने के लिए किसान पचायत के कार्यकर्ताओ ने गुप्त रूप से भी आन्दोलन का सचालन किया था। इसी समय गुप्त रूप से एक परचा निकला था जिसमें नीचे लिखा था, निवेदक, एक नवलगढ निवासी एव परचे का शीर्षक था "ठिकाना नवलगढ की नादिरशाही।"[11] इस परचे में शेखावाटी के अकाल के सन्दर्भ में लिखा था कि "गत दो वर्षो से जबकि प्रजा दुष्काल से हाहाकार कर रही है, हजारों अनाथ पशुधन बेमौत मर रहे हैं लाखों गरीब भूखों तडप रहे हैं, दूसरी रियासतों में जहाँ लाखों करोड़ों रुपया लगान के छोडकर गरीब प्रजा को राहत दी जा रही हैं, वहा जयपुर दरबार मे दुष्काल पीडित प्रजा के ऊपर एक और बड़ा बोझ डाल दिया है। शेखावाटी में बहुत से छोटे ठिकानें हैं, जिनकी बागडोर निष्ठुर राजपूतों के हाथ में है, जो निरीह प्रजा

को केवल सताना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं।"

बढते हुए किसान असन्तोष को शान्त करने के उद्देश्य से जयपुर सरकार के राजस्व विभाग ने ठिकानो के राहत उपायों के सम्बन्ध मे 11 अक्टूबर, 1939 को निम्नलिखित अधिसूचना जारी की

"फसल खराबी एव अकाल की स्थितियों को ध्यान में रखकर राज्य कौन्सिल ने निम्नलिखित सुविधाओं का आदेश दिया है –

1 ठिकानों पर बकाया राशि को वसूल नहीं किया जाए एव स 1996 (1939 ई) की बकाया राशि पर ब्याज नहीं लिया जाए।
2 इस वर्ष देय मुआमला, सूखा एव मातमी की किश्तें यदि पहले से निर्धारित हैं तो साधारण तरीके से वसूल किया जाए।
3 ठिकानों के खिलाफ दीवानी एव राजस्व अदालतों की कुर्की की कार्यान्विति एव बचत की वसूली सं 1996 (1939 ई) के लिए स्थगित कर दी जाए।
4 किसानों के लाभार्थ राहत उपाय अपनाने हेतु ठिकानों के ऋण प्रस्तावों पर पात्रता के आधार पर विचार किया जाएगा, किन्तु ऋण लेने वाले को इस बात की पर्याप्त गारटी देनी होगी कि ऋण का गलत उपयोग नहीं होगा।
5 सम्पूर्ण राज्य के चुने हुए केन्द्रों पर चालीस चारा भण्डार खोले हैं जहा निर्धारित दर पर चारा खालसा एव जागीर के किसानों को दिया जाए।
6 सिंचित भूमि पर चारा फसल बोने पर राजस्व माफ किया जाए।
7. जो इतने गरीब हैं कि वे कम दर पर चारा नहीं खरीद सकते, उन्हें 5 मन खाकला प्रति महीने मुफ्त में दिया जाए।"[12]

11 अक्टूबर, 1939 की अधिसूचना जारी होने के उपरान्त भी शेखावाटी के ठिकानों में न तो राजस्व में ही छूट दी एव न ही अकाल राहत कार्य आरम्भ किए। 19 अक्टूबर, 1939 को शेखावाटी किसान जाट पचायत ने जयपुर के प्रधानमंत्री को ज्ञापन देकर ठिकानों की शिकायत की। कुल मिलाकर 1939 का वर्ष शेखावाटी के किसानों जयपुर सरकार एव ठिकानों के मध्य खींचतान में बीता। 1 जनवरी, 1940 को शेखावाटी जाट किसान पचायत के गिरफ्तार नेताओं एव कार्यकर्त्ताओं को रिहा कर दिया गया था। जनवरी, 1940 में इस रिहाई के बाद शेखावाटी के किसान आन्दोलन के शान्त होने की सम्भावना थी, किन्तु इसी वर्ष जयपुर सरकार द्वारा लगाई गई जकातों (सीमा शुल्क) ने आग में घी का काम किया तथा इसके विरोध में जगह–जगह प्रदर्शन हुए। इस विरोध के परिणामस्वरूप जून, 1940 में जयपुर सरकार ने सीमा शुल्क को कम एव उदार कर दिया था तथा एक समिति का गठन भविष्य में सीमा शुल्क की नीति निर्धारण हेतु किया गया।

शेखावाटी का किसान आन्दोलन धीमी गति से चल रहा था। किसान भूमि बन्दोबस्त के पूर्ण होने का इन्तजार कर रहे थे। इसी धीमी गति के कारण प्रजामण्डल के कार्य में भी अधिक प्रगति नहीं हो पा रही थी। जयपुर राज्य प्रजामण्डल का द्वितीय वार्षिक

अधिवेशन 25–26 मई, 1940 को जयपुर में हुआ। इस अधिवेशन मे ठिकानों के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया था–

"जयपुर राज्य के अधिकाश ठिकानों मे बसने वाली जनता के साथ ठिकानेदारों का जो व्यवहार है वह अधिकाश मे गैर–कानूनी कष्टदायक, विकास अवरोधक तथा अशान्ति उत्पादक है। इससे न केवल जनता की बल्कि ठिकानेदारो की भी अत्यन्त हानि है। जयपुर राज्य प्रजामण्डल की यह निश्चित राय है कि ठिकानों की जनता को भी वही कानूनी आर्थिक, सामाजिक और व्यक्तिगत अधिकार व सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहिए जो राज्य की जनता के लिए आकाक्षित है।

ठिकानेदारो के गावो में बसने वाले किसानों के बढते हुए असन्तोष व उनकी तकलीफों को मिटाने के लिए किसानों के अधिकारों को सुरक्षित रखते हुए नवीन पद्धति का भूमि बन्दोबस्त शीघ्र से शीघ्र किया जाए और खूटा बन्दी एव पान चराई सहित कुछ लाग–बाग और कौडी चुगी को तुरन्त बन्द किया जाए।

प्रजामण्डल का यह अधिवेशन जयपुर दरबार से एक सरकारी और गैर–सरकारी सदस्यों का कमीशन नियुक्त करने की भी माँग करता है, जो जागीरों मे बसने वाली जनता पर होने वाले अन्य अत्याचारों व उनके कारणों की जाँच करे और जागीरदारों के खिलाफ उनके अत्याचारों के लिए न्यायोचित कार्यवाही करे।"[3]

प्रजामण्डल के खुले समर्थन से शेखावाटी के किसानों के हौंसले बुलन्द हो गए थे। जयपुर राज्य प्रजामण्डल अभी तक मान्यता के लिए सघर्षरत था। जयपुर पब्लिक सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट के तहत प्रजामण्डल का पजीकरण करने मे सरकार आना–कानी कर रही थी। अप्रेल, 1941 में जयपुर महाराजा द्वितीय विश्व युद्ध में सक्रिय सेवा के लिए बाहर जाने वाला था एव जन समस्याएँ यथावत पडी थी। 5–6 अप्रेल 1941 को जयपुर राज्य प्रजामण्डल का तीसरा वार्षिक अधिवेशन झुन्झुनू में आयोजित हुआ था।[4] इसमे एक ही प्रस्ताव पास हुआ था कि अब धैर्य की सीमा टूट गई है एव मण्डल को मजबूर होकर अपनी मागों के समर्थन मे सत्याग्रह की योजना बनानी पड रही है। 24 अप्रेल 1941 को प्रजामण्डल की कार्यकारिणी के निर्णय पर अध्यक्ष हीरा लाल शास्त्री ने जयपुर महाराजा के नाम खुला पत्र भेजा जो 26 अप्रेल 1941 के "हिन्दुस्तान टाइम्स" के अक मे प्रकाशित हुआ था।[5] इस पत्र में अनेक प्रयासों के उपरान्त भी प्रजामण्डल के शिष्ट मण्डल से महाराजा की न मिलने की आलोचना की गई थी। द्वितीय विश्व युद्ध के सैनिक अभियान मे महाराजा के विदेश गमन का विरोध किया गया था। प्रजामण्डल के पजीकरण की माँग की गई थी। आगे स्पष्ट उल्लेख किया गया था कि "सरकार की जकात (सीमा शुल्क) नीति से जनता मे असन्तोष बढ रहा है। किसान असन्तोष तीव्रता से बढ रहा है एव अभी भी ऐसी अफवाहें हैं कि शेखावाटी के किसानो पर ठिकानों द्वारा अस्वीकार्य भूमि बन्दोबस्त थोपा जा रहा है। दमन की निरन्तर नीति के अनुसार निर्दोष लोगों को भारत सुरक्षा कानून एव करबन्दी नियमों के तहत गिरफ्तार किया जा रहा है

जेलों में राजनीतिक बन्दियों के साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा है, जिसे न्यायोचित नहीं कहा जा सकता।"

सीकर एवं शेखावाटी के ठिकानों व जागीरों का भूमि बन्दोबस्त अगस्त 1941 तक पूरा हो गया था, किन्तु सरकार इसे घोषित करने का साहस नहीं जुटा पा रही थी। प्रजामण्डल एवं किसान नेताओं को इसकी जानकारी पहले ही मिल चुकी थी कि भूमि बन्दोबस्त में क्या हुआ है। जयपुर के भूमि बन्दोबस्त के कार्यों को अन्तिम रूप देने के लिए 12 अप्रेल, 1941 को जयपुर राज्य कौंसिल ने एक समिति का गठन किया, जिसमें 7 व्यक्तियों में से 2 राजस्व विभाग के उच्चाधिकारी एवं 5 ठिकानेदारों को सदस्य बनाया गया था।" इस समिति ने किसानों को दिए जाने वाले स्थाई भू-स्वामित्व के अधिकार का विरोध किया। भू-राजस्व एवं लाग-बाग में कमी की बात तो कुछ सीमा तक स्वीकार कर ली थी, किन्तु किसानों की स्थिति जागीरदार की इच्छा पर निर्भर किराएदार की ही रही। किसानों को जागीरदारों के चुंगल से मुक्ति देने की ओर कोई विचार नहीं किया गया था बल्कि किसानों पर इनका शिकंजा और अधिक कसने की कोशिश की गई थी। किसानों को प्राकृतिक उत्पादों जैसे खेजड़ा, कीकर, लूम, पातरा, पाना, पूला आदि पर कोई अधिकार नहीं दिया गया था। केवल भूमि की पैमाइश कर दी गई थी एवं भू-राजस्व का आकलन प्रति बीघा के हिसाब से नगदी में कर दिया गया था तथा किसानों के अधिकारों को दर्ज करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। 15 अगस्त, 1942 को जयपुर सरकार ने इस बन्दोबस्त के पूर्ण होने की औपचारिक घोषणा कर दी थी, क्योंकि इसके माध्यम से शेखावाटी के किसानों को 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन से अलग रखना था। इस बन्दोबस्त का किसानों ने संविधानिक एवं शान्तिपूर्ण तरीकों से विरोध करना आरम्भ कर दिया था। 11 दिसम्बर, 1942 को पुर्नविचार कर जयपुर सरकार ने किसानों को कुछ अतिरिक्त छूट एवं सुविधाएँ प्रदान की जो इस प्रकार थी":-

1. सभी किस्म की भूमि पर 6.25 प्रतिशत अर्थात 1 रुपये पर एक आना छूट दी जाए एवं भविष्य में भूमि के वर्गीकरण, राजस्व की दर व राजस्व के गठन के मामले में किसी भी पक्ष की ओर से की गई शिकायतों पर कोई कार्यवाही नहीं होगी।
2. मलबा (गाव खर्च) एवं पटवार लाग ठिकानों की आय का भाग नहीं है। मलबा शुद्ध रूप से गाव के कार्यों के लिए है एवं यह लाग की तरह थोपी नहीं जाएगी।
3. पटवार लाग 6 पैसे प्रति रुपये राजस्व की दर से लगेगी जिसका उपयोग प्रशिक्षित पटवारियों के रखने के लिए किया जाएगा, जो उपयुक्त बन्दोबस्त के लिए आवश्यक है।
4. राज्य के अन्य भागों की तरह बन्दोबस्त की अवधि 1941 से 10 वर्ष तक निर्धारित की गई है।
5. पिछले समय की बकाया राशि की माफी में वही तरीका अपनाया जाएगा जो खालसा क्षेत्रों में है।
6. किसानों को प्राकृतिक उत्पादों पर अधिकार होगा।

7 जोहड (चारागाह) के समान उपयोग के सन्दर्भ मे यथास्थिति रहेगी।

उपरोक्त अतिरिक्त छूटो से किसान कुछ सीमा तक सन्तुष्ट थे किन्तु ठिकाने नए बन्दोबस्त को लागू करने के पक्ष मे नही थे। ठिकाने नए बन्दोबस्त एव राज्य की घोषणाओं को नजर अन्दाज कर मनमानी राजस्व थोपने का प्रयास कर रहे थे। किसान ठिकाने के स्थान पर भू–राजस्व नाजिम के कार्यालय में जमा कराना चाहते थे। किसानों को ठिकाने के हाथो से कोई न्याय मिलने की आशा नहीं थी। किसान एव उनके नेता यह समझ चुके थे कि व्यवस्था परिवर्तन के बगैर उन्हे न्याय नही मिल सकता। किसान नेता हरलाल सिह ने 12 फरवरी 1943 को पत्र लिखा जिसमें जयपुर राज्य के प्रधानमत्री का ध्यानाकर्षित निम्नाकित बातो पर किया था[88] –

1 राज्य ने शेखावाटी के ठिकानों के बन्दोबस्त के सम्बन्ध मे अन्तिम निर्णय दे दिया है, किन्तु कुछ ठिकाने वाले राज्य के निर्णय को नजर अन्दाज कर मनमानी राजस्व वसूल करने के लिए कटिबद्ध हैं।

2 किसानो की कठिनाईयो को देखते हुए राज्य व्यवस्था करे कि जिन किसानो से ठिकाने बन्दोबस्त के अनुसार राजस्व स्वीकार न करें उनका राजस्व शेखावाटी के नाजिम द्वारा लिया जाए।

3 ठिकानेदार स्वय द्वारा निर्धारित राजस्व की वसूली में उत्पीड़क तरीकों का सहारा ले रहे हैं एव किसान उनके हाथों काफी पीडा भोग रहे हैं इसलिए आपसे निवेदन है कि –

   अ यह कि ठिकानो को चेतावनी दी जाए कि वे निर्धारित राजस्व से अधिक राशि वसूल न करें एव राज्य की अधिसूचना द्वारा प्रावधान रखा जाए कि जो निर्धारित राजस्व से अधिक वसूल करे उसके खिलाफ आवश्यक कार्यवाही कर सजा दी जाएगी।

   ब किसानों से राजस्व स्वीकार करने के शेखावाटी के नाजिम को स्पष्ट आदेश प्रसारित किए जायें।

   स ठिकानो की कठोरता के खिलाफ किसानो की सुरक्षार्थ पुलिस को निर्देश दिए जाये।

13 फरवरी 1943 को एक अन्य पत्र द्वारा जयपुर के राजस्व मन्त्री को शिकायत की थी कि "आपने अभी तक अकाल वर्ष के लगान में छूट के सम्बन्ध में कोई घोषणा नहीं की है एव पुराने बकाया भुगतानो को रदद करने का आदेश नहीं दिया है।"[89] इन पत्रों की प्राप्ति के तुरन्त बाद ही राजस्व मत्री ने शेखावाटी के नाजिम को स्पष्ट आदेश दिए कि किसानों से निजामत मे राजस्व स्वीकार कर लिया जाए। इसके साथ ही पुलिस महानिरीक्षक को आदेश दिए कि किसानो के प्रति ठिकानों के दुर्व्यवहार एव कठोरताओं के खिलाफ किसानों को सुरक्षा प्रदान करने के आवश्यक कदम अविलम्ब उठाए जायें।[90]

ठिकानो द्वारा इन आदेशो का विरोध किया गया। 2 मार्च 1943 को मण्डावा ठिकाने के वकील ने राजस्व मन्त्री को पत्र लिखा "अक्सर देहात के काश्तकारान ठिकाने मे लगान अदा न करके निजामत में माल दाखिल कर देते हैं और निजामत मे माल जमा कर लिया जाता है इसमे ठिकाने का नुकसान है लिहाजा अर्ज है कि बनाम नाजिम जो हुकम सादिर फरमाया जावे कि काश्तकारान ठिकाने का माल निजामत मे न जमा करे और जिन काश्तकारान ठिकाने से माल निजामत में जमा कर लिया गया है उनको वापस लौटा देवे।"[71]

शेखावाटी के किसानो की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आ रहा था। ठिकानें व किसान अपने-अपने पक्ष पर डटे हुए थे। अत शेखावाटी की समस्या यथावत बनी हुई थी। जयपुर सरकार ने समस्या के समाधान हेतु 3 दिसम्बर, 1943 को विशेष बन्दोबस्त आयुक्त नियुक्त किया। उसने 3 जून, 1944 की एक टिप्पणी में लिखा कि "शेखावाटी की दो समस्याएँ हैं। पहली छोटी जागीरों में बन्दोबस्त अभी तक नहीं हुआ है एव जागीरदार किसानो से मनमाना राजस्व वसूल करते हैं, जो किसान देने के लिए सहमत नहीं हैं। दूसरी समस्या उन गावों के सम्बन्ध में हैं, जिनका बन्दोबस्त हो गया है एव राजस्व की दरें निर्धारित कर दी गई हैं, किन्तु जागीरदार इन दरों से असहमति व्यक्त कर अधिक दर वसूल करने का प्रयास कर रहे हैं एव किसान "बन्दोबस्त अधिकारी" द्वारा निर्धारित दर से अधिक कुछ भी देने के लिए तैयार नहीं है।"[72] जयपुर सरकार ने इस टिप्पणी पर कोई विचार किए बिना किसानों के खिलाफ दमनात्मक कानून लागू किए। 13 जून 1944 को आदेश प्रसारित किया गया कि यदि कोई किसानों को राजस्व अथवा लाग न देने के लिए प्रेरित करेगा अथवा उकसायेगा उसे भारत सुरक्षा नियम के तहत 5 वर्ष की सजा दी जा सकती है।[73] जयपुर राज्य 1944 के पूर्व किसानों के प्रति उदारता बरत रहा था । किन्तु किसानो ने प्रजामण्डल आन्दोलन में सम्मिलित होकर राज्य के अस्तित्व को चुनौती दी थी अत किसानों के प्रति राज्य की कठोर नीति स्वाभाविक थी।

जयपुर राज्य ने किसान दमन को और अधिक बढा दिया। 24 अप्रेल, 1945 को जयपुर सरकार ने एक आदेश द्वारा बिना अनुमति के शेखावाटी में जुलूस निकालने, सभा करने एव एकत्रित होने पर पाबन्दी लगा दी थी।[74] 8 जून 1945 को शेखावाटी की स्थिति को शान्तिपूर्ण बनाने के लिए जयपुर सरकार ने आदेश प्रसारित करते हुए ठिकानों की नई राजस्व एव प्रशासनिक व्यवस्था की घोषणा की। इसके द्वारा ठिकानों की शक्ति बढा दी गई एव लम्बे सघर्ष के बाद किसानों को जो कुछ सुविधाएँ व अधिकार मिले थे वे सब वापस ले लिये गए।[75] इस आदेश के पश्चात् जागीरदारों ने किसानो को अपनी इच्छानुसार जोतों से बेदखल करना आरम्भ कर दिया। बेदखली को कानूनी जामा पहनाने के उद्देश्य से जयपुर सरकार ने बेदखली अधिकारी (इजेक्टमेन्ट ऑफीसर) नियुक्त किया एव उसकी अनुमति से की जाने वाली बेदखली को वैध करार दिया गया।[76] ठिकानेदारों ने पिछले वर्षो के बकाया राजस्व को बलपूर्वक वसूल करना आरम्भ कर दिया था। सरकार ने ठिकानेदारों के इस कार्य में पूरी मदद की। प्रतिक्रियास्वरूप शेखावाटी के

किसानो ने करबन्दी आन्दोलन को और तेज कर दिया था। इसी समय शेखावाटी के अन्य ठिकानों के साथ ही सीकर के किसानों ने भी आन्दोलन छेड दिया था। सीकर के खालसा क्षेत्रो का भूमि बन्दोबस्त तो 1940 तक पूरा हो गया था, किन्तु सीकर के जागीर क्षेत्रो के किसानो की समस्याएँ यथावत बनी हुई थी।[96]

कुल मिलाकर 1945 में सीकर एव शेखावाटी के अन्य ठिकानों का किसान आन्दोलन पुन प्रभावशाली रुप में आरम्भ हो गया था। आन्दोलन का सचालन अब प्रजामण्डल के हाथ में पूरी तरह आ गया था। इसी समय सीकर की जागीरदार सभा ने प्रजामण्डल के नेतृत्व में किसान आन्दोलन का खुला मुकाबला करने का ऐलान किया। असल मे अब जागीरदार सगठन बनाकर वैधानिक तरीके से आत्मरक्षा के लिए अभियान चला रहे थे। भाषणो सभाओ एव वक्तव्यों के माध्यम से किसानों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने का नाटक कर रहे थे तथा प्रजामण्डल को किसानों को भडकाने के लिए जिम्मेदार ठहरा रहे थे।[97] वास्तव मे वे प्रजामण्डल एव किसानों के मध्य मतभेद उत्पन्न कर किसान आन्दोलन का दमन करना चाहते थे।

सन् 1945 के नवम्बर मे प्रजामण्डल की झुन्झुनू जिला समिति ने किसान सघर्ष तीव्र कर दिया था। 20 नवम्बर से 10 दिसम्बर, 1945 तक जयपुर राज्य प्रजामण्डल के मुख्य नेता हीरा लाल शास्त्री लादूराम जोशी नरोतम लाल वकील हरलाल सिह जाट एव लादूराम जाट ने झुन्झुनू में उपस्थित रहकर किसान आन्दोलन का सचालन किया।[98] नेता लगान वसूली मे बाधा डाल रहे थे। किसानों एव ठिकानों के मध्य हिसक वारदातें आरम्भ हो गई थी। 26 दिसम्बर 1945 को मण्डावा ठिकाने के कर्मचारी पदमपुरा नामक गाव में कर वसूली के लिए पहुँचे। जब डरा धमकाकर किसानों से वसूली का कार्य आरम्भ किया तो जाटों ने बाधा उत्पन्न की एव कर्मचारियो को मार-पीट कर भगा दिया।[99] आन्दोलन की प्रगति को देखकर 14 जनवरी 1946 को 14 नेताओ को गिरफ्तार कर लिया। किसानों के बढते हुए सघर्ष ने 22 अप्रेल 1946 को इन नेताओ की रिहाई के लिए सरकार को मजबूर कर दिया था।[100]

हरलाल सिह ने प्रजामण्डल के माध्यम से जयपुर दरबार एव जागीरदार विरोधी अभियान को काफी तीव्र एव तीखा बना दिया था। किसान नेता अब केवल राजस्व आदि की छूट एव भूमि अधिकारो की लडाई न लडकर जागीरदारी व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे थे। इस नई स्थिति का कारण भारत मे तेजी से घटने वाला घटनाक्रम था। 15 मार्च 1946 को इग्लैण्ड की ससद मे भारत की आजादी का प्रस्ताव पास हो गया था एव भारत की आजादी का स्वरूप तथा अन्तरिम सरकार के गठन सविधान निर्माण आदि के बारे में जाँच पड़ताल कर रूपरेखा तैयार करने के लिए तीन सदस्यीय आयोग का गठन किया जिसे कैबिनेट मिशन के नाम से जानते हैं। यह मिशन 24 मार्च 1946 को भारत पहुँचा एव 16 मई 1946 को इस मिशन द्वारा निर्मित योजना की घोषणा कर दी गई। इस योजना के तहत केवल ब्रिटिश भारत की आजादी का प्रस्ताव स्वीकृत किया

गया था। देशी रियासतों को आत्मनिर्णय का अधिकार दिया गया था। देशी रियासतो के जन सघर्ष की यह परीक्षा की घडी थी। अब इनकी लडाई का निशाना देशी रियासतों की व्यवस्था बन गई थी। अत राजतत्र एव सामन्तवाद की समाप्ति कर प्रजातान्त्रिक सरकार की स्थापना देशी रियासतो के जन आन्दोलन का लक्ष बन गया था।

जागीरदारी व्यवस्था की समाप्ति के नारे ने किसानो को अत्यधिक आकर्षित किया था। 23 दिसम्बर, 1946 को जयपुर मे महकमाखास (सचिवालय) परिसर में प्रजामण्डल एव किसान नेताओ ने शेखावाटी के किसानो की सभा का आयोजन किया। इस सभा में जागीरदारी व्यवस्था की पूर्ण समाप्ति की माँग की गई। हर लाल सिंह ने अपने भाषण मे जागीरदारों द्वारा किसानों की हत्या एव अत्याचारो पर प्रकाश डालते हुए जयपुर सरकार की आलोचना की। सभा के अन्त मे "जागीरदारी प्रथा का नाश हो" "शीघ्र भूमि बन्दोबस्त हो" एव "जागीरदारो के जुल्मो का नाश हो" आदि नारो से आकाश गूज उठा।[91] जन आन्दोलन को शान्त कर अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए जयपुर महाराजा ने 30 दिसम्बर, 1946 को प्रजामण्डल के नेताओं के साथ समझौता कर लिया। जयपुर राज्य प्रजामण्डल ने 1 जनवरी, 1947 को महाराजा की छत्रछाया में जिम्मेदार सरकार का गठन किया, जिसका मुख्य मत्री हीरा लाल शास्त्री एव राजस्व मत्री टीकाराम पालीवाल को बनाया गया। राजस्व मत्री ने शेखावाटी सहित सम्पूर्ण राज्य की जागीरों में शीघ्र भूमि बन्दोबस्त के आदेश दिए। इस सरकार ने 25 जनवरी, 1947 को "जयपुर जागीर लैण्ड टेनेन्सी एक्ट 1947" पारित किया जिसके द्वारा जागीरो के किसानों को भूमि अधिकार प्रदान कर दिए गए, किन्तु यह अधिनियम एक लोकप्रिय घोषणा ही बनकर रह गया था। एक ओर राजस्थान में राजनीतिक एकीकरण की प्रक्रिया चल रही थी वहीं दूसरी ओर किसानों व जागीरदारों के मध्य सघर्ष चल रहा था। जागीरदार किसानो को उनकी जोतों से बेदखल करते जा रहे थे। 31 मार्च, 1949 को वर्तमान राजस्थान प्रदेश का गठन पूर्ण हो गया था। किसानो को बेदखली से बचाने के उद्देश्य से राजस्थान सरकार ने 6 जून, 1949 को "राजस्थान किसान सुरक्षा अधिनियम" पारित किया। 20 अगस्त, 1949 को भारत सरकार ने गोविन्द वल्लभ पत की अध्यक्षता में राजस्थान मध्य भारत जागीर जाच समिति का गठन किया। इस समिति ने दिसम्बर, 1949 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जो जागीरदारी व्यवस्था के अन्त का आधार बनी। 1952 में राजस्थान सरकार ने जागीरदारी व जमीदारी उन्मूलन अधिनियम पास किया जिसके साथ ही जागीरदारी व्यवस्था सदा के लिए समाप्त हो गई।

संदर्भ

1 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट, फाइल नं 88 (r)–पी 1925 पृ 7
2 वही
3 वही डिपॉजिट–इन्टरनल प्रोसीडिंग्स जनवरी 1922 नं 27
4 वही

5 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे–2–7483 भाग–7 बस्ता न 99 पृ 13
6 वही
7 वही पृ 15
8 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न 99(7)–पी 1925 पृ 7
9 वही,
10 वही पृ 9–10
11 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे–2–2549 भाग–प्रथम बस्ता न 70 पृ 12
12 वही एव फाइल न जे–2–7483 भाग–9 बस्ता न 99
13 वही
14 वही फाइल न जे–2–2549 भाग–1 पृ 5
15 वही
16 बृज किशोर शर्मा सामन्तवाद एव किसान सघर्ष जयपुर 1992 पृ 68
17 इस समय जयपुर का शासन एक कॉन्सिल के हाथों में था जिसका अध्यक्ष अग्रेज अधिकारी (जयपुर का पॉलिटिकल एजेन्ट) को बनाया गया था। इसका कारण 7 सितम्बर 1922 को जयपुर महाराजा माधोसिह की मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी सवाई मानसिह का अल्पवयस्क होना था। इस समय सवाई मानसिह को शिक्षार्थ इग्लैण्ड भेजा हुआ था
18 राजस्थान राज्य अभिलेखागार फाइल न जे–2–2549 भाग–1 पृ 6
19 सम्पूर्ण जयपुर राज्य प्रशासनिक दृष्टि से दो सम्भागो क्रमश पूर्वी एव पश्चिमी मे बटा हुआ था एव प्रत्येक सम्भाग का प्रभारी एक दीवान होता था
20 राजस्थान राज्य अभिलेखागार (जयपुर शाखा) फाइल न आर–6–5 भाग–1 1925–26
21 वही (बीकानेर) फाइल न जे–2–2549 भाग–1 पृ 22–25
22 वही भाग–6
23 बृज किशोर शर्मा सामन्तवाद एव किसान सघर्ष जयपुर 1992 पृ 73
24 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे–2–7493 बस्ता न 98
25 वही फाइल न जे–2–7483 भाग–7 बस्ता न 99 पृ 16
26 वही फाइल न जे–2–2549 भाग–1 बस्ता न 70 पृ 31–33
27 वही पृ 34
28 वही फाइल न जे–2–7483 भाग–7 बस्ता न 99 पृ 19–20
29 वही पृ 22–23
30 वही
31 वही पृ 23
32 1 अप्रेल 1931 को जयपुर महाराजा को शासन के पूर्ण अधिकार मिल गए थे
33 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे–2–7483 भाग–7, बस्ता न 99 पृ 24

34 देशराज शेखावाटी के जनजागरण एव किसान आन्दोलन के चार दशक जयपुर 1961 पृ 13 एव बृज किशोर शर्मा, शेखावाटी का किसान आन्दोलन कृषक राजनीतिक चेतना का उदय एव विकास राज्य शास्त्र समीक्षा वर्ष 13 अक 1 पृ 85
35 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे-2-7483 भाग-9 बस्ता न 99 पृ 2
36 वही
37 वही
38 वही पृ 3
39 वही पृ 3-5
40 वही
41 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे-2-2549 भाग-7 बस्ता न 70 एव देशराज पूर्वोक्त पृ 25-26
42 देशराज पूर्वोक्त पृ 26-28
43 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे-2-2549 भाग-4 बस्ता न 70
44 वही, फाइल न जे-2-7483 भाग-9 बस्ता न 99 पृ 14
45 वही पृ 15-16
46 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स, फाइल न जे-2-2549 बस्ता न 70, पृ 14
47 राजस्थान राज्य अभिलेखागार, जयपुर रिकार्ड्स, फाइल न जे-2-7483 भाग-9 बस्ता न 99 पृ 17-18
48 बृज किशोर शर्मा सामन्तवाद एव किसान सघर्ष पृ 101-102
49 वही
50 राजस्थान राज्य अभिलेखागार, जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे-2-7483 भाग-9 बस्ता न 99 पृ 19
51 वही पृ 19-20
52. वही भाग-7 बस्ता न 99 पृ 26
53 वही भाग-9 बस्ता न 99, पृ 9-10
54 देशराज पूर्वोक्त पृ 22-23
55 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे-2-7483 भाग-1, बस्ता न 99 पृ 27
56 वही
57 वही
58 हिन्दुस्तान टाइम्स, 29 मई 1935 पृ 9
59 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे-2-7493 बस्ता न 99 पृ 27
60 दी हिन्दुस्तान टाइम्स 17 जुलाई 1935
61 अर्जुन 30 जुलाई 1935
62 राजस्थान राज्य अभिलेखागार शाखा जयपुर फाइल न आर-6-1728

63 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे–2–7483 भाग–9 बस्ता न 99 पृ 20
64 वही
65 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे–2–2549 भाग–5 बस्ता न 70 पृ 206–9
66 वही पृ 230–33 एव 242–45
67 वही पृ 251
68 वही
69 जयपुर राज्य प्रजामण्डल प्रथम वार्षिक अधिवेशन जयपुर 1938 स्वीकृत प्रस्ताव सख्या 9 प्रस्तावों की प्रकाशित पुस्तिका पृ 10–11
70 बृज किशोर शर्मा सामन्तवाद एव किसान सघर्ष पृ 124
71 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे–2–7483 भाग–2 बस्ता न 97 पृ 195–198
72 वही भाग 4 पृ 359–360
73 वही भाग 5 पृ 372–374
74 वही भाग 6 बस्ता न 98 पृ 162–163
75 वही
76 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे–2–2549 भाग–2 बस्ता न 70
77 वही फाइल न जे–2–7483 भाग–6 बस्ता न 46
78 वही फाइल न जे–2–2549 भाग 5 बस्ता न 98 पृ 366
79 पचायत पत्रिका जून 1939
80 वही जुलाई 1939
81 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे–2–5525 भाग–3 पृ 87
82 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर शाखा फाइल न आर–12–79 1939 पृ 44–50
83 जयपुर राज्य प्रजामण्डल द्वितीय वार्षिक अधिवेशन जयपुर 1940 स्वीकृत प्रस्ताव सख्या 7 पृ 7
84 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे–2–5525 भाग–2(आर) पृ 231–33
85 राष्ट्रीय अभिलेखागार पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न 360–पी (सीक्रेट) 1941 पृ 15
86 वही फाइल न 138–पी (एस) / 1911 पृ 61
87 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर रिकार्ड्स फाइल न जे–2–2549 भाग–5 बस्ता न 70
88 वही पृ 391–92
89 वही पृ 393
90 वही पृ 400
91 वही पृ 401
92 राजस्थान राज्य अभिलेखागार शाखा जयपुर फाइल न आर–14–1944
93 दी जयपुर गजट 15 जून 1944

94 जयपुर गजट, 26 अप्रैल 1945

95 जयपुर गजट 14 जून 1945

96 राजस्थान राज्य अभिलेखागार शाखा जयपुर डिपोजिटेड रिकार्ड रेवेन्यू सेटिलमेन्ट फाइल न 13/एन डब्ल्यू आर /सी 5

97 वही फाइल न 48/एन डब्ल्यू आर /सी 5 पृ 12–13

98 वही पृ 16–18

99 वही पृ 20

100 वही, पृ 64

101 राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर प्रजामण्डल रिकार्ड फाइल न 15/1947

अध्याय – 7

बूँदी राज्य में किसान आन्दोलन

बिजौलिया के किसान आन्दोलन के प्रभाव में बूँदी में किसान आन्दोलन आरम्भ हुआ। बिजौलिया के पड़ौस में स्थित बूँदी का बरड क्षेत्र 1920–22 की अवधि में किसान आन्दोलन से प्रभावित था, अर्थात् मेवाड़ में उपजे किसान आन्दोलन का विस्तार बूँदी तक हुआ। आन्दोलन के दौरान बिजौलिया के किसानो का सामाजिक सम्पर्क बूँदी के बरड क्षेत्र में किसान आन्दोलन उत्पन्न करने में सफल रहा। 1922 के आरम्भ मे बिजौलिया किसान आन्दोलन एक सफल मजिल की ओर अग्रसर था। फरवरी 1922 में बिजौलिया के आन्दोलित किसानो व यहाँ के राव के मध्य समझौता वार्ता आरम्भ हो गई थी । इस वार्ता के दौरान किसानों की अधिकाश माँगें स्वीकार कर ली गई थी। अत बिजौलिया के किसानो की सफलता ने बूँदी के बरड क्षेत्र के किसानों को अपने अधिकारों की प्राप्ति हेतु सघर्ष के लिए प्रोत्साहित किया। राजस्थान सेवा सघ राजस्थान मे राजनीतिक आन्दोलन खडा करना चाहता था। राजस्थान सेवा सघ ने बिजौलिया के किसान आन्दोलन मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इसका प्रभाव कोटा एव बूँदी क्षेत्र में बढ रहा था। कोटा के नेता नयनूराम शर्मा हाडौती सेवा सघ के कर्ताधर्ता थे। बिजौलिया एव इसके सीमावर्ती बूँदी क्षेत्र में भी राजस्थान सेवा सघ का अच्छा प्रभाव था। बरड के किसान भी बिजौलिया की तरह बेगार एव लाग–बाग आदि के भार से पीडित थे। अत बिजौलिया के प्रभाव में यहाँ के किसान भी आन्दोलन के लिए आतुर हो रहे थे इस क्षेत्र में 1922–1925 के मध्य किसान आन्दोलन हुआ जिसे बरड के किसान आन्दोलन के नाम से भी जाना जाता है। इसके पश्चात् लम्बे समय तक कोई किसान आन्दोलन बूँदी राज्य में दिखाई नहीं देता । 1936 में गूजर समुदाय के लोगों का एक आन्दोलन आरम्भ होता है जो अत्यधिक सीमित ही रहा। गूजरों का आन्दोलन यू तो 1936 से आरम्भ होकर 1945 तक चला किन्तु इसका सामाजिक व राजनीतिक प्रभाव अधिक नहीं था। इस अध्याय में इन दोनो आन्दोलनों का विश्लेषण किया जाना प्रस्तावित है।

बरड का किसान आन्दोलन (1922–25) :

राजस्थान सेवा सघ व बिजौलिया किसान पचायत की सफलता से प्रेरित व उत्साहित होकर बरड के किसानों ने अप्रेल 1922 मे एक आन्दोलन आरम्भ किया।[1] आरम्भ में यह शान्तिपूर्ण मुहिम थी, किन्तु राज्य के दमनात्मक व उपेक्षापूर्ण व्यवहार ने इस आन्दोलन को तीव्र कर दिया था। किसानों में सामाजिक व राजनीतिक चेतना

निश्चित रूप से असहयोग आन्दोलन के परिणामस्वरूप उपजी थी। अत किसानों में रचनात्मक कार्यों की ओर भी रूचि बढी। बरड क्षेत्र के अनेक गावो में किसानो की सभाए हुई। इन सभाओ मे ग्रामीण जनो ने खद्दर का उपयोग बढाने व विदेशी कपडो का उपयोग रोकने , शराब नही पीने व अश्लील गीत न गाने आदि सम्बन्धी निर्णय किए थे।[2] बूँदी राज्य के अधिकारी इन घटनाओ को गम्भीरता से देख रहे थे तथा उन्हे भय था कि कहीं मेवाड जैसा किसान आन्दोलन बूँदी मे न फैल जाए। अत 1 मई,1922 को बूँदी के शासक ने एक आदेश द्वारा प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट की अनुमति के बिना जनसभाओं पर रोक लगा दी।[3] किसानो को सम्भवत इन आदेशों का पता नही था अथवा उन्होंने इनकी अवहेलना की थी तथा किसानो की सभाएँ निरन्तर रूप से जारी रही। दिनो दिन इन सभाओं का हर तरह से विस्तार होता रहा जिसके साथ ही किसान आन्दोलन के मुद्दे भी स्पष्ट होते गये। मई, 1922 की विभिन्न किसानों की सभाओं में निम्नलिखित मुद्दे उभर कर सामने आए[4] –

1 भू–राजस्व के अतिरिक्त अन्य कोई कर न दिया जाए।
2 बेगार का विरोधपूर्वक इन्कार किया जाए।
3 किसानों को राज्य के न्यायालयो मे किसी भी प्रकार का वाद दायर करने से निरुत्साहित किया जाए।
4 किसानो की सभी शिकायतें समझौता न्यायालयों में प्रस्तुत की जाए।
5 राज्य के अधिकारियों व कर्मचारियो को रिश्वत न दें।

उपरोक्त मुद्दों से पता चलता है कि किसान अपने अधिकारों के प्रति काफी जागरुक हो रहे थे। निरन्तर सभाएँ करके वे राज्य के आदेशों की धज्जियां उड़ा रहे थे। राज्य की ओर से किसानों की समस्याओं के समाधान हेतु कोई विशेष प्रयास नहीं किए जा रहे थे। फौरी तौर पर राज्य ने अपने सहायक राजस्व अधिकारी को बरड जिले में किसानों की समस्याओ की जॉच हेतु नियुक्त किया। उसने अपने प्रतिवेदन में इंगित किया कि किसानों की समस्याएँ मुख्यत युद्धकर, बेगार, लाग–बाग एव राज्य कर्मचारियो द्वारा उनके उत्पीडन से सम्बन्धित थी।[5] किसानों में भारी उत्साह व्याप्त था। वे अपनी सभाओं में राज्य कर्मचारियो को आने से रोक रहे थे। सभाओं में लाठियों से लैस महिलाओ के जत्थे को आगे रखे हुए थे।

दिनों दिन स्थिति बिगड़ती जा रही थी। किसानो द्वारा राज्य के आदेशों की अवहेलना व अपमान के कारण राज्य का प्रशासनिक नियत्रण बरड क्षेत्र में कमजोर होता दिखाई दे रहा था। अत इस क्षेत्र मे राज्य का पूर्ण नियत्रण बनाए रखने के लिए राज्य को कड़े कदम उठाने पर मजबूर होना पड़ा। मई, 1922 के अन्त में राज्य कॉसिल के दो सदस्यो को किसानो की शिकायतो की जॉच हेतु नियुक्त किया गया। उनके साथ पर्याप्त सैन्य दल भी भेजा गया था जिसमें तोपखाना, घुड़सवार एव पैदल सेना सम्मिलित थी।[6] कुल मिलाकर 200–250 सैनिकों का लवाजमा उनके साथ था। इन्होंने जगह–जगह अपने कैम्प लगाए तथा वहाँ लोगों को बुला–बुलाकर यह आदेश

सुनाए कि सभा करने पर राज्य की ओर से पाबन्दी है। इस कार्यवाही द्वारा उनका उद्देश्य किसानो को आन्दोलन न करने के लिए आतंकित भी करना था। किन्तु इन सबका किसानों कि आन्दोलनात्मक गतिविधियो पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पडा। मई 1922 के अन्तिम दिनो में किसानों की सभाओ का आकार और भी अधिक बढ गया था। 29 मई को लम्बाखोह नामक गाव मे एक सभा आयोजित हुई जिसमें लगभग 1000 किसान सम्मिलित हुए थे। इस सभा में किसानो ने राज्य कॉन्सिल के सदस्यो के सैनिक अभियान की खिलाफत का निर्णय लेते हुए यह निर्णय लिया था कि सभी स्त्री व पुरुष अगले दिन निमाना जायेगे जहाँ सैन्य दल सहित राज्य के उच्च अधिकारी पहुँचे हुए हैं। दूसरे दिन 30 मई, 1922 को निमाना में 4000 से 5000 के बीच किसान स्त्रियो सहित पहुँचे।[7] वहा पहले से ही पहुँचे हुए राज्य कॉन्सिल के सदस्यो द्वारा किसानों की सभा न होने देने के भारी प्रयासो के उपरान्त भी किसानों की सभा हुई । इस सभा के दौरान राजस्थान सेवा सघ के कार्यकर्ता बिजौलिया निवासी भँवर लाल सुनार, "प्रज्ञा चक्षु" को राज्य पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था किन्तु भीड़ उसे वापस छुडाने में सफल रही।[8]

मई के अन्त की उपरोक्त घटनाओ ने किसान आन्दोलन को और अधिक तीव्र कर दिया था। बिजौलिया किसान आन्दोलन के प्रमुख नेता विजय सिह पथिक ने खुलकर इस आन्दोलन का समर्थन किया। अत बिजौलिया पद्धति पर किसान पचायत का गठन किया गया। पचायत की साप्ताहिक बैठकें करने का प्रावधान रखा गया। किसानो की बढती हुई गतिविधियो से भयभीत होकर राज्य ने किसान दमन को तीव्र कर दिया था। राज्य किसी भी कीमत पर बलपूर्वक तथाकथित व्यवस्था व कानून को बनाए रखना चाहते थे। 10 जून 1922 को डाबी मे 18 किसानों को गिरफ्तार कर बूँदी जेल भेज दिया।[9] सैन्य दल के सदस्य अनेक गावों में ये धमकियां देते हुए घूमे कि यदि किसान (ग्रामीणजन) कोई सभा करेंगे तो उन्हे गिरफ्तार कर लिया जायेगा। किसानों की गिरफ्तारी का क्रम वहीं नही रूका तथा 13 जून,1922 को राजपुरा नारौली एव लम्बाखोह मे 17 लोग गिरफ्तार किए गए। किन्तु रास्ते मे 300 महिलाओं के जत्थे ने इन किसानों को मुक्त करवा लिया। राज्य सैन्य दल ने भीड को तितर–बितर करने के लिए लाठी एव भालो का खुलकर प्रयोग किया। इस घटना मे काफी महिलाएँ घायल हुई तथा अनेक को साधारण चोटे आई। राजस्थान सेवा सघ ने इस घटना का खुलकर विरोध किया। इस अवसर पर राजस्थान सेवा सघ ने एक परचा प्रकाशित किया जिसका शीर्षक था "बूँदी राज्य में स्त्रियों पर अत्याचार"। इस परचे में महिला आन्दोलनकारियो पर पुलिस के अत्याचारों को उजागर करते हुए इसकी भर्त्सना की गई। राजस्थान सेवा सघ ने इसे लेकर काफी हगामा खडा किया।

राज्य कॉन्सिल के सदस्यो के सभी प्रयास बरड़ के किसान आन्दोलन का दमन करने में असफल रहे। दूसरी और बिजौलिया किसान आन्दोलन के 11 जून 1922 के समझौते के समाचार ने किसानो के उत्साह मे और भी वृद्धि की थी।

अन्त मे राजस्थान सेवा सघ के निरन्तर प्रयासो व हाडौती एव टोक एजेन्सी के पॉलिटिकल एजेन्ट के हस्तक्षेप के बाद बूँदी राज्य किसानो को कुछ छूटे देने पर सहमत हुआ।[10] इस दिशा मै पहला कार्य था अशान्त क्षेत्रो से राज्य के सैन्य दलो को वापस बुलाना जिससे सामान्य वातावरण बन सके। राज्य ने इस आन्दोलन के प्रमुख केन्द्र डाबी पर 40 बन्दूकचियो को छोड कर सम्पूर्ण सैन्य दल वापस बुला लिए थे। सभी गिरफ्तार किए गए व्यक्तियो को चेतावनी देकर रिहा कर दिया गया था। इसके पश्चात् राज्य ने किसानो व ग्रामीण शिल्पकारो कुटिर उद्यमियो आदि को लाग–बाग एव बेगार मे अनेक छूटे प्रदान की तथा किसानो को अनेक आर्थिक सामाजिक छूटे भी प्रदान की।[11]

बरड क्षेत्र के ग्रामीणों ने राज्य द्वारा घोषित छूटो को अस्वीकार कर दिया तथा राजस्थान सेवा सघ के निर्देश पर पूर्ववत आन्दोलन चलता रहा। 14 जुलाई 1922 को बूँदी से 14 मील दूर लोइचा नामक स्थान पर एक सभा हुई जिसमें 1200 स्त्री पुरुष एव बच्चो ने भाग लिया। इस सभा मे यह तय किया गया कि वे भारी सख्या मे बूँदी महाराजा के समक्ष पहुँचकर अपनी माँगों के समर्थन मे अपना पक्ष प्रस्तुत करेगे। इस प्रकार की सभाएँ गाव–गाव मे चल रही थी। सभी सभाओं में किसानो ने किसी भी स्थिति मे अपनी एक जुटता को बनाए रखने की शपथ ली। डाबी एव गराडा में क्रमश 23 जुलाई व 3 अगस्त , 1922 की सभाओं में किसानो ने यह निर्णय किया था कि वे राज्य के आदेशो की अवेहलना करेगे तथा भुगतान करने पर भी राज्य कर्मचारियों को खाद्य सामग्री उपलब्ध नही कराएँगे। कुछ स्थानो पर लोगो ने भू–राजस्व एव जगलात करो की अदायगी से इन्कार किया तथा सरकार सुरक्षित घास के बीडो (जगल) मे अवैध कब्जे भी कर लिए गए थे।[12] इस प्रकार राज्य के खिलाफ ग्रामीण जन विभिन्न माध्यमों से अपना रोष प्रकट कर रहे थे।

जब कुछ स्थानों पर भू–राजस्व का भुगतान रोक दिया गया तो राज्य कॉन्सिल ने आन्दोलन के दो प्रमुख केन्द्रों निमाना एव गराडा में पुलिस बल भेजा। अगस्त 1922 मे हाडौती एव टोक एजेन्सी के पॉलिटिकल एजेन्ट ने बरड़ क्षेत्र का दौरा किया। अपने दौरे के पश्चात् पॉलिटिकल एजेन्ट ने सभी आन्दोलन के दौरान गिरफ्तार किए गए लोगों से बात की तथा अधिकाश गिरफ्तार लोगों को या तो चेतावनी देकर अथवा भविष्य में अच्छे व्यवहार की जमानत देने पर रिहा कर दिया गया था।[13] वास्तविकता यह थी कि बूँदी राज्य के अधिकारी इस आन्दोलन को सुलझाने मे दिग्भ्रमित हो गए थे। कभी वे किसानों के प्रति अत्यधिक उदारता दिखा रहे थे तो कहीं भारी दमन का सहारा ले रहे थे। अत जहाँ एक ओर बरड़ आन्दोलन के बन्दियों को रिहा किया गया वही दूसरी ओर बूँदी राज्य में राजस्थान केसरी , नवीन राजस्थान एव प्रताप समाचार पत्रों के प्रवेश पर रोक लगा दी थी।[14] इसी समय बूँदी राज्य ने अपने पुलिस व राजस्व प्रशासन का पुर्नगठन किया। अक्टूबर 1922 में बूँदी राज्य में नए अधिकारी नियुक्त किए जो मुख्यत सयुक्त प्रान्त से आए थे।

अक्टूबर, 1922 मे बरड़ का किसान आन्दोलन खेराड क्षेत्र की ओर बढ रहा था। बरुन्धन जिले के निवासियों ने राज्य के सुरक्षित घास बीडों मे चराई हेतु अपने पशु हाक दिए थे तथा उन्होने स्पष्ट रूप से घोषणा की थी कि जब तक उनकी माँगें नहीं मान ली जाती तब तक वे ऐसा अनवरत रूप से करते रहेंगे।[15] 2 नवम्बर, 1922 को गोपालपुरा में आयोजित एक सभा में राजस्थान सेवा सघ के कार्यकर्ता हरिजी ब्रह्मचारी ने सभा मे सम्मिलित लोगों को सलाह दी कि वे अपने आपसी विवादों को राज्य के न्यायालयों में ले जाने के स्थान पर पचायतों में ही फैसला करें । अब बरड के आन्दोलन का पूर्ण सचालन खुले रूप में राजस्थान सेवा सघ कर रहा था। 14 नवम्बर, 1922 को राजस्थान सेवा सघ की हाड़ौती शाखा के प्रमुख नेता नयनूराम शर्मा को गिरफ्तार कर लिया गया था। इनके खिलाफ विशेष न्यायालय में मुकदमा चलाया गया।[16] दिसम्बर 1922 के अन्त तक किसानों की सभाएँ निरन्तर होती रही। इन सभाओं में किसानों ने असहयोग की नीति अपनाने, न्यायालयों के बहिष्कार करने, जेलों में उत्पीड़न सहने एव अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए अपने जीवन के उत्सर्ग हेतु तैयार रहने का निर्णय किया। इस आन्दोलन ने लगभग सम्पूर्ण बरड़ क्षेत्र में करबन्दी अभियान का श्री गणेश कर दिया था। वर्ष 1923 के प्रथम तीन महिनों में यहाँ का आन्दोलन सगठित व शक्तिशाली बन चुका था।

1923 के आरम्भ मे जनवरी से मार्च के दौरान रणधीर सिह नामक जागीरदार ने इस आन्दोलन का सक्रिय समर्थन किया। इसकी उपस्थिति में 12 फरवरी, 1923 को तीरथ नामक गाव में एक सभा आयोजित हुई जिसमें 3000 किसान एकत्रित हुए थे। इस सभा में उसने किसानों को कर बन्दी के लिए उत्साहित किया। 13 मार्च, 1922 को पराना नामक गाव में आयोजित एक सभा में निर्णय लिया गया कि गावों में आन्दोलन के सन्दर्भ मे जाच करने के लिए आने वाले अधिकारियों के साथ केवल पचायत ही वार्ता करेगी। इस निर्णय से किसानों की एकता भविष्य के लिए भी सुरक्षित कर दी गई थी। अधिकारियों को भी यह निर्देश दे दिया गया कि वे आन्दोलन के सिलसिले में केवल पचायत से बात करें । इस प्रकार आन्दोलन दिनो–दिन मजबूत होता जा रहा था, जिससे किसानो के हौंसले काफी बुलन्द थे। इस आन्दोलन की चरम परिणिति 2 अप्रेल, 1923 को डाबी में एक अप्रिय घटना के रूप में हुई।

2 अप्रेल, 1923 को डाबी मे आयोजित एक सभा में किसानों ने बगैर सीमा शुल्क दिए खाद्यान्नो को कोटा ले जाने, राजस्व के भुगतान रोकने तथा राज्य कर्मचारियों को खाद्य सामग्री न देने सम्बन्धी निर्णय लिया।[17] इसी बीच सभा स्थल पर राज्य पुलिस पहुँची तथा इस सभा को रोकने का प्रयास किया। पुलिस के आदेशों की अवहेलना करने के अपराध में बूँदी के पुलिस अधीक्षक ने भीड़ पर गोली चलाने के आदेश दे दिए। इस गोलीकाण्ड में नानक नाम का भील किसान मारा गया।[18] इस घटना के बारे में राजस्थान सेवा सघ ने जाच के लिए बूँदी दरबार पर जोर डाला।

बूँदी के शासक ने इसकी जाच हेतु विशेष आयोग भी नियुक्त किया। यह इस आन्दोलन की सबसे भीषण घटना मानी जाती है। इस घटना के सम्बन्ध मे स्वतत्रता सेनानी रामनारायण चौधरी ने अपने सस्मरण मे लिखा

"भीलो का किस्सा खत्म हुआ ही था कि बून्दी के बरड इलाके से समाचार आए कि वहा की सेना ने किसानों और उनकी स्त्रियो तक पर हमला कर दिया है। नानक नामक एक भील मारा गया। कुछ गोलियो के घायल अजमेर भी पहुँचे। इस बार भी मैं और सत्य भक्त जी मौके पर भेजे गए। बरड की जनता से हमारा परिचय तो था ही। बिजौलिया से लगे हुए बूँदी के इस बीहड इलाके में हम कई बार जा चुके थे हरि जी वहाँ कठोर तपस्या की स्थिति में काम कर चुके थे और प० नयनूराम जी वही से गिरफ्तार होकर बूँदी जेल मे पहुँच चुके थे। हम जाच के लिए पहुँचे तो वातावरण बडा क्षुब्ध था। राज्य की घुडसवार सेना ने सत्याग्रही स्त्रियो पर घोडे दौडाकर और भाले चलाकर पाशविक हमले किए थे। इन बहादुर बहनों ने अपने मर्दों का साथ देकर बेगार, लाग–बाग और लगान की ज्यादती का विरोध किया था। रिश्वत बूँदी का सबसे बडा अभिशाप था। ऊपर से नीचे तक प्राय सभी राज कर्मचारी जनता को खुले हाथों लूटते थे। बरड की प्रजा ने इसकी भी खुली मुखालिफ्त की थी।"[19]

राजस्थान के स्वतत्रता सेनानी माणिक लाल वर्मा ने उसी समय नानक भील की याद मे एक गीत "अर्जी" शीर्षक से लिखा।[20] नानक भील राजस्थान का एक प्रमुख शहीद कहलाया। वह न केवल बरड बल्कि सम्पूर्ण दक्षिणी राजस्थान के किसान व आदिवासियों के उत्साह का स्त्रोत बन गया था। किसान एव आदिवासियों को जोश दिलाने के लिए बाद तक माणिक लाल वर्मा का यह गीत सभाओं में सुनाया जाता रहा।

डाबी की घटना के पश्चात् भी किसानों ने साहस नहीं छोडा था, किन्तु इसी समय 10 मई 1923 को प० नयनूराम शर्मा को 4 वर्ष की कैद की सजा दे दी गई जो पहले से ही जेल मे थे। उनके साथ सेवा सघ के एक अन्य कार्यकर्त्ता नारायण सिह भी जेल में थे। दोनो को समान सजा सुनाई गई थी तथा सजा समाप्त होने के पश्चात् इन दोनों के बूँदी राज्य मे प्रवेश पर पाबन्दी लगा दी गई थी। बिजौलिया के सेवा सघ के कार्यकर्ता भँवर लाल सुनार "प्रज्ञा चक्षु" को भी बरड के किसान आन्दोलन के सिलसिले में दो वर्ष की कैद की सजा दी गई थी।[21]

इस आन्दोलन के पश्चात् बूँदी राज्य कौंसिल ने बरड़ जिले के प्रशासन पर विशेष ध्यान दिया। एक ओर इस क्षेत्र मे राजस्थान सेवा सघ के प्रमुख नेताओं विजय सिह पथिक, रामनारायण चौधरी, अजना देवी, हरि जी ब्रह्मचारी एव सत्यव्रत के प्रवेश पर रोक लगा दी थी वहीं दूसरी ओर बरड के किसानों को बकाया राजस्व पर छूट प्रदान की तथा किसानों के खाते में दर्ज पडत भूमि को हटाने का वायदा किया।

वास्तव मे किसान इन छूटो से अधिक सन्तुष्ट नहीं थे, किन्तु राजस्थान सेवा सघ के नेताओं व कार्यकर्ताओं के दिशा निर्देश के अभाव में आन्दोलन को आगे चलाना सम्भव नहीं हो पा रहा था। अत किसान मजबूरन इस आन्दोलन की सीमित उपलब्धियो से सन्तुष्ट थे।

अक्टूबर 1923 मे भँवर लाल सुनार तथा 24 सितम्बर, 1924 को नयनूराम शर्मा व नारायण सिह जेल से रिहा हो गए थे।[22] जैसा कि नयनूराम शर्मा के प्रवेश पर पावन्दी लगी हुई थी अब रिहाई के बाद वह बूँदी राज्य में रहकर आन्दोलन का सचालन करने में असमर्थ था। सन् 1925 में बरड़ के किसान आन्दोलन ने सभाओं जुलूसों धरनों प्रदर्शनो इत्यादि का रास्ता छोड़कर आवेदनों और अपीलो का रास्ता अपना लिया था। राजस्थान सेवा सघ द्वारा बूँदी की जनता की ओर से अनेक याचिका व निवेदन पत्र प्रस्तुत किए गए थे। 27 सितम्बर, 1925 को राजस्थान सेवा सघ की हाडौती शाखा की सभा हुई जिसमें उच्च अधिकारियों एव यदि सम्भव हो तो बूँदी के शासक से किसानों की समस्याओं के समाधान हेतु मिलने के लिए प० नयनूराम शर्मा को अधिकृत किया था। यदि इन प्रयासों में सफलता नहीं मिली तो आन्दोलन आरम्भ करने के लिए आगे कदम उठाए जाएँगे।[23] नयनूराम शर्मा ने हाडौती सेवा सघ के अध्यक्ष की हैसियत से जनवरी 1926 के दौरान बूँदी राज्य के अधिकारियों को अनेक पत्र लिखे किन्तु कोई विशेष परिणाम सामने नहीं आऐ। सन् 1927 के बाद राजस्थान सेवा सघ ही अर्न्तविरोधो के कारण बन्द हो गया था। अत राजस्थान सेवा सघ के साथ ही बूँदी के बरड क्षेत्र का किसान आन्दोलन समाप्त हो गया।

बरड़ का आन्दोलन अल्पकालिक ही था किन्तु इसका महत्त्व कम करके नहीं आका जा सकता। यह आन्दोलन अधिक टिकाऊ भी सिद्ध नहीं हुआ किन्तु इसके उपरान्त भी इसकी उपलब्धिया पर्याप्त थी। इस आन्दोलन के दबाव में राज्य ने अनेक भ्रष्ट कर्मचारी व अधिकारियों को दण्डित भी किया था। बूँदी के लालची कर्मचारी व अधिकारियों की रिश्वतखोरी पर कुछ अकुश अवश्य लगा था। साथ ही किसानो को बेगार व करो के सम्बन्ध में अनेक छूटें भी प्रदान की गई जो इसी आन्दोलन का परिणाम था। इन सबके उपरान्त इस आन्दोलन ने बूँदी राज्य मे स्वतन्त्रता आन्दोलन का मार्ग भी प्रशस्त किया।

गूज़रो का आन्दोलन (1936–45) :

यह आन्दोलन भी सर्वप्रथम बरड़ क्षेत्र से ही आरम्भ हुआ था। बरड क्षेत्र के गूजर समुदाय के लोग अधिकाशत पशुपालन से अपना जीवन यापन करते थे। यू तो अधिकाश ग्रामीण जन पशुपालन व्यवसाय करते थे किन्तु गूज़र व मीणा इन दो समुदायों के लोग पशुपालन पर अधिक निर्भर थे। गूजर समुदाय के लोगो में अनेक कष्टदायक करो व राज्य द्वारा उनके सामाजिक मामलों मे हस्तक्षेप को लेकर आक्रोश

व्याप्त था। सन् 1936 में नुक्ता (मृत्यु भोज) पर कानूनी पाबन्दी लगा दी गई थी। इससे गूजरो मे असन्तोष व्याप्त था। पशु गिनती की सरकारी कार्यवाही ने गूजरो के मन में यह आशका उत्पन्न कर दी थी कि उनके ऊपर चराई कर लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वे भारी राजस्व की दरो व गैर कानूनी लागो के विरोधी भी थे। गूजर राज्य की कृषि विस्तार नीति के विरुद्ध भी थे क्योकि अधिक भूमि जोत मे आने से पशु चराने के लिए कम भूमि उपलब्ध रहने की सम्भावना थी। इन कारणो को लेकर 5 अक्टूबर ,1936 को हिण्डौली में हुडेश्वर महादेव के मन्दिर पर गूजर , मीणा एव अन्य पशु पालकों व किसानो की एक सभा हुई जिसमें 90 गावो के लगभग 500 व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। इस सभा के पटेलो ने अपना एक माँग पत्र तैयार कर हिन्डौली के तहसीलदार के समक्ष प्रस्तुत किया जो निम्नानुसार था" –

1 ठेकेदारों के द्वारा ऊन सस्ती दरो पर 9 से 15 रुपए प्रति मन की दर से खरीदी जा रही है तथा वे इसे बूँदी राज्य के बाहर 50 से 60 रुपए प्रति मन की दर से बेच रहे हैं। इससे उनको (पशुपालकों) को भारी हानि हो रही है। अत ठेकेदारो द्वारा उनके शोषण को रोका जाना चाहिए।
2 सिंचित भूमि पर उगने वाली लकडी का चौथा हिस्सा लिया जाना समाप्त किया जाना चाहिए। गौंद का ठेका गैर–कानूनी है एव यह समाप्त किया जाए।
3 महिलाओं के पुर्नविवाह के अवसर पर ली जाने वाली लाग तुरन्त रोकी जानी चाहिए।
4 जीरे पर कर 6 आना प्रति मन की दर से लिया जाता था। अब यह 3 रुपए प्रति मन तक बढा दिया गया है , इसे पुरानी दर पर लिया जाए।
5 नुक्ता करने की अनुमति प्रदान की जाए।
6 बकरी पर चराई कर डेढ आना प्रति खोज तक कर दिया गया है जो पहले एक आना ही था। अत यह पुरानी दर पर लिया जाए।
7 चराई कर या तो खालसा क्षेत्र मे ही लिया जाए अथवा जागीर क्षेत्र मे एव दोनों में न लिया जाए।
8 मरे जानवर के चमड़े पर सरकार द्वारा लगाई जाने वाली मुद्रा (सील) पर प्रति सील 1 रुपया वसूल किया जाता है, उसे समाप्त किया जाए।
9 विवाह के समय राज्य के बाहर से लाने वाले सामान और राज्य से बाहर जाने वाले सामान पर सीमा शुल्क समाप्त किया जाए।
10 पानी भरने के लिए किसान चमड़े के बर्तन नहीं रख सकते यह प्रथा समाप्त की जाए।
11 मिट्टी की खपरेलों द्वारा छत ढकने पर भी कर लिया जाता है। यह समाप्त किया जाए।
12 राज्य द्वारा पैदा होने वाले कच्चे आमों का चौथा हिस्सा लिया जाता है यह रोका जाए।

13 मेरा (रखवाली मचान) बनाने के काम मे ली जाने वाली लकडी पर भी कर लिया जाता है जो समाप्त किया जाए।

कुल मिलाकर इनका जोर चराई करो को समाप्त करने कम करने व पशुचारण की सहूलियतें उपलब्ध कराने पर था। जब यह ज्ञापन प्राप्त हुआ तो इस पर राज्य ने जाँच कराई तथा इन मागों को सही पाया। दूसरी और किसी आन्दोलन की सम्भावना को ध्यान में रखते हुए 21 अक्टूबर 1936 को बूँदी सरकार ने अपराध कानून सशोधन अधिनियम 1936 पारित किया जिसके अनुसार कोई व्यक्ति राज्य विरोधी गतिविधियों तथा सार्वजनिक सुरक्षा व शान्ति के विरुद्ध आन्दोलनात्मक गतिविधियो में सम्मिलित होगा तो वह अर्थदण्ड व एक वर्ष की कैद अथवा दोनों के द्वारा दण्डित किया जाएगा।[25] 28 अक्टूबर 1936 को पुलिस का महानिरीक्षक कॉन्सिल का राजस्व सदस्य एव अधीक्षक जगलात हिण्डौली पहुँचे। इन्होंने वहाँ पहुँचकर राज्य की नीति का खुलासा करते हुए कहा कि शीघ्र ही बन्दोबस्त कार्य आरम्भ किया जा रहा है। किसान इस आश्वासन से सन्तुष्ट नही थे। ऐसी स्थिति में बूँदी के दीवान ने 7 नवम्बर 1936 को एक आयोग नियुक्त किया जिसमे राज्य कौन्सिल के न्याय राजस्व एव गृह सदस्य को सम्मिलित किया गया था। इस आयोग को हिण्डौली के गूजर किसानो की शिकायतो की जाच का दायित्व सौंपा गया था।[26] राज्य के इन प्रयासों के उपरान्त आन्दोलन शान्त हो गया था। सम्भवत इनकी अधिकाश शिकायतें दूर कर दी गई थी किन्तु 1939 में पुन गूजरों का आन्दोलन लाखेरी की तरफ आरम्भ हुआ। सम्भवत 1936 के आन्दोलन के समय केवल बरड खेराड व इसके मध्य स्थित हिण्डौली के पशुपालकों की समस्याओं का ही समाधान हुआ था, सम्पूर्ण बूँदी राज्य के लिए नही। इसके अलावा 1939 मे इनकी मागे कुछ भिन्न थी।

3 सितम्बर 1939 को 40 गावो के लगभग 150 गूजरो ने लाखेरी मे "तोरण की बावरी" पर एक सभा की जिसमे भँवर लाल जमादार एक राज कर्मचारी गोवर्धन चौकीदार व सीमेन्ट फैक्टरी के एक कर्मचारी राम निवास तम्बोली ने इसमे नेतृत्वकारी भूमिका निभाई। उनकी मुख्य माँग राज्य के बाहर बकरियों के ले जाने पर पाबन्दी समाप्त करना था। पशुओं के राज्य के बाहर ले जाने पर कस्टम अधिकारियो द्वारा तग न किए जाने व इस पर सीमा शुल्क नहीं लिए जाने की माग भी सम्मिलित थी। इस आन्दोलन को सरकार ने बलपूर्वक दबा दिया था।[27]

सन् 1943 मे पुन हिण्डौली क्षेत्र मे गूजरों का आन्दोलन आरम्भ हुआ। 5 जनवरी, 1943 को 60 गावो के गूजर किसानो ने भेड–बकरी कर में वृद्धि को समाप्त करने के लिए बूँदी के महाराजा के समक्ष ज्ञापन भेजा। 10 जनवरी 1943 को हिण्डौली मे राज्य की चराई शुल्क के विरुद्ध सभा की। नया प्रस्तावित चराई कर इस आन्दोलन का मुख्य निशाना था। अनेक गावो से इस कर को लागू करने के विरोध मे ज्ञापन बूँदी के दीवान के समक्ष पहुँचे। 25 जनवरी 1943 को सावन्तगढ

खोडी, निमोद इत्यादि के पचो ने नैनवा मे उप आयुक्त को सूचित किया कि वे नई प्रस्तावित चराई कर का भुगतान करने मे असमर्थ हैं। उन्होने यह भी स्पष्ट किया कि यदि यह कर थोपा गया तो उनके पशु भूख से मर जाएँगे एव वे खाद के लिए गोबर प्राप्त करने की स्थिति मे भी नहीं रहेगे।[78] अत नए प्रस्तावित चराई कर के विरुद्ध किसानों का अभियान जारी रहा।

आन्दोलन की प्रगति को देखकर प्रत्येक तहसील सलाहकार समिति ने इस पर विचार किया। 31 जनवरी, 1943 को कापरेन तहसील की सलाहकार समिति ने यह प्रस्ताव पास किया।[79] "यदि नया चराई कर भेड बकरी भैंस इत्यादि पर लगाया जाता है तो पशुओं की सख्या में ही गिरावट आएगी, बल्कि घी, दूध इत्यादि की कीमत भी बढ जाएगी और इससे गोबर का अभाव उत्पन्न हो जायेगा। प्रस्तावित नया चराई कर नहीं थोपा जाए।"

11 अक्टूबर, 1943 को बूँदी के दीवान ने इस मुद्दे पर निर्णय लेते हुए यह अधिसूचना जारी की कि "यह आदेश करते हुए दरबार प्रसन्न हैं कि राज्य में सभी भैंसों पर 8 आना प्रति पशु चराई कर लिया जाएगा। एक किसान जो 40 बीघा बारानी भूमि अथवा 12 बीघा पीवल भूमि जोतता है तो उसे 2 भैसों के रखने पर कर से मुक्ति दी जाएगी। आगे भी शुल्क मुक्त चराई की छूट किसान की जोत के अनुपात में प्रदान की जाएगी । एक वर्ष तक भैंसों के बच्छड़ों को कर मुक्त रखा जाएगा।[80]"

बरड़ में गूजरो एव अन्य किसानो ने जनवरी, 1945 में पुन हलचल आरम्भ की। यहाँ पर गूजर नए चराई कर से सन्तुष्ट नही थे क्योंकि उनके पास भैसों के लेंहड़े रहते थे। उनकी अन्य शिकायते जगल से घास व लकड़ी प्राप्त करने में करों का भार पशुओं सहित हर प्रकार के सामान की राज्य मे आवाजाही पर लगने वाले सीमा शुल्क से सम्बन्धित थी। किसान से राज्य शस्त्र कर मडी कर एव बिक्री कर भी वसूल करता था। इन सबके अतिरिक्त राजस्व की राशि पर 10 प्रतिशत की दर से युद्ध कर भी वसूल किया जा रहा था । इन सबके विरोध में किसानो ने बूँदी के दीवान को एक ज्ञापन प्रस्तुत किया जिसमे निम्नलिखित माँगें सम्मिलित की गई थीं[81] –

1 युद्ध ऋण के रूप मे लिया जाने वाला कर तुरन्त रोका जाए ।
2 ईंधन की लकड़ी पर शुल्क समाप्त किया जाए ।
3 घी के निर्यात एव मुक्त बिक्री की अनुमति दी जाए ।
4 भू–राजस्व सीधे पटवारी द्वारा वसूल किया जाए ।
5 हथियार शुल्क नहीं लिया जाए ।
6 चराई कर वसूलने मे बल प्रयोग न किया जाए ।

किसानों ने मेवाड़ प्रजामण्डल के नेता माणिक लाल वर्मा को अपनी मदद के लिए याद किया। माणिक लाल वर्मा ने बूँदी दरबार को पत्र भी लिखे तथा किसानों

को सगठित रूप से आन्दोलन चलाने के लिए दिशा निर्देश दिए। आन्दोलन को नियत्रित करने के लिए 22 फरवरी 1945 को किसानों की सभा पर लाठी चार्ज कर गिरफ्तारिया की। इस आन्दोलन के केन्द्र गराड़ा नामक गाव में यह घटना घटी। अन्त मे बूँदी कॉसिल के राजस्व सदस्य ने गूजरों को सन्तुष्ट करने के ध्येय से उनके क्षेत्रों का दौरा कर यह स्पष्ट किया कि युद्ध कर स्वैच्छिक है अनिवार्य नही। राजस्व सदस्य ने अपने प्रभाव का उपयोग करते हुए मार्च 1945 के अन्त तक आन्दोलन को शान्त कर दिया। सभी गिरफ्तार लोगों को भविष्य मे अच्छे व्यवहार के व्यक्तिगत मुचलके देने पर रिहा कर दिया। इस प्रकार लम्बे समय से चल रहा किसान आन्दोलन शान्त हुआ।

साराशत यह कहा जा सकता है कि बूँदी का किसान आन्दोलन अत्यधिक उत्साहवर्धक रहा। बरड़ के किसानों ने लगभग 23 वर्षों तक अनवरत सघर्ष कर सामन्ती व औपनिवेशिक शोषण से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। इस आन्दोलन को बूँदी के स्वतत्रता आन्दोलन के अग के रूप में भी देखा जा सकता है। अनेक बार यह कहा जाता है कि ये किसान आन्दोलन स्वतत्रता आन्दोलन का अग नहीं थे क्योंकि इनमें आजादी की बात नहीं कही गई थी किन्तु आजादी की परिभाषा दें तो ये पाते हैं कि किसी भी प्रकार की कठोरताओ से मुक्ति का सघर्ष स्वतन्त्रता आन्दोलन की परिधि में आता है। ऐसा ही बूँदी के किसान आन्दोलन के अध्ययन से स्पष्ट होता है।

संदर्भ

1 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 148–पी (कॉन्फिडेंशियल) 1924

2 वही होम पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 18 1922

3 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बूँदी इग्लिश रिकार्ड फाइल न0 252 पार्ट– I 1921–22

4 राष्ट्रीय अभिलेखागार होम पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 18 1922

5 वही फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 148–पी (कॉन्फिडेंशियल) 1924

6 वही

7 राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बूँदी इग्लिश रिकार्ड फाइल न0 252 पार्ट– II 1921–22

8 वही

9 नवीन राजस्थान 18 जून 1922

10 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बूँदी इग्लिश रिकार्ड फाइल न0 252 पार्ट– II 1921–22

11 वही

12 वही

13 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 148–पी (कॉन्फिडेंशियल) 1924

14 राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बूँदी इग्लिश रिकार्ड फाइल न0 80 1922–23

15 राष्ट्रीय अभिलेखागार होम पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 18 1922

16 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बूँदी इंग्लिश रिकार्ड फाइल न0 252 पार्ट–I 1921–22

17 वही पार्ट–III 1922 23

18 नवीन राजस्थान 22 अप्रेल 1923

19 राम नारायण चौधरी बीसवीं सदी का राजस्थान पृ0 75–78

20 शकर सहाय सक्सैना जो देश के लिए जिए(यशोगाथा लोकनायक श्री माणिक्य लाल वर्मा) मुक्तवाणी प्रकाशन बीकानेर 1972 पृ0 268

21 नवीन राजस्थान 20 मई 1923

22 तरुण राजस्थान 19 अक्टूबर 1924

[illegible] वही 25 अक्टूबर 1925

24 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बूँदी कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड फाइल न0 54/40–41 बस्ता न0 5

25 वही,

26 वही

[illegible] वही,

28 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बूँदी इंग्लिश रिकार्ड फाइल न0 243 1942–43

29 वही

30 वही

31 वही बूँदी कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड फाइल न0 45/ए, 1944–45

अध्याय–8

बीकानेर राज्य में किसान आन्दोलन

राजस्थान के अन्य राज्यों की तरह बीकानेर के किसान भी सामन्ती एव औपनिवेशिक शोषण से मुक्त नही थे। यहाँ की 687 प्रतिशत भूमि सामन्तों के अधिकार मे थी जिन्हे ठिकाना अथवा जागीर कहा जाता था।[1] कुल मिलाकर 313 प्रतिशत भूमि सीधे राज्य के अन्तर्गत थी। बीकानेर राज्य के किसान मनमाने राजस्व लाग–बाग, पशु कर एव बेगार के भार से दबे हुए थे। इस राज्य में घोर निरकुश सामन्ती शोषण प्रचलित था। सस्थाओ का विकास अत्यधिक सीमित था। बीकानेर राज्य में किसान आन्दोलन अन्य राज्यो की तुलना मे विलम्ब से उत्पन्न हुए इसका यह तात्पर्य कदापि नही की वहाँ किसानो की दशा अन्य राज्यों की तुलना में अच्छी थी। बल्कि यहा के किसानो की स्थिति अत्यधिक गम्भीर थी। एक ओर किसान सामन्ती शोषण के शिकार थे तो दूसरी ओर प्राकृतिक आपदाएँ उनकी जीवन दशाओं को कष्टमय बना देती थी। बीकानेर के शासक गगासिह के शासन काल 1887–1943 में सिचाई व परिवहन के साधनों के अप्रत्याशित विकास ने बीकानेर राज्य मे आर्थिक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया था। इस नवीन परिवर्तन ने किसानो की दशा मे मौलिक परिवर्तन नही किया था क्योकि इनका लाभ सीधे तौर पर किसानों को न मिलकर सीधे शासक वर्गों को मिला था। किसान निरन्तर सामन्ती शोषण के शिकार बने रहे। यदि किसानो को भौतिक प्रगति का कुछ लाभ मिला भी था तो उसे सामन्तो ने लागतों (लाग–बाग) व राजस्व की दर मे वृद्धि कर वापस छीन लिया था। बीकानेर राज्य के सदियो से चले आ रहे परम्परागत समाज मे विकास व परिवर्तन की गति अधिक धीमी थी जिससे किसानों मे चेतना का सचार विलम्ब से हुआ। 1929–30 के विश्वव्यापी आर्थिक मदी के दौर मे किसान अत्यधिक आर्थिक भार से दब गए थे। अत इस समय से किसानो मे महाराजा व जागीरदार के आर्थिक शोषण के विरुद्ध हलचल आरम्भ हो गई थी। यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है कि इस राज्य के पड़ौसी राज्यों जोधपुर व जयपुर मे किसान आन्दोलन इस राज्य की सीमा से सटे क्षेत्रों मे 1920 मे ही आरम्भ हो गया था किन्तु इनके प्रभाव मे बीकानेर मे किसान आन्दोलन क्यों नही हुआ एक विचारणीय प्रश्न है। अनेक कारणो के उपरान्त इसका प्रमुख कारण महाराजा गगासिह की निरकुश प्रवृत्ति थी।

बीकानेर राज्य में सम्पूर्ण राजस्थान के राज्यों की तुलना में एक नवीन प्रवृत्ति दिखाई देती है जिसका प्रभाव एक क्षेत्र विशेष तक सीमित दिखाई देता है यह था

गगनहर का निर्माण। इस सिचाई परियोजना का क्षेत्र गगानगर था जहाँ पर पजाब से भारी सख्या मे आकर किसानो ने खेती आरम्भ की थी। पजाब प्रान्त मे अनेक देशी रियासतो के बावजूद बहुत बडा भू–भाग अग्रेजी नियत्रण मे था । पजाब मे राजनीतिक चेतना काफी आगे बढी हुई थी किन्तु इसका सीधा प्रभाव भी बीकानेर राज्य के किसानो मे दिखाई नहीं देता। जैसाकि पूर्व मे उल्लेख किया जा चुका है कि बीकानेर में किसान आन्दोलन विलम्ब से आरम्भ हुए थे किन्तु बीकानेर के कृषि क्षेत्र मे राजनीतिक हलचल गगानगर क्षेत्र से आरम्भ हुई थी। बीकानेर राज्य के अन्य शक्तिशाली किसान आन्दोलनो के अध्ययन के पूर्व गगानगर के आधुनिक कृषि क्षेत्रो की हलचल जानना प्रासगिक होगा।

गंगनहर क्षेत्र के आन्दोलन :

गगनहर परियोजना का शिलान्यास 5 दिसम्बर 1925 को स्वय महाराजा गगा सिह ने किया था। इस नहर का नाम महाराजा के नाम पर ही 'गगनहर' रखा गया यह नहर पजाब की सतलज नदी से निकाली गई थी। यह नहर लगभग दो वर्ष की अवधि मे बनकर तैयार हो गई थी तथा 26 अक्टूबर, 1927 को इसका विधिवत रूप से शुभारम्भ हो गया था जिसके साथ ही इससे सिचाई आरम्भ हो गई। इस नहर के निर्माण के साथ ही पजाब से अनेक किसान कृषि कार्य हेतु बस गए थे। एक ओर ये किसान बाहर से आए थे तथा दूसरी ओर नवनिर्मित नहर क्षेत्र मे कृषि विकास की समस्याओ से जूझ रहे थे। ऐसी स्थिति में ये किसान आपसी सुरक्षार्थ, पहले से ही एकताबद्ध थे। अप्रेल 1929 मे 'जमींदार एसोसियेशन' का गठन किया तथा दरबारा सिह को अपना अध्यक्ष नियुक्त कर इसकी शाखाएँ श्रीगगानगर मुख्यालय सहित श्री करणपुर, पदमपुर अनूपगढ एव रायसिह नगर मे खोली गई। इस सगठन के निर्माण के साथ ही इस क्षेत्र के किसानो ने आन्दोलन आरम्भ किया। सर्वप्रथम 10 मई, 1929 को श्रीगगानगर मे आयोजित जमींदार एसोसियेशन की बैठक में अपनी समस्याओ का एक माँग पत्र तैयार किया। इसके माध्यम से गगनहर क्षेत्र के किसानों ने सिचाई की अधिक सुविधाओं सिचाई दर में कमी भूमि की किश्ते कम करने तथा इस क्षेत्र मे रेलवे स्टेशन व पोस्ट ऑफिस खोलने जैसी मागे सम्मिलित की थी। राज्य ने इनकी मागों को तर्कसगत मानते हुए स्वीकार कर लिया जिससे इन किसानो के हौंसले बढ गए। 1929–30 के दौरान इस क्षेत्र के किसानों को अनेक सुविधाएँ मिलती गई तथा किसानो का असन्तोष साथ ही साथ समाप्त होता चला गया। असल में यह समृद्ध किसानो का सगठन था तथा प्रतिवर्ष अपनी सामयिक समस्याओं के समाधान हेतु राज्य के समक्ष अपने माँग पत्र प्रस्तुत कर छूटें व सहूलियतें प्राप्त करते रहे। ये किसान अपनी समस्याएँ पजाब प्रान्त की विधानसभा के माध्यम से भी उठवाते रहते थे। महाराजा गगासिह स्वय भी इस क्षेत्र का दौरा करते रहते थे। जमींदार एसोसियेशन 1929 से आरम्भ होकर 1947 तक अपने सदस्यों के हितों को पूरा करती रही। अधिकाशत इसकी गतिविधियाँ सवैधानिक व शान्तिपूर्ण ही रही। अत राजस्थान मे

किसान आन्दोलन के सन्दर्भ में इस आन्दोलन का कोई विशेष महत्त्व दिखाई नही देता। इस सगठन के साथ स्थानीय बीकानेरवासियों का कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं देता। इस सगठन के सदस्य व नेता पजाब प्रान्त से आए हुए सिक्ख सरदार ही थे।

जागीर क्षेत्रो में किसान आन्दोलन :

राजस्थान के प्रमुख राज्यों मेवाड मारवाड़ व जयपुर राज्यों की भाति बीकानेर राज्य में भी किसान आन्दोलनों की शुरुआत जागीर क्षेत्रो से ही हुई। बीकानेर के अधिसख्य निवासी जाट जाति के लोग ही थे। बीकानेर राज्य के पड़ौसी क्षेत्र शेखावाटी में भी जाट जाति के किसानों की प्रमुखता थी। शेखावाटी मे किसान आन्दोलनो के साथ–साथ जातीय उत्थान व समाज सुधार की गतिविधियाँ काफी आगे बढी हुई थी। बीकानेर राज्य के कॉन्फिडेशियल दस्तावेजों से ज्ञात होता है कि शेखावाटी के जाट किसानो के सामाजिक व आर्थिक सघर्ष ने बीकानेर के जाट किसानों में भी नई चेतना का सचार कर उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरुक बनाया। बीकानेर के किसान आन्दोलन में जाट जाति का ही वर्चस्व था किन्तु यह आन्दोलन जातिवाद से मुक्त ही था। एक आधुनिक शोधकर्ता ने बीकानेर के किसान आन्दोलन के सन्दर्भ में अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है 'राज्य के किसान आन्दोलनों का अध्ययन करने पर यह तथ्य प्रकाश मे आता है कि इन आन्दोलनो का नेतृत्व वहाँ के ग्रामीण क्षेत्र के बहुसख्यक जाति के हाथों मे ही रहा। बीकानेर राज्य के ग्रामीण क्षेत्रो में जाट जाति का वर्चस्व था। अत इन्होंने इसका नेतृत्व किया। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जा सकता कि यह राजपूत जागीरदारो और जाटों का सघर्ष था चूँकि गावों की अन्य सभी खेतीहर जातियाँ भी इन आन्दोलनों से जुड़ी दिखाई देती हैं जिनमें पिछडी और दलित जातियों के लोग भी थे। अस्तु कहा जा सकता है कि बीकानेर राज्य में कृषक असन्तोष एव आन्दोलन जातिगत नहीं थे।'[4]

बीकानेर के जागीर क्षेत्रों में भी किसान लाग–बागों के भार से दबे हुए थे। ये लाग–बाग आधुनिक काल में और अधिक बढ गई थी। जागीरदारों के पास अन्य कोई कार्य नही रह गया था तथा वे किसानो से विभिन्न माध्यमो से धन एकत्रित कर मौज उडाते थे। आधुनिक काल में जागीरदारों ने नए–नए नामों से लाग–बाग लगा दी थी। जब किसान किसी कारण से इनकी अदायगी में असमर्थ रहते थे तो उन्हें विभिन्न तरीको से उत्पीडित किया जाता था। इन क्षेत्रो मे जागीरदार लगभग 37 प्रकार की लाग–बागें किसानों से लेते थे। इन लाग–बागों में अनेक लागें सम्मिलित थी जिनका उल्लेख यथास्थान आगे किया हुआ है। मूल रूप से लाग–बागों व बेगार के विरोध मे ही किसान आन्दोलन आरम्भ हुए थे। इसकी शुरुआत सर्वप्रथम 1937 में उदरासर के किसानों ने की थी जब उन्होने गैर कानूनी लाग–बागो तथा बेगार के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई थी। यहाँ के किसानों के नेता जीवन चौधरी ने बीकानेर प्रजामण्डल के कार्यकर्त्ताओ के सहयोग से किसानों की समस्याएँ बीकानेर के

महाराजा एव अन्य अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत की किन्तु इसमे कोई सफलता नहीं मिली तथा जीवन चौधरी एव प्रजामण्डल के कार्यकर्त्ताओ को पुलिस ने धमकाया व बुरी तरह पीटकर अपमानित किया, किन्तु यह एक अच्छी शुरुआत थी।

महाजन ठिकाने का किसान आन्दोलन :

उदरासर 1937 के पश्चात् 1938 मे बीकानेर राज्य के महाजन ठिकाने में किसान आन्दोलन आरम्भ हुआ। महाजन बीकानेर राज्य का प्रथम श्रेणी का ठिकाना था जिसे विशेष प्रशासनिक अधिकार प्राप्त थे। वह अपने आपको सर्व शक्तिमान शासक समझता था। वह मनमाने तरीके से राजस्व मे वृद्धि कर देता था। मई, 1938 मे महाजन ठिकाने के किसानों ने नाजिम सदर तथा राजस्व आयुक्त के समक्ष जागीरदार द्वारा निरन्तर भू–राजस्व, चराई कर एव अन्य लागों की राशि मे वृद्धि की शिकायते की। जब महाजन के किसानो की समस्याओ पर कोई ध्यान नहीं दिया गया तो उन्होने 13 सितम्बर 1938 को बीकानेर के राजस्व मत्री का ध्यानाकर्षित किया। किसानो ने वकील के माध्यम से अपनी शिकायत राजस्व मत्री के समक्ष प्रस्तुत की। दूसरी ओर महाजन ठिकाने के जागीरदार ने 21 दिसम्बर, 1938 को राजस्व मत्री को शिकायत की कि उसके क्षेत्र के किसानों को राजस्व अदा न करने के लिए भड़काया जा रहा है।[3] बीकानेर के दीवान ने किसानों व जागीरदारों को साथ बुलाकर बातचीत की। इस वार्ता के दौरान जागीरदार भू–राजस्व एव लागो के मामले में 1926 की स्थिति पुन लाने के लिए सहमत हो गया, किन्तु किसान सहमत नहीं थे। यहाँ के किसानो ने दीवान (प्रधानमत्री) को शिकायत की कि भू–राजस्व तथा चराई की दरें खालसा क्षेत्रो के समान निश्चित की जाए।[4]

किसानो की समस्याओं के सन्दर्भ मे बीकानेर राज्य की ओर से विशेष प्रगति नहीं हुई। कई गावों के जाट किसान महाजन पहुँचकर जागीरदार से प्रार्थना की कि चार आना छ पैसा के स्थान पर तीन आना तीन पैसा प्रति बीघा की दर से भू–राजस्व तथा एक रुपया बारह आना के स्थान पर एक रुपया छ आना व दस आना के स्थान पर क्रमश ऊट, भैंस एव गाय पर एक रुपया, बारह आना एव चार आना प्रति पशु की दर से राजस्व लिया जाए। साथ ही किसानों ने माग की कि पशुओं, अनाज एव घी आदि की बिक्री पर 'खूटा फिराई' एव मापा नामक कर नहीं लिया जाए। जागीरदार ने किसानों की माँगों पर कोई विचार किए बिना 1926 की दर से भू–राजस्व, चराई कर एव अन्य लागों की वसूली के निर्णय से किसानों को अवगत कराया।[5] किसानों ने पुन 3 मार्च, 1939 को बीकानेर के गृहमत्री के समक्ष ज्ञापन प्रस्तुत किए। काफी जद्दोजहद के बाद 21 जून, 1939 को दोनों पक्षों के मध्य एक समझौता हो गया।[6] यह समझौता जागीरदार की वादा खिलाफी के कारण टूट गया तथा महाजन ठिकाने के किसानों की अशान्ति यथावत रही। किसानों ने दु खी होकर पुन 30 जनवरी, 1941 को अपनी याचिका गृहमत्री, राजस्व मत्री एव प्रधानमत्री को प्रस्तुत की। किसानों ने महाराजा को भी अपनी बातें पहुँचाने का प्रयास

किया। बीकानेर सरकार ने किसानों की समस्याओं के समाधान के स्थान पर भादरा के तहसीलदार जगन्नाथ जोशी को भू-राजस्व लाग-बाग एव भूगा (चराई कर) वसूल करने के लिए महाजन के ठिकाने का कामदार नियुक्त करके भेजा। नए कामदार ने अनेक गावों के किसानों की सभा कर उनसे तीन वर्षों तक (वर्ष 1938 39 एव 40) के राजस्व व अन्य भुगतानों की शेष राशि के भुगतान हेतु कहा। उन्हें यह भी आगाह कर दिया गया कि यदि वे बकाया राशि नहीं जमा कराएँगे तो उनकी सम्पत्ति को नीलाम कर दिया जायेगा।[7]

कामदार ने आरम्भ से ही सख्ती बरतना शुरू कर दिया था। उसने कुछ किसान नेताओं की सम्पत्ति भी जब्त कर ली थी जो उसके निर्णय का विरोध कर रहे थे। इससे किसानों में भारी आक्रोश व्याप्त हो गया था। इसी के साथ उन्होंने तब तक कोई भी कर अदा न करने का निर्णय लिया जब तक उनकी समस्याओं का समाधान नहीं हो जाता। किसानों ने यह भी निश्चय किया कि वे उन किसानों को जाति बाहर कर देंगे जो उनके निर्णय को तोड़ेगा।[8] ऐसी स्थिति में कामदार की मदद हेतु बीकानेर राज्य ने एक पुलिस बल भेज दिया। उसने 30 अक्टूबर, 1941 को किसानों के नेताओं को गढ में बुलाकर समझौता करने का दबाव डाला, किन्तु कोई सफलता नहीं मिली।[9] जब कामदार 2 नवम्बर, 1941 को किसानों की सम्पत्ति जब्त करने खनीसर गाव पहुँचा तो गाववासियों ने उसका खुला विरोध किया। किसान आन्दोलन व प्रतिरोध को बढता हुआ देख अन्त में बीकानेर सरकार ने 1938-39 की बकाया राशि में 50 प्रतिशत तथा 1939-1940 की बकाया राशि में 25 प्रतिशत छूट की घोषणा की।[10] सरकार ने सावधानी बरतते हुए प्रमुख किसान नेताओं को ठिकाने से बाहर निकलने के आदेश दिए तथा अन्य नेताओं को भविष्य में अच्छे व्यवहार हेतु 500 रुपये के मुचलके प्रस्तुत करने के लिए मजबूर किया। इन्हीं कदमों के साथ इस आन्दोलन ने शक्ति छोड़ दी। सामान्य स्थिति पैदा होने पर ठिकाने ने बाहर निष्काशित नेताओं का निष्काशन रद्द कर दिया। इस प्रकार दिसम्बर 1942 के अन्त तक महाजन ठिकाने का किसान आन्दोलन पूर्णत शान्त हो गया था।

अन्य ठिकानो मे किसान प्रतिरोध

महाजन ठिकाने के किसान आन्दोलन को सीधे तौर पर एक सफल आन्दोलन नहीं कहा जा सकता, किन्तु तीन वर्ष की अवधि तक चले इस किसान आन्दोलन ने अन्य ठिकानों में भी किसानों को प्रभावित अवश्य किया था। अन्य ठिकानों के किसान आन्दोलन में कुम्भाणा ठिकाने का किसान आन्दोलन भी महत्वपूर्ण था। इस आन्दोलन का स्वरुप अधिकाशत शिकायतों व याचिकाओं तक ही सीमित रहा। 9 मार्च 1939 को प्रथम बार कुम्भाणा के जागीरदार ठाकुर दौलत सिंह के विरुद्ध बीकानेर राज्य के उच्च पदाधिकारियों के समक्ष शिकायत की। उनकी प्रमुख शिकायत यह थी कि गम्भीर सूखे की स्थिति में ठिकाना उनसे भू-राजस्व चराई कर तथा गढ की चिनाई डेरा खर्च, न्यौता, धुआ इत्यादि लागें वसूल कर रहा है।[11] इसी क्रम में 14 मार्च 1939

को कुम्भाणा के किसानो ने भू-राजस्व लाग-बाग व अन्य किसी प्रकार का कर न देने का निर्णय लिया। अनेक गावो मे राजस्व सग्रह नही हो सका। जागीरदार के दमन के भय से किसानो का एक प्रतिनिधि मण्डल बीकानेर पहुँचा एव अपनी शिकायते प्रस्तुत की।[12] *यह आन्दोलन क्षणिक बुलबुला बनकर रह गया था।* इसी प्रकार का एक आन्दोलन जसाणा ठिकाने के ठाकुर जीवराज सिंह के विरुद्ध उत्पन्न हुआ जिसका निर्दयतापूर्वक दमन कर दिया गया और किसानो की अपील तक नही सुनी गई।[13] इसी प्रकार कुदुम और रावतसर ठिकानो मे भी जागीरदारो के विरुद्ध 1939-40 के दौरान आन्दोलन हुए। 1940 मे ठिकाना पूगल के किसानो ने बीकानेर के प्रधानमत्री को शिकायत की थी कि 1938-39 के दौरान अकाल के समय भू-राजस्व, भूगा आदि की पूर्ती के लिए उनका सामान छीन लिया गया था। उसी वर्ष बरसात होने पर जब किसानो ने अपने खेतो को जोतने का कार्य आरम्भ किया तो उसने उन किसानो को खेत नही जोतने दिया जिन्होने राजस्व का भुगतान नही किया था।[14] इसी तरह 1940 मे ही काकू गाव के किसानो ने बीकानेर के प्रधानमत्री को जागीरदार के कठोर व्यवहार व मनमाने कर वसूली की शिकायत की थी।[15]

ये सभी आन्दोलन 1940 के आसपास उत्पन्न हुए जिसका प्रमुख कारण *अकाल होने पर भी जागीरदारो द्वारा राहत कार्य आरम्भ करने के स्थान पर* बलपूर्वक कर वसूली था। इन आन्दोलनो को बहुत अधिक सफलता तो नही मिली किन्तु इनसे बीकानेर राज्य के ग्रामीण क्षेत्रो मे राजनीतिक चेतना का उदय अवश्य हुआ था। ऐसा भी नहीं है कि इनसे किसानो को सीधे तौर पर लाभ नही हुआ ? इन आन्दोलनों के दौरान किसानो से प्राप्त शिकायतो के आधार पर बीकानेर सरकार ने जागीर क्षेत्रो में प्राथमिकता के तौर पर कुछ लाग-बागो को समाप्त करने का निर्णय लिया। इसी क्रम में बीकानेर सरकार ने 4 अक्टूबर 1940 को जागीर गावों में 29 लागो को समाप्त कर दिया था।[16] इसे उपरोक्त किसान आन्दोलनो की उपलब्धि कहा जा सकता है। इस सफलता से उत्साहित होकर किसानो ने भारी सख्या मे भू-राजस्व की उच्च दरों व लाग-बागों की वसूली की शिकायते भेजी। तत्पश्चात् बीकानेर राज्य के अधिकारियों की यह स्पष्ट मान्यता बनी कि जागीर क्षेत्रो मे भूमि बन्दोबस्त के बिना ग्रामीण क्षेत्रो मे शान्ति स्थापित नही की जा सकती। इसी क्रम मे जनवरी 1942 से राजगढ तहसील के जागीर क्षेत्रों का भूमि बन्दोबस्त कार्य आरम्भ हो गया था जिसका श्रेय 1941 तक के किसान आन्दोलनों को जाता है।

दूधवाखारा किसान आन्दोलन :

बीकानेर के किसान आन्दोलन के इतिहास मे दूधवाखारा के किसान आन्दोलन को सबसे अधिक महत्व प्राप्त है। जिस प्रकार मेवाड के बिजौलिया तथा जयपुर के शेखावाटी, बूँदी के बरड़ तथा अलवर के नीमूचाणा आन्दोलनो ने सम्पूर्ण देश का ध्यान आकर्षित किया था उसी प्रकार बीकानेर राज्य के दूधवाखारा के किसान आन्दोलन ने सम्पूर्ण देश का ध्यान आकर्षित किया था। इस आन्दोलन का कारण

किसानों का सामन्ती शोषण व उत्पीडन था। वर्ष 1944 के आरम्भ मे यहाँ का जागीरदार ठाकुर सूरजमल सिह दूधवाखारा पहुँचा तथा उसने किसानों पर पुरानी बकाया राशि के भुगतान का बहाना कर अनेक किसानों को उनकी जोत से बेदखल कर दिया था।[17] 3 फरवरी 1945 को जब बीकानेर का महाराजा सादुल सिह भादरा कैम्प में था तो दूधवाखारा के किसानों ने वहाँ के जागीरदार के अत्याचारो तथा किसानों की बलपूर्वक बेदखली की शिकायतें की। इन शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इसका कारण यह था कि यहाँ का जागीरदार सूरजमल सिह बीकानेर राज्य के जनरल सेक्रेटरी पद पर कार्यरत था। अत उसके प्रभाव के कारण किसानों की शिकायतों पर कोई कार्यवाही नहीं हुई। उल्टे इन शिकायतो के पश्चात् सूरजमल सिह के किसानों पर अत्याचारो में वृद्धि ही हुई थी। उसने किसानों के विरुद्ध चोरी और झूठ के झूठे मुकदमें दर्ज करवा दिए थे। इन बढते अत्याचारों के विरुद्ध चौ0 हनुमानसिह के नेतृत्व में किसान स्त्री–पुरुषों का एक प्रतिनिधि मण्डल 2 जून 1945 को माउन्ट आबू जाकर महाराजा सादुल सिह से मिला।[18] इसी दौरान बीकानेर राज्य प्रजापरिषद् के अध्यक्ष प0 मघाराम स्वय दूधवाखारा पहुँचकर किसानों पर हो रहे अत्याचारो का पूर्ण विवरण प्राप्त कर बीकानेर लौटे। प0 मघाराम ने इन अत्याचारों को उजागर करते हुए कटु आलोचना की एव दूधवाखारा के किसानो के पक्ष मे प्रभावी माहौल बनाया।

जब हनुमानसिह एवँ उसके किसान साथी माउन्ट आबू मे महाराजा से मिलकर वापस दूधवाखारा लौट रहे थे तो उन्हें रतनगढ मे गिरफ्तार कर लिया गया था।[19] उसे बीकानेर जेल में भेज दिया गया जहाँ उसे भारी यातनाएँ दी गईं। बीकानेर राज्य प्रजा परिषद् का हनुमानसिह के नेतृत्व में किसान आन्दोलन को खुला समर्थन मिल रहा था। 2 जुलाई, 1945 को दूधवाखारा व राजगढ के सैकडों किसान बीकानेर पहुँचे तथा हनुमानसिह की तुरन्त रिहाई की माग की। चौ0 हनुमानसिह ने यातनाओं के विरुद्ध जेल में आमरण अनशन आरम्भ कर दिया था। 6 जुलाई 1945 को दूधवाखारा के किसानो ने अपनी महिलाओं व बच्चो सहित बीकानेर की सडको पर चौ0 हनुमानसिह की रिहाई के लिए बीकानेर राज्य प्रजा परिषद् के कार्यकर्त्ताओं के नेतृत्व में विशाल जुलूस निकाला। इस जुलूस के फलस्वरूप सरकार का दमन चक्र और अधिक तीव्र हो गया था। इसके तुरन्त पश्चात् प0 मघाराम और उसके साथियों को गिरफ्तार कर लिया गया था।[20] उसी दिन किसानो ने भी गिरफ्तारिया दी। 9 जुलाई, 1945 को बीकानेर राज्य के बडे अधिकारियो ने गिरफ्तार किसानों को डराया, धमकाया ओर उन्हे आन्दोलन त्यागने के लिए मजबूर किया। 8 जुलाई को प0 मघाराम के छोटे भाई शेराराम को इसलिए गिरफ्तार कर लिया गया था कि उसने किसानो के भोजन आदि की व्यवस्था की थी। 14 जुलाई तक गिरफ्तार सभी किसानो को समझा बुझाकर और डरा धमकाकर उनके गाव वापस भेज दिया।

राज्य का दमन चक्र शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों मे निरन्तर जारी रहा। बीकानेर

शहर मे प्रजा परिषद् व इसकी सहयोगी संस्थाओ जैसे खादी मन्दिर सार्वजनिक वाचनालय आदि पर ताले लगा दिए गए थे। इस सबके उपरान्त भी सरकार शान्ति स्थापित करने मे असफल सिद्ध हो रही थी। बीकानेर शहर मे दमन चक्र के बारे मे यह वृतान्त इस प्रकार मिलता है पुलिस और प्रशासन ने किसान आन्दोलन के समर्थको के विरुद्ध अपना दमन चक्र बीकानेर मे तेज कर दिया। खादी मन्दिर बीकानेर और बीकानेर राज्य प्रजा परिषद् द्वारा सचालित कार्यालय पर पुलिस ने पहरा लगा दिया। 15 जुलाई को वाचनालय का तिरगा उतारकर उस पर ताला लगा दिया गया। गिरफ्तार प्रजा परिषद् कार्यकर्त्ताओ को 21 जुलाई को जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया और दफा 147 151 ताजी रात हिन्द के तहत चालान पेश कर केन्द्रीय कारागृह में भेज दिया गया।[31]

चौ० हनुमानसिह के विरुद्ध राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। यह मुकदमा 50 दिनों तक चला। हनुमानसिह ने 50 दिन तक मुकदमें की सुनवाई के साथ सहयोग इस आधार पर नहीं किया कि वह निष्पक्ष सुनवाई नहीं थी। उसके अनुसार *राज्य की ओर से न्याय का एक नाटक किया जा रहा था।* 50 दिन की मुकदमे की सुनवाई के दौरान हनुमानसिह अनशन पर रहा। उसे 9 अगस्त, 1945 को 10 वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी गई,[32] किन्तु उसका स्वास्थ्य गिरने के कारण 10 *अगस्त 1945 को महाराजा ने उसे माफी प्रदान कर कैद से मुक्त करवा दिया।*[33] ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि महाराजा बीकानेर ने हनुमानसिह को गगानगर मे 100 मुरब्बा भूमि देने का प्रस्ताव रखा जिसे हनुमान सिह ने यह कहते हुए अस्वीकार कर *दिया कि वह इसके स्थान पर दूधवाखारा मे अपने लोगों के साथ इज्जत सहित रहने* को प्राथमिकता देगा।[34] इस रिकार्ड के साथ महाराजा किसानो को राज्य की ओर से क्षतिपूर्ति हेतु सहमत हो गया था।

चौ० हनुमानसिह की रिहाई के पश्चात् भी किसानो पर अत्याचार बन्द नही हुए थे। अखिल भारतीय प्रजा परिषद् ने हरिभाऊ उपाध्याय को दूधवाखारा की घटना की जॉच हेतु भेजा था किन्तु उसे वहाँ नहीं जाने दिया और उसे लौटने पर मजबूर कर दिया था।[35] दूधवाखारा के किसानों ने पुन आन्दोलन आरम्भ कर दिया था। 20 मार्च 1946 को चौ० हनुमान सिह एव उसके साथी नरसाराम को बीकानेर सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत इस आरोप पर गिरफ्तार कर लिया था कि वे दूधवाखारा के किसानो को आन्दोलन हेतु उकसा रहे हैं।[36] इसी दौरान राष्ट्रीय स्तर के समाचार पत्रों ने इस आन्दोलन को राष्ट्रीय स्तर पर प्रचारित किया। हनुमानसिह के साथ पुन बुरा व्यवहार किया गया किन्तु उसके गिरते स्वास्थ्य के कारण उसे महाराजा के आदेश से पुन 27 जुलाई 1947 को रिहा कर दिया गया।[37] जेल से रिहा होने के पश्चात् उसने पुन किसानों में एकता स्थापित कर राज्य के विरुद्ध आन्दोलन का आह्वान किया। उसने अनेक किसान सभाओ मे भाषण दिए। सरकार ने उसे गिरफ्तार करने की कोशिश की किन्तु वह बच निकला। सरकार ने इस पर

उसकी सम्पत्ति जब्त कर नीलाम कर दी। अन्त मे पुलिस ने उसे 7 अप्रेल 1947 को बन्दी बना लिया। उसने बीकानेर जेल में 65 दिन तक भूख हड़ताल की और जब बीकानेर राज्य में लोकप्रिय सरकार बनी तो उसे 4 जनवरी, 1948 को जेल से रिहा कर दिया गया। इसी के साथ उस पर व उसके परिजनों पर लगाए गए सभी मुकदमें भी वापस ले लिए गए थे।[28] इस प्रकार दूधवाखारा के किसान आन्दोलन का निर्णायक अन्त हुआ।

बीकानेर राज्य प्रजा परिषद के नेतृत्व में किसान आन्दोलन :

बीकानेर राज्य प्रजा परिषद् राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु सघर्षरत थी। दूधवाखारा के किसान आन्दोलन के समय प्रजा परिषद् ने उस आन्दोलन मे बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अत प्रजा परिषद् का राज्य के सभी किसानों व किसान आन्दोलनों को समर्थन प्राप्त था, किन्तु 1946 में कुम्भाराम आर्य द्वारा प्रजा परिषद् की सदस्यता स्वीकार करने के पश्चात् इसकी ओर से स्वतत्र रूप से किसान आन्दोलन चलाया गया था। परिषद् ने मुख्य रूप से गैर कानूनी लाग–बागो, बेगार, भारी राजस्व एव अन्य करों का मुद्दा अपने हाथो में लिया। 7 अप्रेल, 1946 को कुम्भाराम आर्य की अध्यक्षता में राजगढ़ तहसील के ललाणा मे प्रजा परिषद् की एक सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में जागीरदारों के जुल्म व अत्याचारो पर खुलकर चर्चा हुई थी। राज्य ने इस सभा के नेताओं की गिरफ्तारी के वारट जारी कर दिए थे। 1 मई, 1946 को कुम्भाराम आर्य को गिरफ्तार कर लिया गया। 20 मई, 1946 को राजगढ कस्बे में किसानों के जुलूस पर लाठी चार्ज हुआ तथा काफी किसानों को गिरफ्तार किया गया। 2 जून, 1946 को प्रजा परिषद् ने ललाणा मे पुन एक सभा आयोजित की जिसमें 5000 किसान सम्मिलित हुए।[29] किसानों के बढ़ते हुए आन्दोलन को शान्त करने के ध्येय से राज्य सरकार ने 24 जून 1946 को किसानों व जागीरदारों के मध्य समझौता करवाने के लिए एक समिति गठित की जिसमे एक उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को अध्यक्ष बनाया गया तथा जागीरदारो व जाटो के दो–दो प्रतिनिधि सदस्य बनाए गये।[30] इस समिति का गठन एक नाटक ही सिद्ध हुआ। 1 जुलाई को चौ0 कुम्भाराम को रिहा कर दिया गया।

प्रजा परिषद् के नेतृत्व मे दूसरा किसान आन्दोलन रायसिह नगर की घटना को लेकर हुआ। जब 1 जुलाई, 1946 को प्रजा परिषद् के नेतृत्व में रायसिह नगर में एक जुलूस निकल रहा था तो पुलिस व सेना के बल पर इसे कुचलने की नाकाम कोशिश की गई। इस सैनिक कार्यवाही में एक कार्यकर्त्ता बीरबल सिह की मृत्यु हो गई थी।[31] प्रजा परिषद् ने 6 जुलाई, 1946 को सम्पूर्ण बीकानेर राज्य में किसान दिवस मनाया। राज्य मे सभी जगह रायसिह नगर गोली काण्ड को लेकर राज्य की भर्त्सना की गई तथा दूधवाखारा एव राजगढ के किसानों पर किए जा रहे अत्याचारो के खिलाफ आवाज बुलन्द की गई।[32] 1946 के पश्चात् भारी सख्या में जाट नेताओ

का प्रवेश प्रजा परिषद् में हुआ। इससे एक ओर किसानों को बल मिला वही दूसरी ओर राज्य प्रजा परिषद् के सामाजिक आधार मे वृद्धि हुई जो अपने उत्तरदाई शासन की स्थापना के ध्येय को प्राप्त करने मे सफल रही।

3 सितम्बर, 1946 को गोगामेडी मे प्रजा परिषद् की एक विशाल सभा हुई जिसमें लगभग 3000 किसान एकत्रित हुए थे। इस सभा मे किसानो की भू-राजस्व व लाग-बाग सम्बन्धी समस्याओ पर विचार हुआ। इसमे किसानो पर जागीरदारो द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया। पहली बार इस सभा में जागीरदारी व्यवस्था की समाप्ति की माँग प्रजा परिषद् के मच से की गई थी।[31]

कांगड काण्ड :

बीकानेर के किसान आन्दोलन के इतिहास की अन्तिम महत्त्वपूर्ण घटना कागड काण्ड थी। यह आन्दोलन जागीरदारों के अत्याचारों से उपजा स्वस्फूर्त किसान आन्दोलन था। कागड रतनगढ तहसील का एक गाव था जो जागीरदार के अधिकार मे था। 1946 में खरीफ की फसल नष्ट होने के कारण अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। कागड के जागीरदार ने ऐसी स्थिति मे किसानों से कर वसूली का प्रयास किया। किसानो ने जागीरदार से वसूली को स्थगित करने का निवेदन किया। कुछ होता हुआ न देख कागड के लगभग 35 किसान महाराजा को याचिका प्रस्तुत करने बीकानेर पहुँचे। इससे जागीरदार आग-बबूला हो गया तथा 29 अक्टूबर, 1946 को जागीरदार के आदमियो ने उस गाव के किसानों के साथ खुलकर लूट-मार की।[32] पुरुष, महिला एव बच्चो को गढ मे ले जाया गया। जागीरदार के गुण्डों ने खुले आम महिलाओं की बेज्जती की। किसानों से जबरदस्ती राजस्व वसूल किया गया तथा उनकी सम्पत्तिया जब्त अथवा नीलाम कर दी गई। दुःखी किसान मदद के लिए प्रजा परिषद् के बीकानेर स्थित कार्यालय पहुँचे। प्रजा परिषद् ने इस मामले की जाच हेतु एक समिति गठित की जिसमें स्वामी सच्चिदानन्द,केदारनाथ, हसराज आर्य, दीपचन्द चौ0 मोजीराम गगादत्त रगा एव रूपराम रतनगढ सदस्य नियुक्त किए गए थे।

उपरोक्त जाच समिति के सदस्य 1 नवम्बर, 1946 को कागड पहुँचे तो उन्होंने देखा कि गाव खाली हो चुका था। कुछ भयभीत महिलाएँ अवश्य दिखाई दी जो बात करने की भी हिम्मत नहीं कर रही थी। इसी बीच ठिकाने के कुछ लोग इनको गढ में बुला ले गए उनकी वहा जागीरदारों के लोगों ने जमकर पिटाई की व अनेक तरीकों से अपमानित किया। वे अनेक बार बेहोश तक हो गए थे। उन्हें और अधिक अपमानित करने के लिए उनके कपडे उतारकर गाव की गलियों में घुमाया गया।[33] दूसरे दिन भूखे प्यासे इन नेताओं को मुक्त किया। उन्होने रतनगढ पहुँचकर बीकानेर महाराजा को तार द्वारा सूचना दी व थाने मे रिपोर्ट कराने गए किन्तु पुलिस ने उनकी

रिपोर्ट भी दर्ज नही की। इन सबसे किसानो में निराशा तो आई किन्तु प्रजा परिषद ने इन अत्याचारों के विरुद्ध जमकर सघर्ष किया। इस घटना के पश्चात् किसान आन्दोलन में दृढता आ गई थी और वे जागीरदारी प्रथा की समाप्ति की माँग करने लगे। किसान अब तक भली भाँति समझ गए थे कि राजा व जागीरदारो की सत्ता की समाप्ति के बिना उनको न्याय नही मिल सकता। अत 1947 के आरम्भ से ही किसान भारी सख्या में प्रजा परिषद् की ओर आकर्षित हुए।

बीकानेर राज्य के किसान आन्दोलन के अध्ययन के पश्चात् हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि 1938 से 1948 अर्थात् एक दशाब्दी के किसान सघर्ष ने आजादी की लडाई को बल तो प्रदान किया ही था साथ ही वे एक क्रान्ति के वाहक भी बने। दूधवाखारा के किसान आन्दोलन के समय से प्रजा परिषद् ने किसान सघर्ष को सभी प्रकार से खुला समर्थन दिया। अनेक बार यह भेद करना भी सम्भव नही हो रहा था कि किसान आन्दोलन चल रहे हैं अथवा प्रजा परिषद् की गतिविधियां। 1948 में बीकानेर में उत्तरदायी शासन की स्थापना के साथ–साथ ही किसानों को लम्बी गुलामी से मुक्ति मिली थी। 30 मार्च 1949 को बीकानेर राज्य के राजस्थान में विलय के साथ ही बीकानेर में राजतंत्र व सामन्तवाद को अन्तिम रूप से विदा कर दिया गया था, जिसमें किसान आन्दोलनों की निर्णायक भूमिका रही।

संदर्भ

1 दी राजपूताना गज़ेटिअर जिल्द–3 कलकत्ता 1879 पृ0 362

2 शिव कुमार भनोत बीकानेर राज्य में कृषक–असन्तोष और किसान आन्दोलन दूधवाखारा आन्दोलन के विशेष सन्दर्भ में अप्रकाशित लेख

3 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर रेवेन्यू डिपार्टमेन्ट रिकार्ड फाइल न0 बी 364–443 1942

4 वही

5 वही

6 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर रेवेन्यू रिकार्ड फाइल न0 135 बस्ता न0 73 1938–39

7 वही बीकानेर रेवेन्यू डिपार्टमेन्ट रिकार्ड फाइल न0 बी 364–443 1942

8 वही बीकानेर कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड फाइल न0 4–सी 1939

9 वही

10 राजस्थान राज्य अभिलेखागार, रेवेन्यू कमीश्नर सदर रेवेन्यू रिकार्ड फाइल न0 200 बस्ता न0 88 1941–42

11 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड फाइल न0 17–सी 1939

12. वही

13 शिव कुमार भनोत पूर्वोक्त

14 राजस्थान राज्य अभिलेखागार प्राइममिनिस्टर ऑफिस रिकार्ड फाइल न0 बी–183–229 बस्ता न0 39 1941
15 वही
16 वही रेवेन्यू कमिश्नर, रेवेन्यू रिकार्ड फाइल न0 55 बस्ता न0 78 1940–41
17 बीकानेर कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड फाइल न0 L-VIII बस्ता न0 24 1945
18 सत्यदेव विद्या अलकार बीकानेर का राजनैतिक विकास और प0 मघाराम वैद्य पृ0 159
19 राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड फाइल न0 L-VIII बस्ता न0 24 1945
20 वही बीकानेर कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड फाइल न0 36 1945
21 वही
22. प्रजा सेवक, 29 अगस्त 1945
23 दी बीकानेर राजपत्र 10 अगस्त 1945
24 पेमाराम, पूर्वोक्त पृ0 300
25 लोकयुद्ध 14 अक्टूबर, 1945
26 दी हिन्दुस्तान टाइम्स, 27 मार्च 1946
27 लोकवाणी, 28 जुलाई 1946
28 राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर प्रजामण्डल रिकार्ड फाइल न0 5ए 1947
29 वही फाइल न0 8 1944–49
30 दी बीकानेर राजपत्र 24 जून, 1946
31 सत्यदेव विद्याअलकार, पूर्वोक्त पृ0 186–190
32. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर राज्य प्रजा मण्डल रिकार्ड फाइल न0 5ए 1947
33 वही फाइल न0 2. 1946
34 दी हिन्दुस्तान 8 नवम्बर, 1946
35 सत्यदेव विद्याअलकार, पूर्वोक्त, पृ0 191–195

अध्याय – 9

अलवर एवं भरतपुर राज्यों में किसान आन्दोलन

अलवर राज्य मे किसान आन्दोलन मेवाड मारवाड एव जयपुर राज्यों की तुलना मे पृथक पद्धति पर उत्पन्न हुए तथा आगे बढे। यहाँ 80 प्रतिशत भूमि खालसा के अन्तर्गत थी जबकि केवल 20 प्रतिशत भूमि जागीरदारों के नियत्रण में थी। अत यहाँ जागीरदारों की सख्या अत्यधिक सीमित थी। अधिकाश जागीरदारों के अधिकार मे 10 बीघा से 5 गाँवों तक जागीर में थे एव किसी भी जागीरदार को न्यायिक शक्तिया प्राप्त नहीं थी। राजस्थान के अन्य राज्यो की तुलना में यहाँ के किसानो की दशा सन्तोषजनक थी, दिल्ली एव आगरा जैसे शहरो तथा पजाब व सयुक्त प्रान्त के समीप स्थित होने के कारण राज्य का नजरिया काफी प्रगतिशील था। यहाँ राजस्थान के अन्य राज्यों की तुलना मे शिक्षा स्वास्थ्य आदि की व्यवस्था भी सन्तोषजनक थी। जहाँ मेवाड मारवाड एव जयपुर में अधिकाश किसान आन्दोलन जागीर क्षेत्रों मे हुए थे जबकि अलवर राज्य में विभिन्न किसान आन्दोलन खालसा क्षेत्रों मैं हुए। अत इस प्रकार अलवर राज्य के किसान आन्दोलनों के मुद्दे भी राजस्थान के अन्य किसान आन्दोलनों से भिन्न थे। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि अलवर मे किसान आन्दोलन विलम्ब से उत्पन्न हुए थे।

किसान आन्दोलनों के विवरण के पूर्व वहाँ की कृषि सरचना को जानना आवश्यक है। इस राज्य के अधिकाश किसानो को खालसा क्षेत्रो में स्थाई भू–स्वामित्व के अधिकार प्राप्त थे जिन्हे बिस्वेदारों के नाम से जाना जाता था।[1] अधिकाश मामलों मे किसानों का अपनी जोतों पर स्वामित्व सुरक्षित था। उनको उनकी जोतों से बेदखल नही किया जा सकता था जब तक कि वे बिना चूक के नियमित राजस्व अदा करते थे। यहाँ भू–राजस्व की सबसे बदतर पद्धति इजारा थी, जिसके अन्तर्गत उच्च बोली बोलने वाले को निश्चित भूमि निश्चित अवधि के लिए दे दी जाती थी किन्तु यह पद्धति अधिक प्रचलित नहीं रही क्योकि सन् 1876 मे ब्रिटिश पद्धति पर अलवर मे पहला भूमि बन्दोबस्त हुआ था जिसके द्वारा सम्पूर्ण भूमि के राजस्व का मूल्याकन कर नकदी में लगान भुगतान की प्रथा आरम्भ की गई थी। खालसा क्षेत्रो मे कमोवेश रैयतवाडी प्रथा के समान भू–राजस्व की व्यवस्था विद्यमान थी। वैसे किसानो के अधिकार नियम कानून पूर्ण स्पष्ट थे किन्तु किसान सामन्ती शोषण से मुक्त नहीं थे। राजा स्वय ही अपने आप में एक बडा सामन्त था। भूमि बन्दोबस्तों का उद्देश्य कृषि व कृषक की दशा मे सुधार करना न होकर राजस्व में वृद्धि करना होता था, जिससे

राज्य की आय मे वृद्धि हो सके। पहला भूमि बन्दोबस्त 20 वर्षों के लिए किया गया था। अत दूसरा भूमि बन्दोबस्त 1899 मे हुआ जिसके द्वारा भू–राजस्व मे वृद्धि कर दी गई थी तथा भू–राजस्व की राशि कुल उत्पादन के 1/2 से 1/5 हिस्से के मध्य निर्धारित की गई थी। तीसरा बन्दोबस्त 1922 मे हुआ जिसने भू–राजस्व की राशि के आकार मे और भी वृद्धि की थी। लाग–बागो की सख्या तो सीमित थी किन्तु भू–राजस्व अमर्यादित था। सैद्धान्तिक तौर पर राजकीय कार्यों के लिए बेगार की प्रथा 1899 के भूमि बन्दोबस्त द्वारा कर दी गई थी किन्तु व्यवहार में इसका प्रचलन जारी रहा।

वास्तव में यहाँ भी किसान सामन्ती व औपनिवेशिक शोषण के शिकार थे किन्तु इस शोषण का स्वरूप यहाँ इतना भद्दा नही था कि जितना राजस्थान के अन्य राज्यों में था। जागीरदारों की सख्या कम होने व छोटा आकार होने के कारण वे आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से बहुत अधिक शक्तिशाली नही थे। काफी हद तक किसान जागीरदारो के हाथो होने वाले सामाजिक अपमान से मुक्त थे। अधिकाशत बेगार प्रथा कुछ जागीरो तक ही सीमित थी जिनके पास सम्पूर्ण राज्य की भूमि का मुश्किल से 10 प्रतिशत भाग था। यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है कि निम्न जातियों के साथ सामाजिक भेदभाव तो व्याप्त था, किन्तु किसान जातियाँ जैसे अहीर, गूजर, जाट मीणा, माली, कुम्हार, मेव इत्यादि के साथ सामाजिक भेदभाव नहीं बरता जाता था। अलवर राज्य में कोई शक्तिशाली किसान आन्दोलन उत्पन्न नहीं हो सका क्योकि किसान एक सीमा तक सन्तुष्ट थे, फिर भी यह दावा नहीं किया जा सकता कि यहा कोई किसान आन्दोलन नहीं था। सन् 1920 के पश्चात् उपजी राजनीतिक चेतना के प्रभाव में यहा भी किसान आन्दोलन उत्पन्न हुए जो किसी न किसी रूप में लगभग 1947 तक जारी रहे। अलवर राज्य के किसान आन्दोलनों को प्रमुखत तीन भागो में बाटा जा सकता है। पहले भाग मे नीमूचाणा का किसान आन्दोलन उल्लेखनीय है जो 1925 में हुआ, दूसरा 1932–33 का मेव विद्रोह था तथा तीसरा 1941–47 के दौरान प्रजामण्डल के नेतृत्व में उदारवादी आन्दोलन को रखा जा सकता है।

नीमूचाणा का आन्दोलन 1925 :

सन् 1922 मे तीसरा भूमि बन्दोबस्त सम्पन्न हुआ था तथा 1923–24 में भू–राजस्व की नई दरें लागू कर दी गई थी। इसके अन्तर्गत भू–राजस्व में भारी वृद्धि की गई थी। सन् 1876 में कुल राजस्व 2019777 रुपए निर्धारित हुआ था जो 1899 में 2073487 रुपए हो गया। जबकि 1922 में यह राशि बढकर 2939112 रुपए हो गई थी।[7] दूसरे भूमि बन्दोबस्त तक राजपूत एव ब्राह्मणों को विशेष दर्जा प्राप्त था तथा इनसे अन्य जातियों की तुलना में कम भू राजस्व लिया जाता था किन्तु तीसरे बन्दोबस्त में जातिगत आधारों को समाप्त कर दिया गया था। इससे राजपूत व ब्राह्मण किसानों अथवा भू–स्वामियों में असन्तोष बढना स्वाभाविक बात थी। छोटे

जागीरदारों तथा विश्वेदारों को भी इस बन्दोबस्त ने प्रभावित किया था। अन्यजातियों के स्थाई भू-स्वामी भी नए बन्दोबस्त के विरुद्ध थे किन्तु इसके विरोध मे राजपूतों ने नेतृत्वकारी भूमिका निभाई। थानागाजी एव बानसूर तहसील के राजपूत विश्वेदारो ने नई दरो पर लगान न देने का निश्चय कर इसके विरुद्ध अभियान आरम्भ किया। महाराजा पर दबाव उत्पन्न करने के ध्येय से अक्टूबर 1924 मे अनेक गावो में सभाओ का आयोजन किया गया, किन्तु राज्य ने इन सभी को अनदेखा कर दिया था। इस अभियान के नेताओ ने सभी राजपूत शक्ति और साधनो का समर्थन प्राप्त करने का निश्चय किया एव उन्होने अलवर राज्य के अन्तर्गत व इसके बाहर के राजपूतों के समर्थन के लिए अपील की। जनवरी 1925 मे दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय क्षत्रीय महासभा के अधिवेशन में अलवर के लगभग 200 राजपूत सम्मिलित हुए थे। उन्होंने महासभा के समक्ष अपनी शिकायतें प्रस्तुत की तथा अपनी माँगो के समर्थन हेतु निवेदन भी किया।[3] इस अधिवेशन में उन्हें सहानुभूति व प्रोत्साहन मिला एव उन्होंने इस अधिवेशन के पश्चात् अपने अभियान को और तीव्र कर दिया था। वास्तव में क्षत्रीय महासभा के अधिवेशन के उपरान्त नीमूचाणा के राजपूतो का अभियान आन्दोलन का रूप प्राप्त करने लगा था। इसके नेताओं ने अपनी शिकायतों की एक सूची तैयार कर महाराजा के समक्ष प्रस्तुत की। उनकी माँगे निम्नानुसार थी[4] –

1 पिछले बन्दोबस्त के समय भू-राजस्व में राजपूतों को कुछ विशेषाधिकार प्रदान किए गए थे किन्तु अब कोई अन्तर नहीं किया गया है तथा भू-राजस्व की दरे सभी के लिए समान रखी गई हैं। राजपूतो की जोतों पर भू-राजस्व कृपापूर्ण दरों पर ही निर्धारित किया जाए जैसा कि पिछले बन्दोबस्त में किया गया था एव बढा हुआ भू-राजस्व घटाया जाए।
2 चराई कर केवल उन्ही से वसूल किया जाए जिनके पशु सुरक्षित वनो के चारागाह मे जाते हैं।
3 नई रुधे (शिकारगाह अथवा आरक्षित वन) नहीं बनाई जाए तथा उन्हे जगली जानवरों को मारने की अनुमति प्रदान की जाए क्योंकि वे उनकी फसलों को भारी नुकसान पहुँचाते हैं।
4 उनके क्षेत्र की बजर भूमि बाहरियों को नीलाम न की जाए।
5 मन्दिरो को माफी मे दान की गई भूमि को जब्त न किया जाए।

राज्य ने इन माँगों को न्यायोचित नहीं माना इसलिए राजपूतों ने अपना पक्ष एजेन्ट टू गवर्नर जनरल इन राजपुताना के समक्ष प्रस्तुत किया। उन्होने अपनी माँगें न माने जाने तक भू-राजस्व नहीं देने का निश्चय भी किया। इस निर्णय के अनुसार राजपूतो ने भू-राजस्व का भुगतान रोक दिया जब राज्य के अधिकारियों ने खलिहान से अनाज ले जाने पर रोक भी लगाई तो किसान बलपूर्वक अपना अनाज घर ले गए।[5] अब तक की घटनाओ से यह प्रतीत हो रहा था कि राज्य आन्दोलनकर्त्ताओं के दमन हेतु सघन सैनिक अभियान चला सकता है। अत राजपूतों ने अपने विरुद्ध

किसी भी कार्यवाही का मुकाबला करने के ध्येय से तलवार भाले एव बन्दूकें एकत्रित करना आरम्भ कर दिया था। जो राजपूत सदैव महाराजा के वफादार रहे थे अब उससे नाराज थे। अग्रेजो के आगमन के पूर्व राजपूत जो कि महाराजा की शक्ति का स्त्रोत थे, अब उनकी उपेक्षा की जा रही थी। राजपूतो ने उनके ऊपर राज्य द्वारा थोपे गए अन्याय के विरुद्ध लडने का दृढ निश्चय किया। एहतियात बरतते हुए 6 मई 1925 को अलवर राज्य के दीवान ने एक आदेश जारी किया जिसके अनुसार कोई व्यक्ति अथवा व्यक्तियो का समूह एक माह की अवधि तक थानागाजी बानसूर नारायणपुर, मालाखेडा राजगढ एव बहरोड थानों के क्षेत्र में हथियारों सहित नहीं घूम सकता।[8] इस आन्दोलन का मुख्य केन्द्र नीमूचाणा नामक गाव था। मई 1925 के आरम्भ में भारी सख्या मे राजपूत नीमूचाणा में एकत्रित हुए एव वहाँ ठहर गए।

स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए अलवर के महाराजा ने इस मामले की जाच हेतु एक आयोग नियुक्त किया। इस आयोग को यह दायित्व सौंपा गया था कि इसके सदस्य समस्या से सीधा साक्षात्कार कर समस्या समाधान हेतु सुझाव दें। यह आयोग 7 मई 1925 को नीमूचाणा पहुँचा।[9] यह आयोग सार्थक सिद्ध नहीं हुआ क्योकि यह राज्य की ओर से एक जासूसी अभियान बन कर रह गया था। आयोग के सदस्यों ने वहाँ पहुँचकर प्रमुख राजपूत नेताओं से बातचीत तो की, किन्तु इसका कोई सार्थक परिणाम सामने नहीं आया। सम्पूर्ण घटनाक्रम का अवलोकन करने के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि इस आयोग का उद्देश्य यह जानना था कि नीमूचाणा में एकत्रित राजपूतों की तैयारियां क्या हैं क्योंकि यह इस बात से भी पुष्ट होता है कि इस आयोग के नीमूचाणा पहुँचने के 7 दिन बाद आन्दोलनरत किसानों की माँगों को स्वीकार करने के स्थान पर राज्य की सेना ने आक्रमण कर दिया था। महाराजा ने इस मुद्दे पर उपेक्षापूर्ण रुख अपना लिया था तथा वह अनेक कारणों से किसी भी प्रकार की छूट देने के पक्ष में नहीं था। प्रथम, सन्तुष्टिकरण की नीति राज्य के अन्य भागों में समस्या को फैला सकती थी। दूसरा, भू-राजस्व पद्धति में सशोधन सम्भव नहीं था। तीसरा, महाराजा स्वय इस समय कष्ट मे था क्योंकि उसके साथ अग्रेजों के सबध अच्छे नहीं थे। अग्रेज किसी न किसी बहाने उसे उसकी शक्तियों से वचित करना चाहते थे। चौथा, 1922 में असहयोग आन्दोलन को स्थगित करने के पश्चात् अग्रेजों की यह आम नीति थी कि सभी प्रकार के जन उभारों को बलपूर्वक कुचल दिया जाए। इन सब तथ्यों और दबावों के प्रभाव में अलवर सरकार ने नीमूचाणा के सघर्षरत किसानों को बलपूर्वक कुचलने का निश्चय किया।

13 मई, 1925 को अलवर का सैन्य दल नीमूचाणा पहुँचा तथा सम्पूर्ण गाव पर घेरा डाल दिया। गाव को घेरने के पश्चात् वहा के ठाकुर को आन्दोलन समाप्त करने के लिए मजबूर किया। इसका कोई वाछित परिणाम मिलता न देख सैन्य दल ने 14 मई, 1925 को प्रात काल मशीनगनो से गाव पर गोलिया दागना आरम्भ कर दिया था। पूरे गाव को जलाकर राख कर दिया गया था। इस सैनिक अभियान में लगभग 156

लोग मारे गए तथा 600 घायल हुए।[8] यह एक नृशस हत्याकाण्ड था। समाचार पत्रो ने इसे नीमूचाणा काण्ड के शीर्षक से प्रचारित कर सम्पूर्ण देशवासियों का ध्यानाकर्षित किया। राजस्थान सेवा सघ ने इस मामले मे जाँच की तथा इस जाँच की पूरी कहानी 31 मई 1925 के 'तरुण राजस्थान' के अक में प्रकाशित की थी। एक अन्य अखबार 'रियासत' ने इसकी तुलना जलियावाला बाग के हत्याकाण्ड से की थी।[9] इस घटना की जाँच से अजमेर के रामनारायण चौधरी भी जुड़े हुए थे। अपने एक लेखन में उन्होंने इस घटना का विवरण देते हुए इसे नीमूचाणा हत्याकाण्ड की सज्ञा दी है। उन्होने लिखा है

"सन् 1925 की ग्रीष्म ऋतु में नीमूचाणा काण्ड हुआ। देशी राज्यो के इतिहास में इस घटना का वही महत्त्व है जो भारत में जलियावाला बाग का है। नीमूचाणा अलवर रियासत का एक छोटा सा गाव है। यहाँ के राजपूत किसानो को लगान सम्बन्धी और दूसरी कई तकलीफें थी। अलवर के महाराजा जयसिंह जितनी कुशाग्र बुद्धि रखते थे उतने ही निरकुश तबियत वाले थे। प्रजा के शोषण और दमन मे सिद्धहस्त थे। महत्त्वाकाक्षाओ में बीकानेर के महाराजा सर गगासिंह के प्रतिस्पर्धी और कुटिल नीति मे उनके समकक्ष थे। उन्होंने अपने आतक से प्रजा को भेड़ से भी अधिक दब्बू बना रखा था। नीमूचाणा वालों में कुछ जीवन था। उसको कुचलने के लिए मशीनगन सहित सेना की बड़ी सी टुकड़ी भेज दी गई। उसने सैंकड़ों आदमियो को भून दिया, प्रजा की सम्पत्ति आग लगाकर जला दी और वे सब अमानुषिक लीलाएँ की जो ऐसे अवसरों पर मानव विकार स्वच्छद होकर किया करता है।"[10]

सैनिक कार्यवाही केवल आगजनी और लूटमार तक ही सीमित नही रही बल्कि काफी लोगों को गिरफ्तार भी किया गया था। 39 लोगो पर विशेष न्यायालय में मुकदमा चलाया गया। इस मुकदमें की सुनवाई 3 जून को आरम्भ हुई तथा 8 जुलाई को न्यायालय ने निर्णय दे दिया। 39 लोगो में से 9 लोगों को दोषमुक्त कर दिया गया था तथा 30 लोगों को विभिन्न अवधि की सजा सुनाई गई किन्तु जनवरी 1926 तक महाराजा ने सभी को आम माफी प्रदान कर दी थी।[11] पीड़ित लोगो को शान्त करने के विभिन्न प्रयास राज्य की ओर से किए गए। जिन परिवारों को मानव हानि उठानी पड़ी उनको प्रति व्यक्ति 128 रुपए राजकोष से दिया गया। उनकी मुख्य माँगें मान ली गई तथा 18 नवम्बर, 1925 को ही यह आदेश जारी हो गए थे कि 1922 के बन्दोबस्त की अवधि समाप्ति तक पुराने बन्दोबस्त के अनुसार ही राजस्व लिया जाएगा। इस प्रकार नीमूचाणा किसान आन्दोलन का पटाक्षेप हुआ।

1932–33 का मेव विद्रोह :

वर्ष 1932–33 में अलवर राज्य के मेव किसानो ने खुला विद्रोह कर दिया था। नीमूचाणा आन्दोलन की तुलना में मेवो का आन्दोलन क्षेत्र व स्वरूप की दृष्टि से अधिक विस्तृत था। मेवो द्वारा आबादित क्षेत्र मेवात के नाम से जाना जाता है जो

राजस्थान के पूर्व राज्यो अलवर, भरतपुर तथा पूर्व पजाब के गुडगाव जिले के बीच फैला हुआ है। मेव आत्म सन्तुष्ट अर्ध आदिवासी समुदाय है जिसका इस्लाम के साथ औपचारिक सम्बन्ध था। सर्वप्रथम 1921 मे मेव मुख्य प्रकाश मे आए जब उन्होने असहयोग व खिलाफत आन्दोलनो के प्रभाव मे विद्रोह किया था। दिसम्बर, 1921 मे अलवर के मेवो ने पड़ौसी गुडगाव जिले के एक पुलिस थाने पर आक्रमण किया था जिन्हें ब्रिटिश भारतीय पुलिस एव अलवर राज्य सैन्य दल की सयुक्त कार्यवाही द्वारा कुचल दिया गया था।[11] 1921 का मेव उभार अधिक विस्तृत नही था, किन्तु इसके प्रभाव मे एक अलग थलग पडा समुदाय देश की मुख्य धारा से जुड़ गया था।

1929–30 के विश्वव्यापी आर्थिक सकट ने सम्पूर्ण विश्व को निगल लिया था एव यूरोप के उपनिवेश सबसे अधिक बुरी तरह प्रभावित हुए थे। स्वाभाविक तौर पर इग्लैण्ड के आर्थिक भार ने सीधे तौर पर भारतीय अर्थव्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित किया था। इस आर्थिक सकट की चपेट मे सभी थे, किन्तु भारत का किसान व श्रमिक वर्ग सर्वाधिक दुष्प्रभावित था। 1930 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस द्वारा छेड़े गए सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने उपनिवेशवाद के विरुद्ध लड़ाई का मार्ग प्रशस्त किया। 12 मार्च, 1930 को डाडी मार्च द्वारा यह आन्दोलन आरम्भ किया था तथा इसे 5 मार्च, 1931 को गाधी इरविन समझौता के अन्तर्गत अस्थाई तौर पर रोक दिया गया था। गाँधी द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेकर दिसम्बर, 1931 में भारी असन्तुष्टि के साथ भारत लौटे। गाँधी ने पुन सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ कर दिया था, किन्तु जनवरी 1932 में गाँधी एव अन्य नेताओ को गिरफ्तार कर लिया गया था तथा काग्रेस को गैर कानूनी सगठन करार दे दिया था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दूसरे सोपान ने भारतीय जनमानस में भारी उत्साह का सचार किया था। अलवर में 1932 का मेव विद्रोह सविनय अवज्ञा आन्दोलन के हिस्से के रूप मे उत्पन्न नहीं हुआ था, किन्तु यह इस महान राष्ट्रीय हलचल से प्रभावित अवश्य था।

सन् 1923–24 में लागू किया गया भू–राजस्व बन्दोबस्त किसानों में असन्तोष उत्पन्न करने वाला सिद्ध हुआ। इसका विरोध नीमूचाणा आन्दोलन के रूप में देखने को मिलता है। नीमूचाणा के हत्याकाण्ड ने अलवर राज्य के अन्य भागों के किसानों में भय और आतक उत्पन्न कर दिया था। अत लम्बे समय तक कृषिय समुदायों की शान्ति बनी रही। लम्बे समय तक कोई किसान समूह राज्य की खिलाफत का साहस नहीं जुटा पाया था। मेव जिनकी जनसख्या एक निश्चित क्षेत्र में अत्यधिक थी ने राज्य के विरुद्ध विद्रोह का झडा उठाने का साहस किया। आरम्भ में यह आन्दोलन आर्थिक स्वरूप लिए हुआ था, किन्तु कालान्तर में इसने साम्प्रदायिक रग प्राप्त कर लिया था। इसी भ्रम के कारण कुछ लेखकों ने इसे साम्प्रदायिक विद्रोह चित्रित किया है।

कुछ लेखकों ने इसे हिन्दुओं के विरुद्ध मुसलमानो का साम्प्रदायिक विद्रोह चित्रित किया है जिसके साथ बाद में कृषिय माँगें पुछल्ले के रूप में जोड़ दी गई थी।

किन्तु तथ्यो व विद्रोह के घटनाक्रमो से स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ में यह मेव किसानों का आर्थिक सघर्ष था एव कुछ साम्प्रदायिक नेताओं ने इसे साम्प्रदायिक रग देने का प्रयास किया।[14] उनकी प्रमुख शिकायतों व माँगों का स्वरूप इस मत को दृढता प्रदान करता है कि यह एक आर्थिक सघर्ष था। उनकी माँग थी कि भू–राजस्व एव अन्य करों का भार उन पर बहुत अधिक है जिसे ब्रिटिश भारत मे पडौसी जिले गुडगाव के समान स्तर तक घटाया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए गुडगाव जिले में सिचित भूमि पर भू–राजस्व 1 रुपया 2 आना प्रति बीघा था जबकि अलवर राज्य में इसकी दर 8 रुपए से लेकर 4 रुपए 2 आना प्रति बीघा तक थी।[15] राजकाज के उद्देश्य से सड़क, बाध इत्यादि बनाने हेतु आवाप्त भूमि का मुआवजा किसानो को नहीं दिया जाता था, जबकि गुड़गाव में किसानों को मुआवजा मिलता था। मेव किसान अलवर के भू–राजस्व प्रशासन एव पद्धति की तुलना गुडगाव जिले से कर रहे थे तथा उन्होंने इसके साथ समानता स्थापित करने की माँग की थी। अकालों के दौरान अलवर राज्य भू–राजस्व से मुक्ति नही देता था तथा अकालो के समय रोकी गई राजस्व की वसूली सामान्य वर्षों में ब्याज सहित वसूल की जाती थी। राज्य द्वारा आरम्भ किए जाने वाले अकाल राहत कार्य पर्याप्त नही होते थे एव अकाल पीड़ित लोग अपने स्वय के साधनों अथवा उधार लेकर अपने जीवन की रक्षा करते थे। अकाल एव सामान्य वर्षों में राज्य की ओर से किसानों को दिए जाने वाले तकावी ऋण कभी–कभी सहूलियत के स्थान पर किसानों के उत्पीड़न एव कष्ट के कारण बन जाते थे। उनकी माग थी कि अकाल राहत, भू–राजस्व में मुक्ति और तकावी ऋणों का सचालन उसी प्रकार से किया जाए जैसे गुड़गाव जिले में होते हैं। मेवो के क्षेत्रों में अनेक सधे थी जो शासक के शिकारगाह के रूप में सुरक्षित जगल थे। किसानो की आम शिकायत थी कि सधों मे रहने वाले जगली जानवर उनकी फसलो को भारी हानि पहुँचाते थे तथा अपनी फसल की रक्षा के लिए किसान जगली जानवरो को नहीं मार सकते थे। अत मेवों की यह भी एक प्रमुख माग थी कि पुरानी सधें समाप्त की जाये अथवा इनके आकार व सख्या को घटाया जाए नई सधें नहीं बनाई जाए एव उन्हें जगली जानवरों को मारने की अनुमति प्रदान की जाए। पशुओ के आयात–निर्यात पर लिया जाने वाला सीमा शुल्क भी किसानो की एक समस्या थी। यू तो बेगार समाप्त कर दी गई थी किन्तु सरकारी अधिकारी व कर्मचारी गैर कानूनी तरीको से निरन्तर बेगार ले रहे थे। मेवों ने बाध व सड़क बनाने घास काटने सधो की सफाई करने एव महाराजा के शिकार के समय ली जाने वाली बेगार को समाप्त करने की माँग थी।[16]

उपरोक्त कारणों ने मेवों को राज्य के विरुद्ध विद्रोह के लिए मजबूर कर दिया था। मेवो की कुछ धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक माँगें भी थी जो विद्रोह के दौरान उत्पन्न हुई थी। मेवो में राज्य के प्रति भारी नाराजगी व्याप्त थी क्योकि 1921 मे राज्य ने उनके विद्रोह को दबाने के लिए अमानवीय तरीकों का सहारा लिया था इसलिए मेवो का विद्रोह इस बार बडा शक्तिशाली था एव उन्होने आरम्भ से ही गुरिल्ला युद्ध

आरम्भ कर दिया था। इसकी गम्भीरता का पता इसी से चलता है कि 12 फरवरी 1933 को भारत के गवर्नर जनरल विलिंगडन ने अलवर की स्थिति को बद से बदतर बताया था तथा इण्डियन एनुअल रजिस्टर के अनुसार इस विद्रोह में 80–90 000 मेवों ने भाग लिया था।[15] भरतपुर राज्य एवं गुड़गांव जिले के मेवों ने अलवर के मेवों को हर प्रकार से मदद पहुँचाई।

1932 के प्रारम्भ में तिजारा, किशनगढ, रामगढ एवं लक्ष्मणगढ निजामतों के मेवों ने भू–राजस्व की अदायगी से इन्कार कर दिया था क्योंकि बाढ़ के कारण खरीफ मौसम की फसल नष्ट हो गई थी। मेवों को प्रारम्भ से ही भय था कि राज्य उन्हें कुचलने के लिए दमनात्मक कदम उठा सकता है। अतः आत्मरक्षा व अपनी समस्याओं के समाधान हेतु उन्होंने अनेक स्थानों पर जाति पंचायतों में इस मामले पर पूर्ण विचार किया। प्रारम्भ में यह आन्दोलन स्वस्फूर्त था जिसने न केवल सरकार को चौंका दिया बल्कि हिन्दू भी भयभीत हो गए थे क्योंकि उन्हें भय था कि मेव उनके विरुद्ध संगठित हो गए हैं। अतः साम्प्रदायिकता का मनोविज्ञान सक्रिय हो गया था। जातीय पंचायतों के दौरान मेवों ने अपनी आर्थिक व सामाजिक समस्याओं की एक लम्बी सूची तैयार की।

अलवर के मेव आन्दोलन को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि उस समय मेवों की धार्मिक गतिविधियां क्या थी। अन्जुमन–ए–खादिमुल–इस्लाम नामक मुसलमान संगठन सामाजिक उत्थान हेतु अलवर के मेवों के बीच कार्य कर रहा था। इस संगठन ने मेवों की शिक्षा का कार्य अपने हाथ में लिया हुआ था तथा इसने अनेक मकतब खोले।[16] 2 मई 1932 को राज्य ने एक अधिसूचना जारी की जिसके अनुसार सभी निजी विद्यालय चाहे धार्मिक हो या धर्मनिरपेक्ष केवल सरकार की अनुमति से ही खुलने चाहिये। साथ ही सम्बन्धित निजामत (जिला) के नाजिम की अनुमति के बिना किसी भी बाहरी को इन विद्यालयों में नियुक्त नहीं किया जा सकता था।[17] जून, 1932 में राज्य सरकार ने "रजिस्ट्रेशन ऑफ सोसाइटी एक्ट" पारित किया जिसके अनुसार इस अधिनियम के पूर्व या बाद में स्थापित सभी संगठनों को इसके अन्तर्गत पंजीकृत कराना आवश्यक कर दिया था।[18] मेवों ने इस अधिसूचना व अधिनियम का विरोध किया। 22 जुलाई, 1932 को जब मेव नमाज के लिए जामा मस्जिद पर एकत्रित थे तो पुलिस ने उन पर लाठी चार्ज किया।[19] इस घटना के विरोध में अलवर राज्य के लगभग 10 000 मेव भरतपुर राज्य एवं गुड़गांव, हिसार, रेवाड़ी, नूह एवं फिरोजपुर झिरका में पलायन कर गए। इनका पलायन 25 जुलाई को आरम्भ होकर एक सप्ताह तक जारी रहा। लगभग 25 000 मेव दिल्ली पहुँचे एवं वहाँ पहुँचकर उन्होंने यह दावा किया कि उन्होंने उनकी समस्याओं के समाधान न होने के विरोध स्वरूप हिजरत की है।[20] इन घटनाओं से मेवों की समस्याएँ आम जनता की जानकारी में आई। अखिल भारतीय मुस्लिम लीग, जमात–ए–तबलिक–उल–इस्लाम एवं ऑल इण्डिया मुस्लिम कान्फ्रेन्स जैसे मुसलमानों के संगठनों ने वक्तव्यों व ज्ञापनों

के माध्यम से इस मामले को प्रचारित किया। इस प्रकार मेवों का आर्थिक सघर्ष साम्प्रदायिक राजनीति का शिकार होने लगा था। आर्थिक माँगों के अतिरिक्त अब साम्प्रदायिक माँगे भी जुड गईं थी जिसमे अलवर राज्य मे मुस्लिमो की जनसख्या के अनुपात मे सरकारी सेवाओ मे मुस्लिम प्रतिनिधित्व की माँग सम्मिलित थी।

1932 के अन्त तक अलवर के मेव आन्दोलन ने नए सोपान मे प्रवेश किया जब गुडगाव के मेव नेता चौधरी यासीन खान ने उनका नेतृत्त्व सम्हाला। उसने आन्दोलन के व्यवस्थित सचालन हेतु एक कार्यवाही समिति का गठन किया। इस समिति के निर्णयानुसार नवम्बर, 1932 में अलवर राज्य के मेवात क्षेत्र में कर बन्दी आन्दोलन का आह्वान किया जिसे मेव किसानों का मजबूत समर्थन मिला। मेवों ने इस आन्दोलन में हिंसात्मक साधन अपनाए तथा राजस्व अधिकारियों व कर्मचारियों के विरुद्ध शारीरिक शक्ति का उपयोग किया। जब 14 नवम्बर 1932 को किशनगढ निजामत का नाजिम भू–राजस्व वसूली हेतु घूम रहा था तो धमोकर नामक गाव में मेवों के एक दल ने उस पर धावा बोल दिया था।[31] मेवो ने अधिकाश पक्के व कच्चे मार्गों को अवरुद्ध कर दिया था एव उन्होंने पहाडों मे अच्छी किले बन्दी कर ली थी। अपने चारों ओर उन्होंने तमक (एक प्रकार का ढोल) सहित चौकीदारों का समूह नियुक्त कर दिया था। कुल मिलाकर मेवात क्षेत्र मे अलवर राज्य का प्रशासन पगु हो गया था तथा मेवात क्षेत्र राज्य के नियत्रण से निकल गया था। इस सफलता ने मेवों का साहस और बढा दिया था। 1 दिसम्बर 1932 को महाराजा ने एक घोषणा जारी करते हुए अपनी मेव जनता से गैर कानूनी गतिविधिया रोकने के लिए कहा। उसने भी ये स्पष्ट किया कि आर्थिक मदी के कारण न केवल अलवर राज्य के बल्कि सभी भागों के किसान भू–राजस्व के भुगतान में कठिनाई अनुभव कर रहे हैं। उसने आगे घोषित किया कि राहत की एक योजना उसके विचाराधीन है जिसके अनुसार जहाँ आवश्यक समझा जाएगा वहाँ छूट दी जाएगी।[32] इसके अनुसार महाराजा ने कृषिय शिकायतों की जाँच हेतु एक समिति नियुक्त की। इस समिति ने मेव नेताओं को अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए समिति के समक्ष बुलाया किन्तु उन्होंने इन्कार कर दिया।[33]

विद्रोही मेवों को सन्तुष्ट करने में राज्य के उपरोक्त शान्तिपूर्ण प्रयास असफल रहे। इन उपायो ने मेवो को और अधिक प्रोत्साहित किया क्योंकि उनकी दृष्टि में शान्तिपूर्ण उपाय राज्य की कमजोरी को इगित करते थे। मेवों ने राज्य के खिलाफ युद्ध आरम्भ कर दिया था। उन्होंने विशाल पैमाने पर गुरिल्ला युद्ध आरम्भ कर दिया था। उन्होने हिन्दु और मुसलमान दोनो से सहमति अथवा बलपूर्वक धन एकत्रित किया। इसी प्रकार विद्रोहियो ने सभी धर्म व जाति के किसानों को भू–राजस्व एव अन्य कर न देने के लिए मजबूर कर दिया था तथा यह भी धमकी दी थी कि जो उनके आदेशों की अवहेलना करेगा उससे कठोरतापूर्वक निपटा जाएगा। मेवों ने 22 दिसम्बर को किशनगढ मे बनियो के घरों मे डाका डाला।[34] विद्रोहियों ने भारी मात्रा मे अग्नेय शस्त्र व गोला बारूद एकत्रित कर लिया था तथा राज्य की पूर्ण अवहेलना

की थी। उन्होने अनेक स्थानो पर कस्टम (सीमा शुल्क) चौकियो पर आक्रमण किया तथा वहाँ कार्यरत कर्मचारियो को भागने पर मजबूर कर दिया था। विद्रोही मेव सघो मे घुस गए थे तथा उन्होने सैंकडो जगली जानवरो को मार दिया था जो राज्य के कानून के विरुद्ध था।[25] जनवरी, 1933 मे मेव विद्रोह का विस्तार बहुत अधिक हो गया था तथा मेवात की गैर मेव जनसख्या मे बेचैनी उत्पन्न हो गई थी। मेव विद्रोह के मुकाबले राज्य ने सैन्य दल भेजे। राज्य के सैन्य दल विद्रोहियो के पहाडी व सघन जगली आधार क्षेत्रो मे प्रवेश नहीं कर सके एव उन्होंने भरतपुर राज्य की सीमा पर स्थित लक्ष्मणगढ व गोविन्दगढ के मैदानो मे अपनी कार्यवाही आरम्भ की। 7 जनवरी को विद्रोही मेवो के एक दल ने लक्ष्मणगढ निजामत के गोविन्दगढ कस्बे मे राज्य सैन्य दल पर आक्रमण किया तथा उसे वापस पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। इस घटना मे लगभग 40 मेव मारे गए एव सैंकडो घायल हुए।[26] मेव विद्रोह ने पूर्णत साम्प्रदायिक रग प्राप्त कर लिया था। मेवो ने हिन्दुओ के घरों को जलाना व सम्पत्ति को लूटना आरम्भ कर दिया था। भारी सख्या मे हिन्दू अनेक पडौसी स्थानों पर शरण के लिए भागे।[27] इस प्रकार आर्थिक विद्रोह साम्प्रदायिक दगे मे परिवर्तित हो गया था।

राज्य की सेनाएँ विद्रोही मेवो पर नियत्रण स्थापित करने में पूर्णत असफल रही। प्रारम्भिक स्तर पर अग्रेज चिंतित नही थे किन्तु जब स्थिति बिगड गई तो उन्होने हस्तक्षेप करने का निर्णय लिया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के पश्चात् इस अशान्ति को अग्रेज अपने साम्राज्यवादी हितो के विपरीत मान रहे थे। अग्रेज इस बात से भी भयभीत थे कि अलवर जैसा मेवो का विद्रोह पजाब के मेवात क्षेत्र में भी फैल सकता है। 9 जनवरी, 1933 को महाराजा की इच्छा के विरुद्ध अग्रेजी सेनाए अशान्त क्षेत्र में प्रवेश कर गई थी।[28] महाराजा के असहयोग के उपरान्त भी अग्रेजी सेनाओं की कार्यवाही जारी रही। 12 फरवरी, 1933 को भारत के गवर्नर जनरल विलिंगडन ने अलवर की स्थिति के बारे मे कहा कि यहाँ स्थितिया इतनी अधिक बिगड गई हैं जितनी बिगड सकती है।[29] अग्रेजों ने महाराजा को अपने राज्य मे एक अग्रेज अधिकारी नियुक्त करने के लिए मजबूर कर दिया तथा 1 मार्च, 1933 को मि0 वाइलिया आइ0सी0एस0 अधिकारी को राजस्व विभाग के प्रभार सहित प्रधानमत्री (दीवान) नियुक्त किया।[30]

15 मार्च 1933 को राज्य के अधिकारियो ने भू-राजस्व एव अन्य शिकायतों के सम्बन्ध में कुछ छूटों की घोषणा की। अप्रेल, 1933 के अन्त तक सैनिक व प्रशासनिक उपाय मेव विद्रोह को कुछ सीमा तक दबाने में सफल रहे। राज्य का प्रशासन तो अग्रेजो के पूर्ण नियत्रण में आ गया था, किन्तु राज्य में महाराजा की उपस्थिति को विनाशक माना जा रहा था। तत्काल अग्रेजो ने अलोकप्रिय महाराजा को 22 मई 1933 को यूरोप रवाना करने का निर्णय लिया तथा कुछ वर्षों के लिए अलवर प्रशासन अग्रेजों के हाथों में आ गया था।[31] इसी बीच अग्रेज अधिकारियों ने अनेक आदेश जारी किए तथा 1933 के अन्त तक मेवो ने विद्रोह समाप्त कर दिया

तथा अपना सामान्य कार्य आरम्भ कर दिया। वास्तव मे अलवर के महाराजा जयसिंह को देश निकाला दे दिया गया था। मई 1937 मे यूरोप में निर्वासित महाराजा की मृत्यु पैरिस मे ही हुई थी।

मेव विद्रोह ने मेव आदिवासियों में नई चेतना का सचार किया तथा वे अपने अधिकारो के प्रति जागरुक हुए। इतना ही नहीं बल्कि काफी सीमा तक इस विद्रोह के माध्यम से उनकी समस्याओ का समाधान भी सम्भव हो सका। उन्हें रबी की फसल पर भू–राजस्व में 50 प्रतिशत छूट मिली तथा मई 1933 मे एक तिहाई स्थाई छूट प्राप्त हुई। हुण्डा भाड़ा खाद खर्च, पड़ाव इत्यादि लागें समाप्त कर दी गई। मेवो को सधों के चारागाह व ईमारती लकड़ी हेतु उपयोग करने का अधिकार प्राप्त हुआ एव सधों में कृषि विस्तार के माध्यम से धीरे–धीरे सधो के आकार कम करने की योजना बनी। 1934 में सधों का प्रशासन वन विभाग के स्थान पर राजस्व विभाग के अन्तर्गत आ गया।

अलवर के मेव विद्रोह के महत्त्व का विश्लेषण विभिन्न कोणों से किया जा सकता है, किन्तु यदि इसे मेव समुदाय की दृष्टि से देखा जाए तो इसका महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। मेव राजस्थान की अन्य आदिवासी जातियों की तरह अत्यधिक पिछड़ा समुदाय था, जो इस विद्रोह के माध्यम से काफी जागृत हुआ था। मेव समाज मे अनेक नई प्रवृतियाँ आरम्भ हुई। मेव जो प्रवृत्ति से धर्म निरपेक्ष थे, पक्के मुसलमान बन गए। यू तो कुछ प्रगतिशील, राष्ट्रवादी व क्रान्तिकारी तत्त्वो ने मेवो मे वामपथी विचारधारा फैलाने का प्रयास भी किया। किन्तु मेवों का झुकाव धार्मिक लोगों के प्रति ही अधिक रहा। 1947 मे जब अलवर में साम्प्रदायिक दगे हुए तो मेव इनका शिकार हुए। यह एक रोचक जानकारी मिलती है कि साम्प्रदायिक दगो के बाद भी मेवो ने अपना क्षेत्र नही छोड़ा। अलवर से पाकिस्तान पलायन करने वाले मुस्लिमों मे मेवों की सख्या नगण्य ही थी।

1941–47 के दौरान प्रजामण्डल के नेतृत्व में किसान आन्दोलन ·

तीसरे सोपान मे अलवर मे किसान आन्दोलन अलवर राज्य प्रजामडल के नेतृत्व में उत्पन्न हुए थे। अलवर प्रजामण्डल की स्थापना 1938 में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना था। इसके नेताओं का यह स्पष्ट सोच था कि वे तब तक अपने लक्ष्य प्राप्ति मे सफल नही हो सकते जब तक कि उन्हे ग्रामीण जनता का समर्थन प्राप्त न हो। जैसा कि पूर्व मे उल्लेख किया जा चुका है कि राजस्थान के अन्य राज्यों की तुलना मे अलवर राज्य के किसानों की दशा अधिक खराब नही थी। नीमूचाणा की घटना व मेव विद्रोह ने किसानों के आर्थिक भार को कम कर दिया था। यहाँ भूमि के नियमित सर्वेक्षण व बन्दोबस्त की पद्धति अस्तित्वमान थी। इन स्थितियों मे प्रजामण्डल को कोई ऐसा मुद्दा नही मिल पा रहा था जिसके आधार पर ग्रामीण क्षेत्रों में किसी प्रकार का अन्दोलन आरम्भ किया जा सके।

भारी विचार–विमर्श के पश्चात् जनवरी, 1941 मे प्रजामण्डल नेताओं ने जागीरो का मुद्दा अपने हाथों मे लिया। जागीरदारो के अधिकार मे केवल 20 प्रतिशत भूमि थी। जिसमे ईनामदार, तनखादार एव माफीदार भी सम्मिलित थे। इस श्रेणी के अधिकाश भू–स्वामी स्वय किसान नही थे तथा वे अपनी भूमि किसानो को अपने द्वारा निर्धारित राजस्व के बदले किराया पद्धति के अन्तर्गत देते थे। प्रजामण्डल ने इनके किसानो के लिए भी उन्हीं अधिकारों की माँग की जो खालसा के किसानो को प्राप्त थी। 1 से 2 जून, 1941 को प्रजामण्डल ने राजगढ में जागीर माफी प्रजा कॉन्फ्रेन्स का आयोजन किया। इस कॉन्फ्रेन्स के आयोजन का उद्देश्य जागीर तथा माफी क्षेत्रों के किसानों की समस्याओं पर विचार कर उन्हें उजागर करना था। इस कॉन्फ्रेन्स में इस माँग पर अत्यधिक जोर दिया गया था कि माफी एव जागीर क्षेत्रों के किसानों को भी विश्वेदारी अधिकार दिए जाएँ तथा खालसा पद्धति पर उचित सर्वेक्षण व बन्दोबस्त के द्वारा जागीरो मे राजस्व व्यवस्था लागू की जाए। जागीरदारों व माफीदारो द्वारा ली जाने वाली लागे एव बेगार समाप्त की जानी चाहिए जो मुख्य रूप से चमार, कुम्हार एव अन्य सेवक जातियो से ली जाती थी। इस कॉन्फ्रेन्स में लगभग 500 किसान सम्मिलित हुए थे।[33]

प्रजामण्डल द्वारा आयोजित उपरोक्त कॉन्फ्रेन्स के उल्टे ही परिणाम निकले। वास्तव में यह किसानों की स्वय की मुहिम नहीं थी, इसका प्रारम्भ व आयोजन ऐसे लोगो द्वारा किया गया था जो किसानों की समस्याओं के जानकार नहीं थे। छोटे जागीरदारों व माफीदारों ने अपने किसानो को जोतों से बेदखल कर दिया तथा उन्होने या तो अपनी भूमि पर खेती का प्रबन्ध स्वय किया अथवा खाली छोड़ दी गई थी। इन छोटे भू–स्वामियों को यह भय उत्पन्न हो गया था कि किराएदार किसान को इनकी भूमि पर स्वामित्व मिल सकता है। प्रजामण्डल के नियमित प्रयासों के उपरान्त जागीर माफी किसानों के मामले में सरकार ने कोई कार्यवाही नही की। 2 फरवरी, 1946 को प्रजामण्डल ने इसी सन्दर्भ में राजगढ तहसील के खेड़ा मगलसिह नामक गाव मे एक सभा आयोजित की। फरवरी की रात को सभी नेता बन्दी बना लिए गए थे। 8 फरवरी 1946 के हिन्दुस्तान टाइम्स के अनुसार पुलिस ने 43 लोगों को गिरफ्तार किया था। इन नेताओं की गिरफ्तारी के बावजूद भी सभा हुई तथा इसमें 1000 किसान सम्मिलित हुए। इसके तत्काल पश्चात् प्रजामण्डल का आन्दोलन केवल अलवर शहर तक ही सीमित हो गया था तथा उनकी प्रमुख माँग बन्दी नेताओं की रिहाई व जिम्मेदार सरकार का गठन ही रह गयी थी। जवाहरलाल नेहरू ने भी इन गिरफ्तारियों की कटु आलोचना की थी तथा जयनारायण व्यास को इस मामले की जाँच हेतु नियुक्त किया था। 8 फरवरी, 1946 को प्रजामण्डल ने सम्पूर्ण राज्य में 'दमन विरोधी दिवस' मनाया तथा 10 फरवरी, 1946 को सभी नेता रिहा कर दिए गए। इस प्रकार 1946 में किसान आन्दोलन का अन्तिम अध्याय भी समाप्त हो गया तथा किसानों की माँगों पर कोई फैसला नहीं हो सका। 1947 में अलवर राज्य साम्प्रदायिक दगों का शिकार रहा। 30 जनवरी, 1948 को दिल्ली में महात्मा गाँधी

की मृत्यु के पश्चात् घटनाक्रम तेजी से बदला तथा मार्च, 1948 में महाराजा की सभी शक्तियाँ समाप्त कर दी गयी तथा राज्य का विलय मत्स्य यूनियन में हो गया।

भरतपुर राज्य

भरतपुर राज्य में किसानों की दशा अलवर के किसानों की तुलना में अधिक ठीक थी। यहाँ 95 प्रतिशत भूमि सीधे राज्य के नियत्रण में थी जिसे खालसा के नाम से जाना जाता था। शेष 5 प्रतिशत राज्य से अनुदान प्राप्त छोटे जागीरदारों व माफीदारों के पास थी जिसमें छोटे–छोटे ईनामदार भी सम्मिलित थे। स्वाभाविकतौर पर यहाँ मेवाड़ मारवाड एव जयपुर राज्यों जैसी जागीरदारों की समस्या कतई नहीं थी। सामन्ती व्यवस्था का स्वरुप जो अन्य राज्यों में विद्यमान था वैसा भरतपुर राज्य में विद्यमान नहीं था। अन्य राज्यों में राजपूत विशेष दर्जा प्राप्त जाति थी, किन्तु भरतपुर के मामले में ऐसी कोई बात दिखाई नहीं देती। कुछ लोगों की यह गलत धारणा है कि जाट शासक होने के कारण भरतपुर राज्य में जाट जाति विशेष अधिकार प्राप्त थी। वास्तव में वही 5 जातियाँ ब्राह्मण, जाट, गूजर, अहीर एव मेव कमोवेश समान हैसियत रखती थी। भरतपुर राज्य मे खालसा भूमि के अन्तर्गत लम्बरदार व पटेल व्यवस्था अस्तित्वमान थी जिसके अन्तर्गत लम्बरदार व पटेल भू–राजस्व की वसूली के लिए जिम्मेदार होते थे। इनको बदले में कुछ लागें सुविधाए व राजस्व मुक्त भूमि मिलती थी। भरतपुर राज्य में लम्बे समय तक कोई किसान आन्दोलन उत्पन्न नहीं हुआ। अलवर की तरह भरतपुर में भी काफी विलम्ब से किसान आन्दोलनो की शुरुआत होती है। अत भरतपुर राज्य के किसान आन्दोलनों की प्रवृत्ति व स्वरूप अलवर के आन्दोलनों के काफी समान दिखाई देती है। भरतपुर राज्य के किसान आन्दोलनों को भी मुख्यत तीन सोपानों में बाटा जा सकता है। ये तीन सोपान क्रमश लम्बरदार एव पटेलों के नेतृत्त्व में स्वस्फूर्त किसान आन्दोलन, मेव किसानों का आन्दोलन तथा भरतपुर प्रजा परिषद् व अन्य सगठनों के नेतृत्व में किसान आन्दोलन सम्मिलित है।

लम्बरदार एवं पटेलों के नेतृत्व में स्वस्फूर्त किसान आन्दोलन :

सन् 1931 में नया भूमि बन्दोबस्त लागू किया गया था जिसके अन्तर्गत भू–राजस्व का निर्धारण उत्पादन के एक तिहाई हिस्से के आधार पर किया गया था। भू–राजस्व के अतिरिक्त आबीयाना (सिचाई) कर, मलबा पटवार हक पटेल इत्यादि लागें भी अस्तित्व मे रही। इस बन्दोबस्त के अन्तर्गत सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य सड़क इत्यादि के लिए एक नया कर किसानों पर लगाया गया था जो भू–राजस्व की राशि पर 3 प्रतिशत की दर से लेना तय हुआ था।[67] नए बन्दोबस्त ने किसानों में असन्तोष व अशान्ति उत्पन्न की थी। अधिक विस्तार में जाए बिना यहाँ यह उल्लेखनीय है कि विश्व व्यापी आर्थिक मन्दी ने भी किसानों की परेशानियों में वृद्धि की थी। लम्बरदार व पटेलों को भू–राजस्व की वसूली में भारी

कठिनाई का सामना करना पड रहा था क्योंकि 1931 मे लागू भू–राजस्व व्यवस्था के अन्तर्गत राजस्व इतना अधिक था कि किसान भुगतान करने में असमर्थ थे। लम्बरदार व पटेल जो वास्तव में राज्य सत्ता के ही अग थे मजबूर होकर वे ही बढे हुए भू–राजस्व के मुद्दे के विरुद्ध लड़ने के लिए आगे आए। लम्बरदार के एक समूह ने किसानों को करबन्दी अभियान के लिए तैयार करने के ध्येय से अनेक गावों का दौरा किया। इसके माध्यम से वे भू–राजस्व की नई दरो का विरोध जता रहे थे।[34]

किसानों ने लम्बरदारों के नेतृत्व मे नवम्बर, 1931 के आरम्भ मे भू–राजस्व में कमी करने के लिए राज्य के समक्ष अनेक प्रार्थना पत्र भेजे। जब राज्य ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया तो 23 नवम्बर, 1931 को भोजी लम्बरदार के नेतृत्व में लगभग 500 किसान भरतपुर में एकत्रित हुए।[35] राज्य कॉन्सिल के (सचिवालय) कार्यालय के समक्ष किसानों की एक सभा हुई जिसे भोजी लम्बरदार ने सम्बोधित किया तथा उसने किसानों से ना तो नई दरों पर न ही पुरानी दरों पर भू–राजस्व भुगतान न करने के लिए कहा। उसने किसानों को मुकदमा लड़ने के लिए धन एकत्रित करने के लिए भी कहा। इस भड़काऊ सम्बोधन ने भरतपुर राज्य को भोजी लम्बरदार की गिरफ्तारी के लिए मजबूर कर दिया था। उसे 24 नवम्बर, 1931 को गिरफ्तार किया गया तथा उसे 9 माह की कैद व 25 रुपए के दण्ड की सजा मिली।[36]

भोजी लम्बरदार की सजा के बाद किसानों का यह स्वस्फूर्त आन्दोलन समाप्त हो गया था, किन्तु यह आन्दोलन लम्बे समय तक नए बन्दोबस्त को लागू न होने देने में सफल रहा। यह आन्दोलन लम्बे समय इसलिए नहीं चल पाया क्योंकि यह आन्दोलन उन लोगों के हाथ में था जो स्वय किसान नहीं थे। लम्बरदारों के प्रति राज्य द्वारा अपनाई गई उदार नीति ने भी इस आन्दोलन को कमजोर कर दिया था।

मेव किसानों का आन्दोलन :

अलवर के मेव विद्रोह के प्रभाव में भरतपुर राज्य के मेव भी राज्य के साथ सीधे सघर्ष में उतरे। अलवर के समीप भरतपुर की नगर एव पहाड़ी तहसीलों में मेव प्रमुख जाति थी। इनके अलवर के मेवों के साथ पारिवारिक, वशानुगत एव सामाजिक सम्बन्ध व जुड़ाव था। जब अलवर के मेवों ने विद्रोह कर दिया था तो उन्हें भरतपुर के मेवों की ओर से सभी तरह की सहायता व समर्थन प्राप्त हुआ। मार्च एव अप्रेल, 1933 में अलवर राज्य ने मेवों को अनेक उदार छूटें स्वीकृत की। जब अलवर राज्य ने मेवों को अनेक रियायतें दे दी थी तो भरतपुर के मेवों ने समान छूटों की इच्छा जाहिर की।

भरतपुर राज्य के अधिकारी अलवर मेवों के विद्रोह के समय काफी सतर्क थे। भरतपुर कॉन्सिल के अध्यक्ष नगर एव पहाड़ी के मेव लम्बरदारों को उस विद्रोह से अपने आपको अलग रखने की चेतावनी दी थी। अध्यक्ष की चेतावनी उन्हें अलवर के मेवों के मामलों में शामिल होने से नहीं रोक पाई। 7 जनवरी, 1933 को गोविन्दगढ

मे गोली चलने से नगर व पहाड़ी के मेव अत्यधिक अशान्त हो गए थे क्योंकि वे इस घटना से काफी प्रभावित हुए थे। जब मार्च 1935 मे रबी फसल के राजस्व के माँग पत्र गावो में बाटे जा रहे थे तो सेमलाकला (नगर तहसील) एव लाड़मका व पापड़ा (पहाडी तहसील) के मेव लम्बरदारों ने ये माँग–पत्र स्वीकार नहीं किए। इन्हें स्वीकार इस आधार पर नहीं किया कि यह उनकी भुगतान क्षमता के बाहर था।[37]

उपरोक्त गावो के लम्बरदारों ने अन्य गावों मे पचायते आयोजित की जिनमें यह तय किया गया था कि अन्य मेव गावों को भी भू–राजस्व अदा करने के लिए इस आधार पर मना किया जाए कि यदि वे भुगतान करेंगे तो उन्हें जाति बाहर कर दिया जाएगा। इस सबके परिणामस्वरूप नगर एव पहाडी के अधिकाश गावों मे भू–राजस्व अदायगी से आम मनाही हो गई थी। मेवों ने तो कर बन्दी अभियान इच्छा से स्वीकार किया था, किन्तु अन्य जाति के किसानों को मेवों ने राजस्व अदा करने से बलपूर्वक रोका। जब सभी मेव नम्बरदार करबन्दी के पक्ष में थे, इसलिए भू–राजस्व वसूल करना सम्भव ही नहीं था। वास्तव में गैर मेव किसान इस मौके की ताक में थे कि मेव आन्दोलन की आड़ में वे भी भू–राजस्व अदा करने से बचे रहें। उनको यह भी आभास था यदि इन गावों को कोई छूट दी जाएगी तो वह उनको भी मिलेगी एव इसी ने करबन्दी अभियान को एक विस्तृत आन्दोलन बना दिया था। नगर तहसील के जीतराहेडी गाव के गूजर लम्बरदारों को मेव लम्बरदारों ने पीटा था क्योंकि गूजर लम्बरदारों ने भू–राजस्व की माँग के आदेश स्वीकार कर लिए थे।[38]

पहाड़ी एव नगर तहसील के गावो में भू–राजस्व का सग्रह नहीं हो सका। भू–राजस्व वसूली की अन्तिम तिथि 31 मई 1933 रखी गई थी एव 27 मई तक भू–राजस्व की वसूली की प्रगति निम्नानुसार थी[39] –

तहसील	भू–राजस्व (रुपयों में)	वसूली (रुपयों में)	शेष (रुपयों में)
पहाडी	94 108	21,075	73 033
नगर	86 957	32 685	54 272
योग	1,81,065	53,760	1 27 305
अन्य सम्पूर्ण			
योग	6 61,434	6 50 218	11 216

उपरोक्त आकड़े दर्शाते हैं कि भरतपुर की अन्य तहसीलों की तुलना में नगर एव पहाड़ी तहसीलों में भू–राजस्व का सग्रह नाममात्र का ही हुआ था। इन दो तहसीलों की धीमी प्रगति देखते हुए राज्य ने सीमा शुल्क व आबियाना कर में छूट घोषित करते हुए राजस्व भुगतान की अन्तिम तिथि 10 जून 1933 कर दी। किन्तु इस

उपाय ने भी स्थिति को नियन्त्रण में लाने में कोई सहायता नहीं की। मेवों की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया था। राज्य सरकार ने मेवों को सन्तुष्ट करने के लिए राज्य कॉन्सिल में एक मुस्लिम सदस्य को भी सम्मिलित कर लिया था। आगरा के अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट खान बहादुर काजी अजीजुद्दीन बिलग्रामी ने 16 जून, 1933 को भरतपुर राज्य कॉन्सिल में पुलिस एवं शिक्षा सदस्य के रूप में सेवा आरम्भ की।[40] इसके तुरन्त पश्चात् उसी दिन कॉन्सिल की एक बैठक हुई जिसमें मेव स्थिति पर विस्तारपूर्वक विचार किया तथा एक अध्यादेश तैयार किया गया जिसमें यह व्यवस्था रखी गई कि यदि कोई व्यक्ति अगर भू-राजस्व के भुगतान से इन्कार करता है अथवा भू-राजस्व के भुगतान के विरुद्ध प्रचार करता है तो वो कैद का भागीदार होगा।[41] इस अध्यादेश का हिन्दी अनुवाद कर अशान्त गावों में बटवाया गया। इस सबके उपरान्त भी स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ।

राज्य के समक्ष अब सैनिक कार्यवाही के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय शेष नहीं बचा था। 19 जून, 1933 को सुबह नगर तहसील के सेमलाकला एवं इसके पड़ौसी गाव झीतराहेडी को सेना की दो कम्पनियों ने घेर लिया।[42] अलवर, भरतपुर एवं गुड़गाव की सीमाओं को अलवर के क्षेत्रों में नियुक्त सेना ने सील कर दिया था। जिससे कि अलवर व गुडगाव के मेव भरतपुर के मेवों की सहायता में न पहुँच सके। जुलाई, 1933 के अन्त तक सेमलाकला व झीतराहेड़ी गावों से बलपूर्वक राजस्व वसूल कर लिया गया तथा करबन्दी अभियान को सैनिक बल से कुचल दिया गया। तत्पश्चात् कथित सेना पहाड़ी तहसील के लाड़मका व पापड़ा गावो में प्रवेश कर गई तथा दिसम्बर, 1933 के अन्त तक सेना ने सफलतापूर्वक राजस्व वसूल कर लिया। सैनिक कार्यवाही ने सम्पूर्ण क्षेत्र को आतंकित कर दिया था तथा राजस्व अधिकारी सरलता से राजस्व वसूल करने में सफल रहे।

1934 में मि0 बिलग्रामी के मातहत मेव सकट की जाँच हेतु एक विशेष समिति का गठन किया गया इस समिति की रिपोर्ट के आधार पर मेवों को भू-राजस्व तथा अन्य करों में छूट के साथ-साथ मेवों की सामाजिक व धार्मिक समस्याओं का समाधान भी किया गया। 1936 में भू-राजस्व बन्दोबस्त का संशोधन प्रस्तावित था। "एजेन्ट टू गवर्नर जनरल इन राजपूताना" ने यह सुझाव दिया कि "मेरी राय में यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है कि जब इस प्रश्न की जाँच की जाए तो हाल ही संशोधित अलवर राज्य के भूमि बन्दोबस्त पर विशेष ध्यान दिया जाए कि भरतपुर की राजस्व दरो मे अलवर की दरों के साथ कोई उल्लेखनीय असमानता न हो। दोनों ही राज्यों में भारी मेव जनसख्या है जो जाति एव वश के आधार पर खड़ी समीपता के आपस में जुड़े हुए हैं एव दोनों राज्यों में कृषकों के साथ व्यवहार में व्याप्त उल्लेखनीय अन्तर निश्चित रूप से भरतपुर में राजनीतिक आन्दोलन व कृषिय सकट को जन्म दे सकता है।"[43]

भरतपुर प्रजा परिषद एवं अन्य सगठनों के नेतृत्व मे किसान आन्दोलन ·

सम्पूर्ण भरतपुर राज्य में 1931 एव 1933 के आन्दोलन भू–राजस्व एव अन्य करो में कमी करवाने में सफल रहे। इस प्रकार 1931 के भूमि बन्दोबस्त से उपजे असन्तोष को नियत्रित कर स्थिति को सामान्य बना लिया गया था। अब ऐसा कोई मुख्य मुद्दा उपलब्ध नही था जिसके आधार पर एक किसान आन्दोलन खड़ा किया जा सके। लम्बे समय पश्चात् 1947 मे ही एक नया आन्दोलन उत्पन्न हुआ।

जनवरी, 1947 में भरतपुर प्रजा परिषद् लाल झडा किसान सभा एव मुस्लिम कॉन्फ्रेन्स ने सयुक्त रूप से बेगार विरोधी आन्दोलन छेडा। 4 जनवरी को गवर्नर जनरल बावेल एव बीकानेर का महाराजा सादुलसिह जलमुर्गों का (बतख) शिकार करने भरतपुर के केवलादेव घना आये। विशेष व्यक्तियों के शिकार खेल मे सहायता करने के लिए आसपास के गावो से भारी सख्या मे चमार कोली खटीक, भगी आदि बेगार पर लाए गए थे।[54] प्रजापरिषद् ने इसका भारी विरोध किया तथा उन्होंने "बावेल वापस जाओ" के नारे लगाए। 5 जनवरी 1947 को यही विरोध बेगार विरोधी आन्दोलन के रूप मे परिवर्तित हो गया था तथा लाल झडा किसान सभा व मुस्लिम कॉन्फ्रेन्स इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गए थे। 5 जनवरी को ही नेताओं ने भरतपुर किले के मुख्य द्वार पर धरना दिया। महाराज के छोटे भाई बच्चू सिह के नेतृत्व में राज्य सैन्य दल ने धरने पर बैठे नेताओ को पीटा। इस सैन्य कार्यवाही में कोई नही मरा, किन्तु राजबहादुर सावलप्रसाद चौबे एव उसकी पत्नि मुशी अली मुहम्मद एव मुकुट विहारी जैसे नेता बुरी तरह घायल हो गये।[55]

6 जनवरी, 1947 को आन्दोलन मे सम्मिलित सभी सगठनों ने सम्पूर्ण राज्य में बेगार विरोधी दिवस आयोजित किया। आन्दोलन को बदनाम करने के लिए राज्य समर्थक गुण्डों ने कुम्हेर व उच्चैन कस्बो मे लूट–पाट की। इसी दिन भुसावर के रमेश स्वामी को थानेदार ने बस से कुचलवा दिया था। रमेश स्वामी एक सक्रिय प्रजा परिषद् के कार्यकर्ता थे। यह आन्दोलन सितम्बर 1947 तक चलता रहा एव इसे प्रजा परिषद् ने वापस ले लिया था क्योंकि इस समय तक भरतपुर राज्य के विलय की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। 18 मार्च 1948 को भरतपुर राज्य का मत्स्य यूनियन में विलय हो गया।

साराशत ये कहा जा सकता है कि भरतपुर एव अलवर राज्यो के किसान आन्दोलन काफी विलम्ब से उत्पन्न हुए थे किन्तु काफी शक्तिशाली सिद्ध हुए। दोनो राज्यो के प्रजा मण्डल व प्रजा परिषद् ने अपने सघर्ष के निर्णायक दौर में किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया था। दोनो ही राज्यो के मेव युगो पुराने अधकार से बाहर निकले। सभी किसान व जन आन्दोलनो ने दोनो राज्यो में जिम्मेदार सरकार की स्थापना हेतु आन्दोलन को आधार प्रदान किया। इन उग्र आन्दोलनो का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह माना जा सकता है कि राजस्थान मे सामन्ती व औपनिवेशिक

दासता से मुक्त होने में अलवर एव भरतपुर राज्य अग्रणी रहे।

संदर्भ

1 एसेसमेन्ट रिपोर्ट ऑफ अलवर स्टेट 1899 पृ0 41
2 बृजकिशोर शर्मा पीजेन्ट मूवमेन्टस् इन राजस्थान पृ 186
3 राजस्थान राज्य अभिलेखागार शाखा अलवर ज्यूडिशियल रिकार्ड, फाइल न0 315–जे/23 1925
4 वही
5 वही
6 वही दीवान व न्याय मंत्री को 6 मई 1925 का पत्र
7 वही
8 सुमित सरकार माडर्न इण्डिया
9 द रियासत 14 जनवरी 1926
10 रामनारायण चौधरी बीसवीं सदी का राजस्थान, पृ0 95
11 सुमित सरकार माडर्न इण्डिया पृ0 211
12 बृजकिशोर शर्मा पीजेन्ट मूवमेन्टस् इन राजस्थान पृ0 174
13 दी इस्टर्न टाइम्स 27 अक्टूबर 1932
14 वही एव राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट, फाइल न0 743–पी (सीक्रेट) 1933
15 सुमित सरकार पूर्वोक्त पृ0 324
16 राजस्थान राज्य अभिलेखागार, अलवर कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड फाइल न0 1449/एफ–23 1932
17 दी अलवर स्टेट गजट 2 मई, 1932
18 वही 16 जून 1932
19 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट, फाइल न0 743–पी (सीक्रेट) 1933
20 दी हिन्दुस्तान टाइम्स, 28 जुलाई 1932
21 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 743–पी (सीक्रेट) 1933
22 राजस्थान राज्य अभिलेखागार अलवर कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड फाइल न0 1449/एफ–23 1932
23 दी बाम्बे क्रानिकल 15 दिसम्बर 1932
24 राष्ट्रीय अभिलेखागार होम पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट, फाइल न0 43/3/33 पॉलिटिकल पार्ट–I
25 वही

26 राजस्थान राज्य अभिलेखागार अलवर कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड फाइल न0 1449/एफ 23 1933
27 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 743–पी(सीक्रेट) 1933
28 वही होम पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 43/3/33 पॉल0 पार्ट–I
29 वही
30 वही
31 वही, पार्ट–II एव सुमित सरकार पूर्वोक्त पृ0 324
32 राजस्थान राज्य अभिलेखागार अलवर प्रजामण्डल रिकार्ड फाइल न0 6 1941
33 रिपोर्ट आन लैण्ड रेवेन्यू एसेसमेन्ट ऑफ द भरतपुर तहसील 1931 पृ0 35–42
34 राजस्थान राज्य अभिलेखागार भरतपुर कॉन्फिडेंशियल रिकार्ड फाइल न0 63–ए बस्ता न0 5 1931
35 वही
36 वही फाइल न0 21 बस्ता न0 5 1932
37 राष्ट्रीय अभिलेखागार, फारेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 285–पी (सीक्रेट) 1933
38 वही
39 वही
40 वही
41 भरतपुर राज पत्र (गजट) 17 जून 1933
42 राष्ट्रीय अभिलेखागार फॉरेन एण्ड पॉलिटिकल डिपार्टमेन्ट फाइल न0 285–पी (सीक्रेट) 1933
43 वही फाइल न0 593 1935
44 युगल किशोर चतुर्वेदी राष्ट्रीय आन्दोलन में मत्स्य क्षेत्र की भूमिका और उसका योगदान 1986
45 वही

अध्याय – 10
निष्कर्ष

राजस्थान मे अग्रेजी सर्वोच्चता की स्थापना ने अनेक ऐतिहासिक परिवर्तनो की प्रक्रिया आरम्भ की। सर्वप्रथम यहाँ की राजनीतिक परम्परा मे परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। राजस्थान के शासको को मुगल अधीनता के अन्तर्गत जहाँ कुछ सीमा तक स्वायत्तता प्राप्त थी वहीं अग्रेजो के साथ समझौतों व सन्धियों के माध्यम से वे पूरी तरह अग्रेजों के हाथ की कठपुतली बन गए थे। शासक व जागीरदार जनता के प्रति अपने कर्त्तव्यों को विस्मृत कर अग्रेज स्वामियो के प्रति जिम्मेदार हो गए थे। परम्परागत राजनीतिक व्यवस्था व प्रशासनिक संस्थाएँ समाप्त हो गई थी। अग्रेजो के प्रभाव मे जो नई प्रशासनिक सस्थाएँ विकसित हुई वे अग्रेजों के साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति करने वाली ही सिद्ध हुई। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद अविकसित अर्थव्यवस्था पर फलता–फूलता है। भारत में अंग्रेजी राज्य सामान्तवाद के ऊपर फल–फूल रहा था। जहा एक ओर अग्रेजों ने भारत के परम्परागत सामन्ती ढाचें को तोडा वहीं दूसरी ओर सामन्तवाद को बदले हुए रूप मे सुरक्षित रखने की कोशिश भी की, किन्तु राजस्थान में मध्यकालीन सामन्ती व्यवस्था को भौडे रूप में बनाए रखा। अर्थात् भारतीय सामन्तवाद का विकृत रूप यहाँ दिखाई देता है। बदलते परिवेश मे राजस्थान के शासकों व जागीरदारों का ध्येय अग्रेजों की खुशामद करना मात्र रह गया था क्योंकि वे जानते थे कि उनका अस्तित्व स्वय के भुजबल से न होकर अग्रेजों की कृपा से कायम है। वे प्रजा के प्रति राजा के कर्त्तव्य को भुला बैठे थे। वे औपनिवेशिक स्वामियों के प्रति अपने दायित्व के निर्वाह व अपनी फिजूलखर्ची के लिए अपनी प्रजा को लूटने लगे थे। भू–राजस्व इनकी आय का मुख्य साधन रह गया था। इसलिए किसान आर्थिक शोषण का प्रथम शिकार हुए। सन् 1818 में सामन्ती व औपनिवेशिक शक्तियों के मध्य मैत्री से उपजी व्यवस्था को अर्धसामन्ती व अर्धऔपनिवेशिक व्यवस्था के नाम से परिभाषित किया जा सकता है।

राजस्थान में ब्रिटिश सर्वोच्चता की स्थापना के साथ नई व्यवस्था का विरोध व प्रतिरोध आदिवासी एव किसानों ने किया। सर्वप्रथम विदेशी सत्ता के साथ संघर्ष मेर आदिवासियों को करना पड़ा क्योंकि अजमेर का प्रदेश अग्रेजों को मराठों से प्राप्त हुआ था तथा यह सीधे अग्रेजी नियन्त्रण में आया। सन् 1821 तक अग्रेज मेरों का दमन करने में सफल रहे, किन्तु नई व्यवस्था के विरुद्ध भीलों के विद्रोह 1818 से आरम्भ होकर 19वीं सदी के अन्त तक अनवरत रूप से चलते रहे। 19वीं सदी के

उत्तरार्द्ध के प्रारम्भिक वर्षों में खेराड़ के मीणा आदिवासियों ने सामन्ती व औपनिवेशिक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह किए जिन्हे बलपूर्वक दबा दिया गया था। इन आदिवासी समूहो पर कठोर राजनीतिक व प्रशासनिक नियत्रण स्थापित करने के ध्येय से इनके क्षेत्रो में इन्हीं समुदाय के सैन्य बल सगठित किए। सर्वप्रथम मेरवाडा बटालियन नामक मेरों की एक सेना तैयार की गई जिसका मुख्यालय ब्यावर में रखा गया। इसके पश्चात् 1840 में मेवाड़ भील कॉर्पस की स्थापना की गई। खेराड क्षेत्र के भीलों पर नियत्रण रखने के लिए 1855 में देवली मे सैनिक छावनी स्थापित कर मीणा बटालियन का गठन किया।

19वी सदी में सबसे अधिक शक्तिशाली आदिवासी विद्रोह मे भील विद्रोह प्रमुख रहे। इस काल मे मेवाड के भीलो की भूमिका सबसे अग्रणी दिखाई देती है। 20वी सदी के आरम्भ मे डूगरपुर व बासवाडा राज्य के भीलों मे साधु गोविन्द गिरि ने समाज सुधार आन्दोलन आरम्भ किया जिसने शक्तिशाली विद्रोह का रूप धारण कर लिया था। गोविन्द गिरि के नेतृत्व मे भील विद्रोह को अग्रेजों ने सैन्य बल से कुचल दिया था। कहने के लिए तो यह विद्रोह असफल रहा किन्तु इसके प्रभावो का विश्लेषण करे तो पाते हैं कि इस विदोह ने भीलो के उत्थान में निर्णायक भूमिका निभाई। भील युगों पुराने अधकार से बाहर निकले। इतना ही नही बल्कि कुछ सीमा तक भील अपने परम्परागत जगल अधिकारो को प्राप्त कर सके। यह विद्रोह दलित वर्गों की प्रेरणा का प्रमुख स्त्रोत बन गया था। यह विदोह राजस्थान में किसान आन्दोलन व स्वतन्त्रता सघर्ष का आधार बना।

राजस्थान के किसान आन्दोलन के इतिहास मे बिजौलिया आन्दोलन को प्रथम सगठित आन्दोलन माना जाता है। बिजौलिया का किसान आन्दोलन सामाजिक उत्थान के प्रयासों से उत्पन्न हुआ एव इसके प्रारम्भिक चरण मे जाति पचायत ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बिजौलिया के धाकड किसान समाज सुधार के प्रयासों के माध्यम से इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उनके पिछडेपन का प्रमुख कारण प्रचलित सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था थी जो सामन्ती सरचना का ही एक रूप अथवा अग थी। उन्हे जागीरदार ने उनके पूर्ण भूमि अधिकारो से वचित किया हुआ था। भू–राजस्व तथा लाग–बागो का भार बहुत अधिक था। किसानो के शोषण की प्रगाढता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि किसानो को उनके कुल उत्पादन के 87 प्रतिशत भाग से वचित कर दिया जाता था। आर्थिक भार के अतिरिक्त किसान बेगार देने पर भी मजबूर थे। भारी सामन्ती शोषण के अन्तर्गत किसान कष्टमय जीवन बिता रहा था।

बिजौलिया किसान आन्दोलन का इतिहास किसानो की एक लम्बी सघर्ष गाथा है। इस आन्दोलन को मुख्यत तीन चरणों मे विभाजित किया जा सकता है – प्रथम चरण (1897–1915) दूसरा चरण (1916–1922) तीसरा चरण (1923–1941)। प्रथम चरण मे यह एक स्वस्फूर्त आन्दोलन था जबकि दूसरे चरण मे इसने सगठित

रूप धारण करते हुए सफलता के युग मे प्रवेश किया। प्रथम चरण मे आन्दोलन का सचालन मुख्यत जाति पचायत कर रही थी वही दूसरे चरण मे किसान पचायत नामक शक्तिशाली सगठन अस्तित्व मे आ गया था। इस आन्दोलन के दूसरे चरण मे विजय सिह पथिक और माणिकलाल वर्मा जैसे कर्मठ नेताओ ने इसका सचालन किया। इन नेताओ ने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया, किन्तु काग्रेस ने समर्थन नहीं दिया। यह आन्दोलन इतना शक्तिशाली था कि मजबूर होकर 1922 मे ठिकाने ने किसानो के साथ समझौता कर लिया। यह समझौता किसान आन्दोलन को समाप्त नहीं कर पाया क्योकि ठिकानेदार की कहनी और करनी में भारी अन्तर आ गया था। इस आन्दोलन को 1927 तक सैन्य बल के द्वारा कुचल दिए जाने पर किसानो ने निष्क्रिय विरोध का रास्ता अपनाया और अपनी जोतो से त्याग पत्र दे दिया। किसानो की मान्यता थी कि उनके द्वारा भूमि का समर्पण ठिकाने के लिए बहुत बडी समस्या बन जाएगा। ठिकाने ने त्याग पत्र में दी गई भूमि सस्ती दरों पर अन्य किसानो को आवटित करने का प्रयास किया, किन्तु कोई सफलता नहीं मिली। 1930 के अन्त तक भारी प्रयासों के बाद ठिकाना किसानो द्वारा छोड़ी गई भूमि में से लगभग 8000 बीघा भूमि आवटित करने मे सफल रहा। यह भूमि किसानों के न लेने पर महाजनों को आवटित कर दी गई थी जो मुख्य रूप से सूदखोरी के व्यवसाय में सलग्न थे।

बिजौलिया के किसान आन्दोलन का सकारात्मक प्रभाव सम्पूर्ण राजस्थान पर दिखाई देता है, किन्तु 1930 के पश्चात् यह आन्दोलन इसके नेताओं में मतभेद उत्पन्न होने के कारण कमजोर पड़ गया था। 1930 के पश्चात् आन्दोलन का मुख्य ध्येय किसानों द्वारा त्यागी गई भूमि को पुन प्राप्त करना ही रह गया था। यह आन्दोलन अपनी अन्तिम मजिल तक तो पहुँच नहीं पाया, किन्तु इसने राजस्थान के किसानों में सामन्त विरोधी चेतना उत्पन्न करने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1920–22 के दौरान मेवाड मे बिजौलिया के प्रभाव में किसान एव जन आन्दोलनों की, लगता है बाढ ही आ गई थी। बिजौलिया, बेगू, पारसौली, बसी व मेवाड़ के खालसा क्षेत्र के किसान आन्दोलनो के प्रभाव मे मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व मे मेवाड के भील उठ खड़े हुए थे। मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में भील आन्दोलन भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस द्वारा छेडे गए असहयोग आन्दोलन से भी प्रभावित था। तेजावत ने भीलों में एकी आन्दोलन आरम्भ किया था जिसके प्रभाव मे मेवाड़ में भील आन्दोलन काफी आगे बढा। मेवाड के बाद मोतीलाल तेजावत सिरोही राज्य में प्रवेश कर गए तथा वहाँ के गिरासिया आदिवासियो का मेवाड के भीलों के समान आन्दोलन खड़ा किया। सिरोही में सेना द्वारा गोलिया बरसा कर इस आन्दोलन को दबा दिया गया था। इस सबके उपरान्त भी उदयपुर व सिरोही के आदिवासी 1921 से 1929 के मध्य मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में अशान्त बने रहे। तेजावत ने गाँधीजी व राष्ट्रीय काग्रेस का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की, किन्तु असफलता ही हाथ

लगी। यद्यपि यह आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन में समाहित नही हो पाया फिर भी इसने राष्ट्रीय उद्देश्य को शक्ति प्रदान की।

1920 के पश्चात् राजस्थान सेवा सघ ने राजस्थान के किसान आदिवासी एव अन्य जन आन्दोलनों में रचनात्मक भूमिका निभाई। बिजौलिया व मेवाड तो इसकी प्रारम्भिक गतिविधियों का क्षेत्र था ही, साथ ही बूँदी, जोधपुर, जयपुर, अलवर आदि राज्यों के किसान आन्दोलनों में इसकी भूमिका निर्णायक रही जिसका मूल्याकन करने पर हम पाते है कि राजस्थान के जन जागरण में इसकी प्रभावी भूमिका रही।

जोधपुर (मारवाड़) का किसान आन्दोलन अन्य आन्दोलनों की तुलना में कुछ पृथक तरीके से आरम्भ हुआ। अधिकाश राज्यो के किसान आन्दोलन स्वस्फूर्त अथवा किसानों द्वारा स्वय आरम्भ किए हुए थे, किन्तु जोधपुर राज्य में शहरी व शिक्षित आधुनिक मध्यमवर्गीय तत्त्वों ने किसान आन्दोलन सगठित किया। 1920 में आरम्भ होकर 1922 तक मारवाड़ सेवा सघ सक्रिय रहा। तत्पश्चात् 1923 में मारवाड हितकारिणी सभा के नाम से नया सगठन अस्तित्त्व में आया। यह सगठन ग्रामीण क्षेत्रो में सक्रिय रहकर अपने सामाजिक आधार को विस्तृत करने में सफल रहा। इस सभा की बढ़ती हुई लोकप्रियता ने राज्य के कर्त्ताधर्ताओ को चौंका दिया था। इसलिए 1924 मे राज्य के समर्थन से इसके विरोध मे राजभक्त देश हितकारिणी सभा नामक सगठन अस्तित्त्व में आया। मारवाड़ हितकारिणी सभा ने 1925–31 के दौरान किसान आन्दोलन चलाया किन्तु विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसने मुख्य रूप से भूमि अधिकार, भारी भू–राजस्व लाग–बाग एव बेगार इत्यादि मुद्दे उठाए। इन मुद्दों ने किसानों को आन्दोलित किया तथा उनमें सामन्त विरोधी चेतना उत्पन्न करने मे सफल रहा। 1938 में स्थापित मारवाड़ लोक परिषद् के नेतृत्व में सशक्त किसान आन्दोलन उत्पन्न हुए। इन किसान आन्दोलनों को सरकार व इसके समर्थक सगठन "जागीरदारस एसोसिएशन" के आक्रमणो का मुकाबला करना पडा। 1941 में राज्य के समर्थन से "मारवाड़ किसान सभा" नामक सगठन स्थापित हुआ। इस सगठन का उद्देश्य मारवाड़ लोक परिषद् के राजनीतिक व सामाजिक प्रभाव को कम करना था। किसान सभा ने अपने अभियानों के तहत किसानों को मारवाड लोक परिषद् का समर्थन न करने के लिए कहा, किन्तु इस समय तक लोक परिषद् एक वास्तविक जन सगठन के रूप मे मजबूती से स्थापित हो चुकी थी तथा इसकी लोकप्रियता दिनों–दिन बढती जा रही थी। एक स्थिति यह उत्पन्न हो गई थी कि मजबूर होकर किसान सभा को लोक परिषद् के साथ सहयोग करना पडा तथा 1946–48 के मध्य दोनों सगठनो ने सयुक्त आन्दोलन चलाए। 1948 में दोनो ही सगठनों ने लोकप्रिय अन्तरिम सरकार बनाई एव मारवाड़ टैनेन्सी एक्ट पारित कर किसानो को तत्काल राहत पहुँचाने का कार्य किया।

जयपुर राज्य के शेखावाटी क्षेत्र मे 1921 से आरम्भ होकर 1947 तक किसान आन्दोलनों का बोलबाला रहा। यह जयपुर राज्य का एक ऐसा भू–भाग था जिसमें

सम्पूर्ण भूमि जागीरदारो के नियन्त्रण मे थी। यहाँ किसानों का घोर सामन्ती शोषण प्रचलित था। किसानों पर भू-राजस्व लाग-बाग, बेगार सीमा शुल्क आदि का असहनीय आर्थिक भार लदा हुआ था। शेखावाटी मे जन आन्दोलन का आरम्भ 1921 मे चिडावा सेवा समिति के आन्दोलन से हुआ। शेखावाटी के किसान आन्दोलन को तीन चरणों क्रमशः प्रथम चरण (1922-30), द्वितीय चरण (1931-38) एव तृतीय चरण (1939-47) मे बाटा जा सकता है। प्रथम चरण मे इसकी शुरुआत सीकर ठिकाने से हुई थी। 1925 का वर्ष शेखावाटी किसान आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण वर्ष था क्योंकि इस वर्ष रामनारायण चौधरी के प्रयासों से सीकर के किसानों के मसले पर ब्रिटिश संसद में चर्चा हुई। इसी वर्ष पुष्कर में आयोजित अखिल भारतीय जाट महासभा के अधिवेशन में भी यहाँ के किसानो का मसला उठा। सन् 1926 मे शेखावाटी के अन्य ठिकानों में भी आन्दोलन आरम्भ हो गए थे। इसके प्रथम चरण में किसान आन्दोलन स्वस्फूर्त व असगठित से ही थे, किन्तु दूसरे चरण में शेखावाटी मे सगठित किसान आन्दोलनों का जन्म हुआ। इस दिशा मे 1932 में झुन्झुनू में आयोजित अखिल भारतीय जाट महासभा के अधिवेशन व 1934 में सीकर में आयोजित जाट महायज्ञ उल्लेखनीय हैं जिनने यहाँ के आन्दोलनों को सगठित स्वरूप प्रदान किया। 1934 से 36 तक शेखावाटी के किसान आन्दोलन अपने चरमोत्कर्ष पर थे। किसानों के बढ़ते हुए आन्दोलन ने यहाँ के जागीरदारों को चिंतित कर दिया था। इस दौरान किसान अनेक सुविधाएँ प्राप्त करने में सफल रहे। इस समय किसानों को जागीरदारों के खुले हमलों का मुकाबला करना पड़ा। शैखावाटी के आन्दोलनों ने स्वतंत्रता आन्दोलन का आधार प्रस्तुत किया। 1938 में जब जयपुर राज्य प्रजा मण्डल की स्थापना हुई तो उसे शेखावाटी में अच्छा समर्थन प्राप्त हुआ था। 1938 से 1947 के बीच शेखावाटी का किसान आन्दोलन अपने निर्णायक दौर में पहुँच गया था। इस अवधि में प्रजामण्डल व शेखावाटी के किसान आन्दोलन में एकता स्थापित हो गई थी। दोनों एक दूसरे के पूरक बन गए थे तथा दोनों ने सयुक्त रूप से सघर्ष कर सामन्ती व उपनिवेशवादी सत्ता के विरुद्ध माहौल उत्पन्न कर अपने ध्येय में सफलता प्राप्त की।

बिजौलिया किसान आन्दोलन के प्रभाव में बूँदी के बरड़ क्षेत्र में 1922-25 के मध्य शक्तिशाली किसान आन्दोलन उत्पन्न हुआ। प्रारम्भ में राजस्थान सेवा सघ ने इस आन्दोलन को दिशा निर्देश दिया था। कालान्तर में बिजौलिया किसान पचायत की पद्धति पर यहाँ भी किसान पचायतों का गठन किया गया था। बरड़ का आन्दोलन खैराड़ की ओर बढने लगा था। यहाँ का आन्दोलन एक प्रकार का असहयोग आन्दोलन था जिसके अन्तर्गत किसानों ने प्रशासन के साथ असहयोग की नीति अपनाते हुए करबन्दी आन्दोलन चलाए। इस आन्दोलन की चरम परिणिति 2 अप्रेल, 1923 को डाबी में आयोजित एक सभा में हुई जहाँ उत्तेजित व व्यथित होकर बूँदी राज्य पुलिस ने निहत्थे किसानों पर गोलिया बरसाई। इसमें नानक नामक भील मारा गया जो न केवल बूँदी बल्कि सम्पूर्ण राजस्थान के स्वतन्त्रता सग्राम का प्रतीक बन

गया था। इस घटना के पश्चात् इस आन्दोलन के नेता नयनूराम शर्मा को चार वर्ष की सजा हो गई तथा 1926 के बाद यह आन्दोलन समाप्त हो गया। यह आन्दोलन आगे पुन 1945 मे प्रारम्भ होता है जो अधिक समय तक नही चला। बूँदी राज्य में 1936 से 1945 के बीच गूजर किसानों का आन्दोलन चला जो अपने मूल उद्देश्य के कारण सीमित व संकुचित ही रहा तथा इसका मुख्य राष्ट्रीय धारा के साथ जुड़ाव नहीं हो सका। फिर भी बूँदी के किसान आन्दोलनों को सयुक्त रूप मे देखे तो पाते हैं कि बरड़ के किसानों ने 1922 से 1945 तक 23 वर्षों के अनवरत सघर्ष के माध्यम से सामन्ती व औपनिवेशिक शोषण से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

बीकानेर राज्य मे किसान आन्दोलन कुछ विलम्ब से आरम्भ हुए। यहाँ के जागीर क्षेत्रों में 1938–42 के दौरान शक्तिशाली किसान आन्दोलनो का उदय हुआ। 1944–46 का दूधवाखारा किसान आन्दोलन विशेष महत्त्व रखता है। इसी के साथ बीकानेर प्रजा परिषद् ने किसान आन्दोलनो का समर्थन करना आरम्भ कर दिया। 1945 से 1948 की अवधि में किसान आन्दोलनों व प्रजा परिषद् के बीच एकरूपता स्थापित हो गई थी। असल मे किसान ही प्रजा परिषद् के कार्यक्रमो के वाहक व सचालक बन गए थे। सघर्ष के दौरान बीकानेर के किसान यह बात भली–भाँति समझ गए थे कि राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना के बगैर सामन्ती शोषण का अन्त सम्भव नही है। बीकानेर के किसान आन्दोलन 1938 से 1948 तक अर्थात् एक दशाब्दी की अवधि के किसान सघर्षों ने यहाँ आजादी की लड़ाई को निर्णायक दौर मे पहुँचा दिया था। प्रजा परिषद् व किसान आन्दोलनों के मध्य ऐसा सामन्जस्य व समरुपता स्थापित हो गई कि उनके बीच भेद करना सम्भव ही नहीं था।

राजस्थान के किसान आन्दोलन के इतिहास मे अलवर एव भरतपुर राज्यो के किसान आन्दोलन विशेष महत्त्व रखते है। 1925 के अलवर के नीमूचाणा किसान आन्दोलन ने सम्पूर्ण उत्तरी भारत का ध्यान आकर्षित किया था। नीमूचाणा का किसान आन्दोलन भू–राजस्व मे वृद्धि के विरुद्ध खड़ा हुआ था जिसे अलवर सरकार ने सैनिक बल से कुचल दिया। इसके पश्चात् लम्बे समय तक शान्ति बनी रही। 1932–33 मे अलवर राज्य के मेव किसानो का विद्रोह महत्त्वपूर्ण घटना थी। यह आन्दोलन आरम्भ में आर्थिक आधारो पर खडा हुआ था किन्तु कालान्तर मे इसने साम्प्रदायिक स्वरूप प्राप्त कर लिया था। इस आन्दोलन की आड़ मे अग्रेजों ने अलवर के महाराजा जयसिह को अलवर से निष्कासित कर दिया था तथा मेव विद्रोह को सैनिक बल से कुचल दिया। मेव आन्दोलन को कुचलने के बाद उन्हे उनकी माँगो के सन्दर्भ में अनेक राहतें प्रदान की गई। 1938–47 के मध्य अलवर प्रजामण्डल ने ग्रामीण क्षेत्रो मे अपना आधार बनाने के ध्येय से कुछ किसान आन्दोलन आरम्भ किए। इस आन्दोलन ने जागीर क्षेत्रो के किसानो की समस्याओं को उजागर किया तथा अपने राजनीतिक ध्येय की प्राप्ति के सघर्ष मे किसानों को शामिल करने मे सफल रहा।

...ला किसान आन्दोलन 1931 मे भू-[illegible] के विरुद्ध खडा हुआ था। यह आन्दोलन वडा ही रोचक था जिसका नेतृत्व पटेल एव लम्बरदारों ने किया था। पटेल एव लम्बरदार जो स्वय राज्य के राजस्व प्रशासन की प्रमुख कड़ी थे, उन्होने ही किसानो को भू-राजस्व अदा न करने के लिए उकसाया। यह आन्दोलन आगे नही बढ सका क्योकि राज्य ने [illegible] के प्रति सन्तुष्टिकरण की नीति अपनाई। अलवर के मेव विद्रोह के अभाव मे 1932 मे भरतपुर के मेवों ने भी आन्दोलन चलाया। यह भी अलवर की तरह एक कृषिय आन्दोलन था एव इसने भी साम्प्रदायिक स्वरूप प्राप्त कर लिया था। मेवों को शान्त रखने के उद्धेश्य से भरतपुर राज्य ने राज्य कॉन्सिल में एक मुसलमान सदस्य को भी नियुक्त किया। स्थिति में सुधार न होता हुआ देख जून 1933 मे सैनिक अभियानों के माध्यम से मेव आन्दोलन को कुचल दिया गया। इसके पश्चात् मेवों की स्थाई शान्ति प्राप्त करने के ध्येय से एक जाँच समिति 1934 में राज्य कॉन्सिल के सदस्य अजीजुद्दीन बिलग्रामी के मातहत नियुक्त की। इसकी अनुशसाओं के आधार पर मेवों की अनेक शिकायतें दूर कर दी गई थी। जनवरी, 1947 से सितम्बर 1947 तक भरतपुर प्रजा परिषद् ने किसान आन्दोलन का सचालन किया जो उसकी राजनीतिक गतिविधि का प्रमुख अग था।

राजस्थान के किसान एव आदिवासी आन्दोलन 1920 के पश्चात् प्रभावी रूप से आरम्भ हुए। यहाँ 1922–30 के मध्य तथा 1931–42 के मध्य किसान व आदिवासी आन्दोलन अपने उत्कर्ष की चरम सीमा पर थे। यह वह काल था जब ब्रिटिश भारत में किसी भी प्रकार के जन आन्दोलन नहीं चल रहे थे। 1920 से 1942 के दौरान राजस्थान सामन्ती व औपनिवेशिक विरोधी आन्दोलनों का केन्द्र रहा। ये आन्दोलन सीधे तौर पर राष्ट्रीय सगठनों से जुडे हुए नहीं थे, किन्तु उनसे प्रभावित व प्रेरित अवश्य थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी इन आन्दोलनों को समर्थन नहीं दिया। 1938 में कांग्रेस की नीति में एक परिवर्तन आया जो उसकी राजनीतिक मजबूरी थी। देशी रियासतों के जन आन्दोलन जिनमे प्रमुखत किसान आन्दोलन ही थे, इतने परिपक्व होकर आगे बढ गए थे कि कांग्रेस ने इनको नियन्त्रित करने के ध्येय से अपना लिया। कांग्रेस ने सीधे तौर पर किसान आन्दोलनों का समर्थन नहीं किया बल्कि रियासतों के राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं को अपने राज्य मे प्रजामण्डल सगठन बनाकर उत्तरदाई शासन की स्थापना हेतु सघर्ष की सलाह दी थी। इससे किसान आन्दोलन तो कमजोर हुए थे, किन्तु राजस्थान की देशी रियासतें प्रजा मण्डलो के माध्यम से मुख्य राष्ट्रीय धारा के साथ जुड़ गई। अत सारांशत यह कहा जा सकता है कि राजस्थान में किसान आन्दोलन प्रारम्भ में स्वस्फूर्त थे जो कालान्तर में अत्यधिक सगठित रूप में विकसित हो गए थे। इन्होंने राजस्थान में स्वतत्रता सघर्ष का मार्ग प्रशस्त करते हुए सदियों पुराने सामन्तवाद को खुली चुनौती दी।